तालाबंद घर, परती ज़मीनें

उत्तराखंड, में जलवायु परिवर्तन और पलायन

Potsdam Institute for Climate Impact Research

International Climate Initiative (IKI)

Supported by: Federal Ministry for the Environment, Nature Conservation and Nuclear Safety

based on a decision of the German Bundestag

EPICC

The Energy and Resources Institute
Creating Innovative Solutions for a Sustainable Future

तालाबंद घर, परती ज़मीनें

उत्तराखंड, में जलवायु परिवर्तन और पलायन

PIK
Potsdam Institute for Climate Impact Research

International Climate Initiative (IKI)

Supported by:
Federal Ministry for the Environment, Nature Conservation and Nuclear Safety
based on a decision of the German Bundestag

EPICC

teri The Energy and Resources Institute
Creating Innovative Solutions for a Sustainable Future

© पॉट्सडैम इंस्टीट्यूट फॉर क्लाइमेट इम्पैक्ट रिसर्च 2021
© दि एनर्जी एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट 2021

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस रिपोर्ट की विषय-वस्तु को गैर-वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जा सकता है, बशर्ते की स्रोत का उल्लेख किया गया हो।

आईएसबीएन: 978-81-7993-6955

रिपोर्ट में व्यक्त मत, लेखकों के हैं और पॉट्सडैम इंस्टीट्यूट फॉर क्लाइमेट इम्पैक्ट रिसर्च (पीआईके) या दि एनर्जी एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट (टीईआरआई) के दृष्टिकोण को अनिवार्य रूप से परिलक्षित नहीं करते हैं।

लेखक: सुश्री हिमानी उपाध्याय (पीआईके), डॉ. कीरा विंके (पीआईके), श्री सौरभ भारद्वाज (टीईआरआई), सुश्री मेचथिल्ड बेकर (पीआईके), श्री मुहम्मद इरफ़ान (टीईआरआई), श्री नितिन बाबू जार्ज (पीआईके), श्री रिकार्डो बिएला (पीआईके), श्री पोनराज अरूमुगम (पीआईके), श्री संतोष कुमार मुरिकी (टीईआरआई) और डॉ. इमैनुएला पाओलेटी (पीआईके)।

टीईआरआई प्रेस टीम
सुश्री सुष्मिता घोष
श्री राजीव शर्मा

आवरण चित्र (कवर फोटो)
ऊपर का चित्र: डलहौजी, हिमाचल प्रदेश का दृश्य, भारत
© शटरस्टॉक/अंजली जी04

नीचे का फोटो: औली गाँव, जोशीमठ कस्बा, उत्तराखंड में दो याक के साथ एक व्यक्ति।
© शटरस्टॉक/डेनियल प्रूडेक

पीछे का आवरण फोटो: गंगोत्री ग्लेशियर, उत्तराखंड, भारत।
© अनस्प्लैश/हिमांशु श्रीवास्तव

इंगित उद्धरण
उपाध्याय, एच., विंके, के., भारद्वाज, एस., बेकर, एम., इरफान, एम., जार्ज, एन.बी., बिएला, आर., अरूमुगम, पी., मुरिकी, एस. के., पाओलेटी, ई., 2021. "तालाबंद घर, परती ज़मीनें: उत्तराखंड, भारत में जलवायु परिवर्तन और पलायन" पॉट्सडैम इंस्टीट्यूट फॉर क्लाइमेट इम्पैक्ट रिसर्च (पीआईके), पॉट्सडैम और दि एनर्जी एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट (टीईआरआई), नई दिल्ली।

प्रकाशक
दि एनर्जी एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली, भारत

अधिक जानकारी के लिए
परियोजना निगरानी प्रकोष्ठ
दि एनर्जी एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट, दरबारी सेठ ब्लॉक, आईएचसी कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली 110003, भारत
टेलीफोन: +91 11 2468 2100 या 2468 2111 | **फैक्स:** +91 11 2468 2144 या 2468 2145| ईमेल: pmc@teri.res.in |
वेब: www.teriin.org

विषय-सूची

आभार xi
प्रस्तावना xiii
प्रमुख सारांश xv
1. परिचय 1
2. उत्तराखंड का अवलोकन 5
   2.1 जनसंख्या गतिकी 9
3. उत्तराखंड में अवलोकित और पूर्वानुमानित जलवायु परिवर्तन 23
   3.1 अवलोकित जलवायु विभिन्नता 24
   3.2 जलवायु को लेकर भावी दृष्टिकोण 28
   3.3 मानसून 39
   3.4 चरम मौसम घटनाएं 42
   3.5 उत्तराखंड के जिलों का जलवायु परिवर्तन असुरक्षा प्रोफाइल 48
4. पलायन 55
   4.1 पलायन और ऊंचाई 55
   4.2 एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उत्तराखंड में पलायन 56
   4.3 पलायन के कारण 57
   4.4 पलायन करने वालों के गंतव्य स्थल: जिलों के बीच बनाम राज्यों के बीच आवागमन 59
   4.5 पलायन करने वालों का आयु प्रोफाइल 61
   4.6 उजाड़ गाँव और निर्जनीकरण 62
   4.7 पलायन के परिणाम 64
5. जलवायु परिवर्तन और पलायन 69
   5.1 जलवायु परिवर्तन के क्रमसंचयी प्रभाव 70
   5.2 जलवायु परिवर्तन, कृषि और पलायन 71
6. नीतियों और योजनाओं में पलायन 79
7 अनुसंधान और नीति में आगे का रास्ता 83
8. शब्दसूची 91
9. परिशिष्ट 103

चित्रों की सूची

चित्र 1: उत्तराखंड का आजीविका जोखिम मानचित्र पूर्वानुमानित जलवायु परिवर्तन प्रभावों, पूर्वानुमानित जलवायु चरम दशाओं, कृषि पर प्रभावों, पलायन संकेतक और जनसंख्या घनत्व को रेखांकित करता है। राज्य के उत्तरी, पश्चिमी और मध्य भाग में पहाड़ी जिले, अधिक प्रभावित हैं और उच्चतर आजीविका जोखिमों का सामना कर सकते हैं, क्योंकि यहां अधिकांश जनसंख्या निर्वाह - आधारित, वर्षा-सिंचित कृषि पर निर्भर है – जिससे पहाड़ी से मैदानी जिलों की ओर बहिर्प्रवासन और बढ़ता है xix

चित्र 2: भारत का मानचित्र जिसमें उत्तराखंड राज्य को रेखांकित किया गया है; दायीं ओर उत्तराखंड के तेरह जिले हैं 6

चित्र 3: यूएनईपी के पर्वतीय वर्गीकरण के अनुसार वर्गीकृत उत्तराखंड राज्य 7

चित्र 4: 2001 और 2011 की जनगणना की तुलना के साथ उत्तराखंड का जनसंख्या प्रोफाइल 9

चित्र 5: 1991–2001 और 2001–2011 के बीच दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर में परिवर्तन 11

चित्र 6: उत्तराखंड की जनसंख्या में जिला-वार दशकीय परिवर्तन 12

चित्र 7: जिला-वार एचडीआई 13

चित्र 8: उत्तराखंड का जिला-वार जीडीआई, एचडीआई रिपोर्ट 15

चित्र 9: उत्तराखंड का जिला-वार जीडीआई, एचडीआई रिपोर्ट 16

चित्र 10: राष्ट्रीय औसत, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश की तुलना में उत्तराखंड का प्रति व्यक्ति सकल राजकीय घरेलू उत्पाद। वर्ष 2000–2001 से 2004–2005 के लिए, 1999–2000 की कीमतों पर; अवधि 2004–2005 से 2011–2012 के लिए 2004–2005 की कीमतों पर 17

चित्र 11: वर्ष 2016–17 के लिए जिला-वार प्रति व्यक्ति आय 18

चित्र 12: सकल राजकीय घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) का क्षेत्रवार हिस्सा 19

चित्र 13: उत्तराखंड में मुख्य व्यवसाय 20

चित्र 14: अनुभाग 2 का सारांश 21

चित्र 15: उत्तराखंड के वार्षिक माध्य तापमान रूझान (1911–2012) 25

चित्र 16: उत्तराखंड के वार्षिक वर्षा रूझान 27

चित्र 17: 1911–2011 के दौरान मासिक वर्षा परिवर्तन 27

चित्र 18: वार्षिक वर्षा परिवर्तनों का स्थानिक वितरण 28

चित्र 19: उत्तराखंड में अवलोकित वार्षिक वर्षा की विशेषताएं और वर्षायुक्त दिनों की संख्या (1951 – 2013) 29

चित्र 20: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में उत्तराखंड राज्य में वार्षिक और मौसमी वर्षा में पूर्वानुमानित परिवर्तन 31

चित्र 22: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में उत्तराखंड के जिलों में वार्षिक वर्षा में पूर्वानुमानित परिवर्तन 32

चित्र 21: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में उत्तराखंड के जिलों में वार्षिक वर्षा में पूर्वानुमानित परिवर्तन 32

चित्र 23: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में 2051–2080 के दौरान वर्षा में पूर्वानुमानित भावी परिवर्तन 33

चित्र 24: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में 2081-2099 के दौरान वर्षा में पूर्वानुमानित भावी परिवर्तन 33

चित्र 26: बेसलाइन के संदर्भ में उत्तराखंड के जिलों में वार्षिक अधिकतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन..... 34

चित्र 25: पूर्वानुमानित निकट-भविष्य (2021–2050), मध्यम-भविष्य (2051–2080) और सुदूर-भविष्य (2081–2099)। बेसलाइन अवधि (1971–2005) के संदर्भ में उत्तराखंड में वार्षिक और मौसमी अधिकतम तापमान में परिवर्तन..... 34

चित्र 27: बेसलाइन 1971–2005 के संदर्भ में उत्तराखंड में 2021–2050 में अधिकतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन 35

चित्र 28: बेसलाइन 1971–2005 के संदर्भ में उत्तराखंड में 2051-2080 में अधिकतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन..... 35

चित्र 29: बेसलाइन 1971–2005 के संदर्भ में उत्तराखंड में 2081-2099 में अधिकतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन..... 36

चित्र 30: बेसलाइन अवधि (1971–2005) के संदर्भ में, उत्तराखंड राज्य में वार्षिक और मौसमी न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित निकट-भविष्य (2021–2050), मध्यम-भविष्य (2051–2080) और सुदूर-भविष्य (2081–2099) परिवर्तन..... 36

चित्र 32: बेसलाइन 1971–2005 के संदर्भ में उत्तराखंड में 2021–2050 में न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन..... 37

चित्र 31: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में उत्तराखंड के जिलो में वार्षिक न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन..... 37

चित्र 33: बेसलाइन 1971–2005 के संदर्भ में उत्तराखंड में 2051-2080 में न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन 38

चित्र 34: बेसलाइन 1971–2005 के संदर्भ में उत्तराखंड में 2081-2099 में न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन 38

चित्र 36: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में उत्तराखंड के जिलों में वर्षा वाले क्रमिक दिनों में पूर्वानुमानित परिवर्तन..... 46

चित्र 37: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में अधिकतम तापमान >90 प्रतिशत वाले दिनों की संख्या में पूर्वानुमानित परिवर्तन..... 47

चित्र 38: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में अधिकतम तापमान >95 प्रतिशत वाले दिनों की संख्या में पूर्वानुमानित परिवर्तन 48

चित्र 39: अनुभाग 3 का सारांश; * निकट-भविष्य (2021–2050), मध्यम-भविष्य (2050–2080) और सुदूर-भविष्य (2081–2099) वाले परिदृश्यों के संदर्भ में भावी समय अवधियां 53

चित्र 40: ग्रामीण जनसंख्या में पलायन करने वालों के प्रतिशत और यूएनईपी के पर्वतों के वर्गीकरण के अनुसार मैदानों, कम ऊंचाई वाले पर्वतों और अधिक ऊंचाई वाले पर्वतों के रूप में वर्गीकृत उत्तराखंड राज्य में सभी विकास खंडों की औसत ऊंचाई में सहसंबंध.... 55

चित्र 41: उत्तराखंड में पौड़ी गढ़वाल जिले में (बायीं ओर) और अल्मोड़ा जिले में परित्यक्त कृषि भूमि (दायीं ओर) 57

चित्र 42: पलायन के कारण 58

चित्र 43: पलायन के कारण 59

चित्र 44: जिले के आधार पर पलायन करने वालों के गंतव्य स्थल..... 60

चित्र 46: जिले के आधार पर पलायन करने वालों की आयु 61

चित्र 45: उत्तराखंड के आयु-वार पलायन विवरण..... 61

चित्र 47: आवासित गाँवों की जिला-वार संख्या (2011 के बाद निर्जनीकृत हुए)..... 62

चित्र 48: कुल जनसंख्या में बहिर्पलायन करने वालों का जिलावार प्रतिशत 63

चित्र 49: पौड़ी गढ़वाल जिले, उत्तराखंड में परित्यक्त घर 63

चित्र 50: ऐसे गाँवों की जिला-वार संख्या जहां जनसंख्या में 2011 के बाद 50% से अधिक कमी आई है..... 65

चित्र 51: महिलाएं चारा लेकर जाती हुई (बायीं ओर) और महिलाएं फसल कटाई के बाद के कार्य करती हुई (दायीं ओर), अल्मोड़ा जिला, उत्तराखंड 65

चित्र 52: उत्तराखंड में पलायन का अवलोकन 67

चित्र 53: अवधारणात्मक रूपरेखा, पलायन के प्रेरक और पर्यावरणीय परिवर्तन का प्रभाव दर्शाती है..... 70

चित्र 54: उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन और पलायन का संबंध..... 71

चित्र 55: उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन, कृषि और पलायन का संबंध 75

चित्र 56: उत्तराखंड का आजीविका जोखिम मानचित्र पूर्वानुमानित जलवायु परिवर्तन प्रभावों, पूर्वानुमानित जलवायु चरम दशाओं, कृषि पर प्रभावों, पलायन संकेतक और जनसंख्या घनत्व को रेखांकित करता है। राज्य के उत्तरी, पश्चिमी और मध्य भाग में पहाड़ी जिले, अधिक प्रभावित हैं और उच्चतर आजीविका जोखिमों का सामना कर सकते हैं, क्योंकि यहां अधिकांश जनसंख्या निर्वाह - आधारित, वर्षा-सिंचित कृषि पर निर्भर है – जिससे पहाड़ी से मैदानी जिलों की ओर बहिर्प्रवासन और बढ़ता है। 77

तालिका सूची

तालिका 1: उत्तराखंड का अवलोकन..... 08
तालिका 2: ग्रामीण और शहरी जनसंख्या का प्रतिशत..... 10
तालिका 3: उत्तराखंड में ग्रामीण और शहरी घरों का जिला-वार प्रतिशत 10
तालिका 4: प्रतिनिधि संकेंद्रण मार्गों (आरसीपी) का अवलोकन 24
तालिका 5: मासिक माध्य तापमान परिवर्तन (°से./100 वर्ष) 25
तालिका 6: समीक्षा किए गए, जलवायु चरम सूचकों के विवरण..... 43
तालिका 7: जिला-वार पलायन के गंतव्य स्थल (%) 60
तालिका 8: 2011 के बाद निर्जनीकृत हुए राजस्व गाँव/पुरवा/मोहल्ले और उनकी विशेषताएं 64

बॉक्सों की सूची

बॉक्स 1: शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की परिभाषा 10
बॉक्स 2: अर्थव्यवस्था के क्षेत्र 19
बॉक्स 3: जलवायु में असुरक्षित स्थितियों का प्रभाव अनुसंधान 49
बॉक्स 4: जलवायु परिवर्तन पर उत्तराखंड की कार्य योजना..... 79
बॉक्स 5: उत्तराखंड में पलायन पर रिपोर्ट 80
बॉक्स 6: उत्तराखंड का विज़न 2030.....80
बॉक्स 7: भारतीय हिमालयी क्षेत्र में धारणीय विकास.....81
बॉक्स 8: उत्तराखंड आंदोलन 103

आभार

यह रिपोर्ट ईस्ट अफ्रीका पेरू इंडिया क्लाइमेट कैपेसिटीज (ईपीआईसीसी) परियोजना का एक संयुक्त प्रयास है। पॉट्सडैम इंस्टीट्यूट फॉर क्लाइमेट इम्पैक्ट रिसर्च (पीआईके) ने अपने परियोजना साझेदारों दि एनर्जी एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट (टीईआरआई) और दि ड्यूटशर वेटरडेइंस्ट (डीडब्ल्यूडी) के साथ मिलकर परियोजना क्रियान्वयन का नेतृत्व किया है। ईपीआईसीसी परियोजना, इंटरनेशनल क्लाइमेट इनिशिएटिव (आईकेआई: www.international-climate-initiative.com) का एक भाग है। पर्यावरण, प्राकृतिक संरक्षण और नाभिकीय सुरक्षा (बीएमयू) के संघीय मंत्रालय ने जर्मनी की लोकसभा (बंडस्टैग) द्वारा स्वीकार किए गए एक निर्णय के आधार पर इस प्रयास का समर्थन किया है।

इस रिपोर्ट को सुश्री हिमानी उपाध्याय[1] (पीआईके) के नेतृत्व में तैयार किया गया। अन्य योगदानकर्ताओं में निम्न शामिल हैं: डॉ. कीरा विंके (पीआईके), श्री सौरभ भारद्वाज (टीईआरआई), सुश्री मेचथिल्ड बेकर (पीआईके), श्री मुहम्मद इरफान (टीईआरआई), श्री नितिन बाबू जार्ज (पीआईके), श्री रिकार्डो बिएला (पीआईके), श्री पोनराज अरूमुगम (पीआईके), श्री संतोष कुमार मुरिकी (टीईआरआई) और डॉ. इमानुएला पाओलेटी (पीआईके)। डॉ. रोमन हॉफमैन, डॉ. इमानुएला पाओलेटी और डॉ. कीरा विंके की आलोचनात्मक समीक्षाओं और मार्गदर्शन के बिना यह रिपोर्ट संभव नहीं हो सकती थी। हम प्रोफेसर हांस जोशिम शेलनहुबर का उनके मार्गदर्शन के लिए विशेष रूप से धन्यवाद करते हैं।

यह रिपोर्ट सुश्री जूलिया ब्लॉचर (पीआईके) और श्री जोनास बर्गमैन (पीआईके) द्वारा विचारित और परिकल्पित है। सहयोग के लिए आपका धन्यवाद! हम भाषा संपादन के लिए श्री कुर्ट क्लेन और रिपोर्ट के लेआउट और डिजाइन के लिए श्री राजीव शर्मा (टीईआरआई) के भी आभारी हैं।

[1] संबंधित लेखक। Himani.Upadhyay@pik-potsdam.de

प्रस्तावना

भारतीय हिमालयी क्षेत्र में स्थित उत्तराखंड राज्य में हिमाच्छादित पर्वतों, घने वनों, समृद्ध जैवविविधता, सीढ़ीदार खेतों तथा अद्वितीय विरासत और संस्कृति वाले पहाड़ी समुदायों की विशेषताएं पाई जाती हैं। इस समय जलवायु परिवर्तन ऐसे नए जोखिम उत्पन्न कर रहा है जो उत्तराखंड की बुनियादी विशेषता के लिए खतरा हैं। राज्य के स्वास्थ्य विभाग को किंकर्तव्यविमूढ़ (स्तब्ध) कर देने वाले डेंगू महामारी के प्रसार से लेकर बाढ़ से विस्थापित जनसंख्या की दुर्दशा तक, जलवायु परिवर्तन राज्य सरकार के समक्ष नई चुनौतियां उत्पन्न कर रहा है।

2011–2020 का दशक ऐतिहासिक रूप से सबसे गर्म रहा, जिसमें 2016 के सापेक्ष 2020 में पहली बार सर्वाधिक वैश्विक माध्य पृष्ठीय तापमान दर्ज किया गया। 1990 की तुलना में अब हरितगृह (ग्रीनहाउस) गैस उत्सर्जन 60% अधिक हैं और यदि यह रूझान बना रहा, तो 21वीं शताब्दी के अंत तक पृथ्वी का तापमान 3–5° से. तक बढ़ सकता है। ऐसे वैश्विक व्यवधान के कारण उत्तराखंड में कई क्षेत्रीय जोखिम उत्पन्न होंगे, जो पहाड़ों पर रहने वाले निर्वाह - आधारित कृषक समुदायों के लिए सर्वाधिक उल्लेखनीय होंगे। वर्तमान में विविध कारणों से जहां खतरनाक जलवायु प्रभावों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है, वहीं लोग पहाड़ी से मैदानी क्षेत्रों की ओर पलायन के लिए प्रेरित हो रहे हैं। और इस कारण से, उत्तराखंड में उजाड़ होते गाँवों की संख्या बढ़ती जा रही है। हालाँकि यदि तापमान लगातार बढ़ता रहा, तो पूरे राज्य की आजीविका तहस-नहस हो सकती है जिससे अत्यधिक बहिर्प्रवासन होगा।

वर्ष 2020 को इतिहास में कोविड-19 महामारी के कारण आए ठहराव के लिए याद रखा जाएगा, फिर भी लाखों लोग सफ़र करने के लिए मज़बूर हुए। महामारी से पूर्व नई दिल्ली या कोलकाता जैसे शहरी केंद्रों में आने वाले पलायन करने वाले, व्यापक रूप में एक अदृश्य जनसंख्या बने रहते थे। हालाँकि, भारत में लॉकडाउन लगने के साथ पलायन करने वाले कामगारों की नौकरियां छूट गईं और कुछ को अपना निवास स्थान भी छोड़ना पड़ा। परिवहन व्यवस्था बंद होने के कारण अपने मूलस्थान तक पैदल वापसी करने के अलावा उनके पास अन्य कोई चारा नहीं था। पलायन करने वालों की बड़े पैमाने पर घर वापसी हुई। भारत में, ऐसा अनुमान है कि लॉकडाउन के कारण 40 मिलियन पलायन करने वाले प्रभावित हुए। यह पलायन करने वाले जनसंख्या, बड़े पैमाने पर अनौपचारिक क्षेत्रों में प्रायः दैनिक मज़दूरी के आधार पर कार्य करती है और यही उनके जीवनयापन का जरिया है। एक दिन की भी आय न होने से उनके लिए भोजन खरीदना या रहने का ठिकाना हासिल करना असंभव हो सकता है। अतएव ये लोग समाज में सर्वाधिक असुरक्षित हैं, जिनको महामारी ने अत्यधिक अनिश्चित दशाओं में धकेल दिया। लॉकडाउन के कारण बेरोजगारी की अवधियां लंबी हो गईं, इसलिए उत्तराखंड में वापस लौटे 71% पलायन करने वालों ने वहीं रूकने का निश्चय किया, जिससे शहरी–ग्रामीण आवागमन का प्रभाव बाधित हो गया।

जलवायु संकट की तरह, कोविड-19 महामारी ने अनेक संकट खड़े किए। दोनों के विश्लेषण से यह प्रकट होता है कि वैश्विक चुनौतियों के समाधान के लिए बहुपक्षीय प्रयासों की आावश्यकता है और अरैखिक गतिशीलताओं की सक्रियता के साथ इसकी सामयिकता अत्यन्त मायने रखती है। कोरोना महामारी का सामना करने के लिए विश्वस्तर पर किए गए कड़े उपायों से यह साबित हुआ है कि समाज, अपने लोगों के स्वास्थ्य और कल्याण को आर्थिक लाभों से अधिक प्राथमिकता देने के इच्छुक हैं।

यह रिपोर्ट, “ईस्ट अफ्रीका-पेरू-इंडिया-क्लाइमेट कैपेसिटीज” (ईपीआईसीसी) परियोजना की रूपरेखा में पॉट्सडैम इंस्टीट्यूट फॉर क्लाइमेट इम्पैक्ट रिसर्च (पीआईके), जर्मनी और दि एनर्जी एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट (टीईआरआई), भारत के बीच सफल सहयोग का परिणाम है। यह भारत में उप-राष्ट्रीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन और पलायन के बारे में किया गया एक पहला मूल्यांकन है। यह रिपोर्ट एक एकीकृत मूल्यांकन प्रदान करती है, जिसमें नवीनतम जलवायु डाटा का उपयोग करते हुए वर्गीकृत पर्यावरणीय जोखिमों तथा पलायन की दशाओं पर उनके प्रभावों का आकलन किया गया है। जलवायु–पलायन के संबंध को बेहतर समझने के लिए इसमें कृषि की भूमिका की विशेष रूप से पड़ताल की गई है।

इस विश्लेषण को नीति निर्माण अनुसंधान के लिए ठोस अनुशंसाओं के साथ समृद्ध बनाया गया है। यह रिपोर्ट, कार्यवाही के लिए तीन मुख्य क्षेत्रों को चिन्हित करती है जो ये हैं, (i) पलायन से उत्पन्न जनांकिक परिवर्तनों के लिए पूर्व तैयारी; (ii) अर्थव्यवस्था को नया बल प्रदान करने के लिए पहाड़ी जिलों में आजीविका के वैकल्पिक अवसर सृजित करना; और (iii) पहाड़ी जिलों से बहिर्प्रवासन के संदर्भ में राज्य की जलवायु परिवर्तन कार्ययोजना तथा राज्य की कृषि नीतियों की नए सिरे से समीक्षा करना। विज्ञान व नीति के मध्य संवाद के लिए एक साक्ष्य आधारित आधार उपलब्ध कराना, इस रिपोर्ट का स्पष्ट ध्येय है। यह इस विषय पर चर्चाएं प्रारंभ करने में और जलवायु कार्य योजनाओं और पलायन नीतियों को सुदृढ़ बनाने में भूमिका निभा सकती है।

बाधक कोरोना संकट के बावजूद 2020 में विश्वस्तर पर वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों की मात्राओं में बढ़ोत्तरी बनी रही। जहां देशों ने कोविड-19 वायरस फैमिली के विरूद्ध वैक्सीनें विकसित करने की दिशा में भारी धनराशियों के निवेश किए हैं, वहीं यह अवश्य याद रखा जाना चाहिए कि वैश्विक तापन के विरूद्ध कोई वैक्सीन नहीं है। पृथ्वी की सतह की तापमान वृद्धि को 2° से. से कम रखना होगा ताकि उत्तराखंड में ग्रामीण पहाड़ी समुदाय अपने घरों वाले स्थानों पर रह सकें।

प्रोफेसर हांस जोशिम शेलनहुबर
निदेशक, एमिरात्स,
पॉट्सडैम इंस्टीट्यूट फॉर क्लाइमेट इम्पैक्ट रिसर्च
जर्मनी

डॉ. अजय माथुर
महानिदेशक
दि एनर्जी एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट
भारत

प्रमुख सारांश

उत्तराखंड की छवि भारतीय हिमालय के हिमाच्छादित पर्वतों, गंगा[2] और यमुना नदियों की धाराओं और असंख्य हरी-भरी घाटियों से मिलकर बनी हुई है। उत्तर प्रदेश से विभाजित होने के बाद 2000 में इस उत्तरी भारतीय राज्य की स्थापना हुई थी। हालांकि इसे पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वालों के लिए एक पृथक प्रशासनिक और राजनैतिक इकाई प्रदान करने के लिए गठित किया गया था किन्तु उत्तराखंड में व्यापक मैदानी क्षेत्र भी शामिल रहे हैं। पहाड़ी और मैदानी क्षेत्रों के बीच भौगोलिक और सामाजिक-आर्थिक अंतर, हाल के वर्षों में और भी बढ़ गए हैं। शहरीकरण, कृषि क्षेत्र में कम होते रोजगार के अवसरों तथा ग्रामीण समुदायों के सामाजिक विखंडन ने यहां के पहाड़ी जिलों से बहिर्प्रवासन को प्रेरित किया है जिससे निर्जनीकरण हुआ है और गाँव उजाड़ होते गए हैं। पिछले दशकों के दौरान जलवायु परिवर्तन के उत्पन्न प्रभावों - जैसे कि बढ़ता तापमान, ग्लेशियरों के पिघलने में बढ़ोत्तरी और वर्षा के बदलते पैटर्न - आदि इस शताब्दी में आगे और भी गहन होने के अनुमान हैं। यह रिपोर्ट इसकी पड़ताल करती है कि ये प्रभाव किस तरह से उत्तराखंड में आजीविकाओं को प्रभावित कर सकते हैं और इस तरह से पलायन के पैटर्न निर्धारित कर सकते हैं।

जनांकिकी

उत्तराखंड की जनसंख्या दस मिलियन व्यक्ति से अधिक है किन्तु यह ऐसे कुछ भारतीय राज्यों में से है जहां जनसंख्या कम हो रही है, क्योंकि कुछ पलायन करने वाले सदैव के लिए राज्य छोड़ रहे हैं। लगभग 70% पलायन करने वाले आंतरिक हैं, हालाँकि, इनमें से अधिकांश पहाड़ी क्षेत्रों से मैदानों और घाटियों में आए हैं। परिणामस्वरूप, पहाड़ी जिलों में रहने वाले निवासियों का हिस्सा जो 2001 में लगभग 53% था वह 2011 में लगभग 48% हो गया है। अल्मोड़ा और पौड़ी गढ़वाल नामक दो पहाड़ी जिलों में 2001 और 2011 के बीच ऋणात्मक जनसंख्या वृद्धि रही। दशक के दौरान इन दोनों जिलों में सम्मिलित रूप से, 17,868 व्यक्तियों की निरपेक्ष गिरावट दर्ज की गई। राज्य की लगभग दो-तिहाई जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और कृषि क्षेत्र में कार्यरत लोगों की भी इतनी ही हिस्सेदारी है। 189 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर के साथ उत्तराखंड अधिकांश भारतीय राज्यों की तुलना में काफी कम घना बसा हुआ है (जबकि पूरे भारत का जनसंख्या घनत्व 455/प्रति वर्ग किमी है)। भारत की लगभग 2.4% प्रति वर्ष की सामान्य शहरीकरण दर के अनुरूप हाल के वर्षों में, मैदानी जिलों में शहरी केंद्रों ने पहाड़ी क्षेत्रों से कृषि मज़दूरों को बड़ी संख्या में आकर्षित किया है। उत्तराखंड का लगभग 30.2% भाग (2011 में) शहरीकृत है। राज्य में प्रति 1000 पुरुषों पर 963 महिलाओं का (2011 में) लिंगानुपात है जबकि कुल प्रजनन क्षमता दर 1.9 (2016 में) है।

मैदानी और पहाड़ी जिलों के बीच अंतर

अपेक्षाकृत कम औसत आय स्तरों और मानव विकास सूचकांक स्कोर के साथ उत्तराखंड के पहाड़ी जिले, मैदानी जिलों की अपेक्षा कम विकसित हैं। यह अंतर मुख्यतः मैदानी जिलों में शहरी केंद्रों की आर्थिक आकर्षण शक्ति के कारण उत्पन्न हुआ है, जहां बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण की गतिविधियां हुई हैं। उदाहरण के लिए पहाड़ी जिलों में पारंपरिक छोटे पैमाने की कृषि में उपलब्ध अवसरों की तुलना में राज्य की राजधानी देहरादून में तृतीयक क्षेत्रों जैसे कि होटल, परिवहन और दूरसंचार सेवाओं में अपेक्षाकृत बेहतर वेतनों के साथ रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं।

[2] गंगा भी कहा जाता है।

पलायन

भारत की जनगणना 2011 में उत्तराखंड में पलायन करने वालों की कुल संख्या 4,317,454 बताई गई थी, जिसमें महिला पलायन करने वालों की संख्या (2,836,147) पुरुष पलायन करने वालों (1,481,307) की तुलना में उल्लेखनीय रूप से अधिक थी। ग्रामीण–शहरी विभाजन, राज्य की पलायन गतिशीलता को स्पष्ट करने वाला संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण कारक है। ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविकाएं विविधीकृत करने में अक्षमता, बहिर्प्रवासन (50%) प्रेरित करने वाला सबसे प्रमुख कारक माना गया है, जिसके बाद शैक्षिक संस्थानों (15%) और स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं (9%) के अभाव को कारण माना गया है। पलायन करने वालों (42%) का सबसे बड़ा समूह 26 और 35 वर्ष आयु वर्ग वाला है और दो-तिहाई पलायन करने वाले राज्य के अंदर स्थानांतरण करते हैं। पलायन का एक सामान्य अर्थ रोजगार स्रोत के रूप में कृषि से विमुखता भी है। बहिर्प्रवासन के कारण पहाड़ी जिलों में कृषि श्रमिकों की संख्या कम हो रही है, जिससे बचे हुए, प्रायः वयस्क लोगों को अधिक श्रम करना पड़ रहा है। उत्तराखंड के पहाड़ों में खेती के काम में महिलाओं की बड़ी हिस्सेदारी है। श्रम शक्ति में आती कमी और इस वजह से आय के अभाव ने अनेक समुदायों को पूरी तरह से बहिर्प्रवासित बना दिया है। इस गतिशीलता के कारण, 2011 से अब तक 734 गाँव उजाड़ हो चुके हैं जो ग्रामीण पहाड़ी क्षेत्रों में निर्जनीकरण का होता विस्तार दर्शाता है।

धन प्रेषण

धन प्रेषण, उत्तराखंड के सामाजिक-आर्थिक विकास का अभिन्न अंग है। राज्य को इसकी 'मनी आर्डर आधारित अर्थव्यवस्था' के लिए जाना जाता है जो पलायन करने वालों द्वारा उनके परिवारों को डाक मनीआर्डरों के माध्यम से भेजे जाने वाले धन पर आधारित है। सभी में से तीन-चौथाई पलायन करने वालों द्वारा अपने मूलस्थान को प्रायः मासिक (42%) रूप से धन प्रेषित किया जाता है। चम्पावत, चमोली और रूद्रप्रयाग के पहाड़ी जिलों और देहरादून और हरिद्वार के मैदानी जिलों में यह अनुपात और भी अधिक (लगभग 80%) है। इस धनप्रेषण का सर्वाधिक भाग, दैनिक घरेलू उपभोग की ज़रूरत वाली चीज़ों जैसे कि भोजन व कपड़ों पर खर्च किया जाता है, जिसके बाद शिक्षा और स्वास्थ्य पर खर्च का स्थान है और कुछ धनराशि का व्यय कृषि श्रमिकों हेतु भुगतान करने और कृषि में निवेश करने के लिए भी किया जाता है।

जलवायु

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों ने उत्तराखंड में लोगों की आजीविकाओं को प्रभावित करना शुरू कर दिया है, जिससे वे अपनी कुछ कृषि विधियों में बदलाव कर रहे हैं। लेकिन पूर्वानुमानों से पता चलता है कि बढ़ते जलवायु दबाव को देखते हुए, भविष्य में अनुकूलन के अधिक महत्त्वपूर्ण प्रयासों की आवश्यकता होगी। इस रिपोर्ट में राज्य के ऐतिहासिक रूझानों और विभिन्नताओं पर तथा तापमान, वर्षण और चरम जलायु दशाओं के भावी पूर्वानुमानों के बारे में चर्चा की गई है। एक गहन साहित्यिक समीक्षा और दो उत्सर्जन परिदृश्यों आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 के लिए अतिरिक्त मूल विश्लेषण से डाटा प्राप्त किया गया है। इन विश्लेषणों में से किसी के भी परिणाम पेरिस समझौते की तापमान सीमाओं के अनुरूप नहीं हैं, जो यह इंगित करते हैं कि यदि देश उत्सर्जन अनुपालन में विफल रहे तो क्या होना संभावित है।

तापमान

1911 और 2011 के बीच उत्तराखंड के माध्य वार्षिक तापमान में 0.46° से. की बढ़ोत्तरी दर्ज की गई जो (1850–1900 बेसलाइन के सापेक्ष) वैश्विक माध्य पृष्ठीय तापमान में 2006–2015 की समय अवधि में प्राप्त 0.87° से. की वृद्धि से काफी कम है। पहाड़ी जिलों जैसे कि उत्तरकाशी, चमोली, रूद्रप्रयाग और पिथौरागढ़ में सबसे ज़्यादा तापन (वार्मिंग) देखा गया है; जबकि मैदानी जिलों हरिद्वार, देहरादून और पौड़ी गढ़वाल में अपेक्षाकृत कम तापन देखा गया है। साक्ष्यों से पता चलता है कि राज्य के पर्वतीय क्षेत्र 'उन्नयन आश्रित तापन' का अनुभव कर रहे हैं - यह परिघटना हिम प्रकाशानुपात, मेघ आच्छादन (क्लाउड कवर), वायुमंडलीय और पृष्ठीय जलवाष्प परिवर्तनों और भूपृष्ठ पर

वाष्पशील कणों (एयरोसोल्स) आदि कारकों की आपसी क्रिया के कारण होती है। इसके परिणामस्वरूप, अधिक ऊंचाई वाले इलाकों में तापन की दर बढ़ जाती है, जिससे वहां कम ऊंचाई वाले इलाकों की तुलना में तापमान में अधिक तेज़ी से तथा गंभीर बदलाव होते हैं।

1951 से 2013 तक तिरसठ वर्षों में राज्य का वार्षिक अधिकतम तापमान 0.42° से. बढ़ा है और वार्षिक न्यूनतम तापमान −0.25° से. कम हो गया है, जो घटती हिमरेखाओं और ग्लेशियरों के पिघलने के साक्ष्यों के अनुरूप है। भविष्य में, अधिकतम और न्यूनतम तापमानों में सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर मार्च से मई के दौरान पूर्व मानसून ऋतु के समय होने पूर्वानुमानित हैं, जो फसल विकास को प्रभावित करेंगे।

इसके अलावा, इन तापमानों की चरम स्थितियां और बढ़ती जाएंगी। 1971–2005 बेसलाइन की तुलना में, आरसीपी4.5 परिदृश्य के अंतर्गत उत्तराखंड का औसत वार्षिक अधिकतम तापमान निकट-भविष्य (2021–2050) में 1.6° से., मध्यम-भविष्य (2051–2080) में 2.4° से. और सुदूर-भविष्य (2081–2099) में 2.7° से. बढ़ना पूर्वानुमानित है। आरसीपी8.5 परिदृश्य के अंतर्गत यह निकट-भविष्य में 1.9° से. मध्यम-भविष्य में 3.8° से. और सुदूर-भविष्य में 5.3° से. बढ़ना पूर्वानुमानित है। अधिकतम तापमान में 5° से. से अधिक की बढ़ोत्तरी, खासतौर से मैदानी जिलों में कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों में बाहरी कार्य को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकती है। गर्म और बहुत गर्म दिनों की संख्या भी बढ़नी पूर्वानुमानित है। गर्म दिनों का अर्थ दिनों की उस प्रतिशत संख्या से है जब तापमान बेसलाइन (1971–2005) के 90 प्रतिशत से अधिक हो और बहुत गर्म दिन वे दिन होते हैं जब अधिकतम तापमान बेसलाइन (1971–2005) के 95 प्रतिशत से अधिक हो।

आरसीपी4.5 परिदृश्य के लिए औसत वार्षिक न्यूनतम तापमान निकट-भविष्य में 1.5° से., मध्यम-भविष्य में 2.4° से. और सुदूर-भविष्य में 2.7° से. बढ़ना पूर्वानुमानित हैं। आरसीपी 8.5 परिदृश्य के अंतर्गत निकट-भविष्य में 1.8° से., मध्यम-भविष्य में 3.7° से. और सुदूर-भविष्य में 5.2° से. बढ़ने पूर्वानुमानित हैं। राज्य के अन्य भागों की तुलना में, उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ के उत्तरी पहाड़ी जिलों में आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 दोनों परिदृश्यों के लिए न्यूनतम और अधिकतम तापमानों में सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन पूर्वानुमानित हैं।

वर्षा

उत्तराखंड राज्य और यहां के निवासी, कृषि हेतु पर्याप्त पानी के लिए गर्मियों में समय पर मानसून पर निर्भर हैं, क्योंकि, ज़्यादातर खेती वर्षा-सिंचित है और आधुनिक सिंचाई सुविधाओं का अभाव है। पिछली शताब्दी के दौरान वर्षा में उल्लेखनीय विभिन्नता रही है, जबकि 1990 के दशक से वर्षायुक्त दिनों की संख्या में कमी आती गई है। विशेष रूप से, राज्य के पहाड़ी क्षेत्र अधिक सूखे होते जा रहे हैं। हालाँकि वर्षा की कुल मात्रा में कोई महत्त्वपूर्ण गिरावट नहीं आई है, जिसका अर्थ है कि हाल के दशकों में चरम वर्षा वाली घटनाओं में कुछ बढ़ोत्तरी हुई है।

उत्तराखंड की पार्वतिकी (पर्वतीय स्वरूप) के कारण यहां वर्षा का पैटर्न जटिल है, जिससे भावी वर्षा रूझानों के पूर्वानुमान कठिन हो जाते हैं। इसके बावजूद कुछ अनुमान किया जा सकते हैं। आरसीपी4.5 के अंतर्गत निकट-भविष्य में लगभग 6%, मध्यम-भविष्य में 10% और सुदूर-भविष्य में 16% औसत वार्षिक वर्षा वृद्धि पूर्वानुमानित है। आरसीपी8.5 के अंतर्गत इन्हीं अवधियों के लिए क्रमशः 8%, 20% और 32% की बढ़ोत्तरी पूर्वानुमानित हैं। सबसे बड़े परिवर्तन जून से सितम्बर की मानसून वाली ऋतु के दौरान होने पूर्वानुमानित हैं। आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 परिदृश्यों के लिए राज्य के अन्य भागों की तुलना में दक्षिणी जिलों जैसे कि ऊधम सिंह नगर, नैनीताल, चम्पावत और पौड़ी गढ़वाल में निकट-भविष्य अवधि में वार्षिक औसत वर्षा में सर्वाधिक वृद्धि पूर्वानुमानित है। दिसम्बर से फरवरी की शीतऋतु के दौरान वर्षा, दोनों परिदृश्यों के अंतर्गत (सभी समय अवधियों के लिए) घटनी पूर्वानुमानित है, जिसका अर्थ है कि अन्य महीनों में इसकी तीव्रता हो सकती है। वास्तव में, उत्तराखंड के सभी जिलों में आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 दोनों के अंतर्गत भारी वर्षा की घटनाएं बढ़नी पूर्वानुमानित हैं, हालांकि भारी वर्षा वाले दिनों की संख्या आरसीपी8.5 में अपेक्षाकृत अधिक रहनी पूर्वानुमानित है।

उत्तराखंड की जटिल पार्वतिकी के अलावा, यहां मौसम विज्ञान केंद्र (स्टेशन) भी बहुत कम हैं, जिसके परिणामस्वरूप स्थानिक साक्ष्य उपलब्ध न हो पाने के कारण मानसून की स्थान विशिष्ट विशेषताएं समझने में बाधा पड़ती है। पर्याप्त डाटा एकत्रित करने के लिए अधिक रेजोल्यूशन वाले, क्षेत्रीय पैमाने वाले ऐसे मॉडलों में अधिक निवेश करने की ज़रूरत है जो पश्चिमी हिमालयी तलहटी में वर्षा के पैटर्नों को अधिक सटीकता से सिम्युलेट करने वाली सीमावर्ती स्थितियां प्रदान कर सकें।

पलायन और जलवायु परिवर्तन

जलवायु परिवर्तन, उत्तराखंड में जनसंख्या की मौजूदा गतिशीलताओं को प्रभावित करने वाले जोखिम कारक के रूप में कार्य कर रहा है। सत्तर प्रतिशत जनसंख्या, ऐसी वर्षा-सिंचित कृषि पर निर्भर है, जो अधिक उत्पादक नहीं है। जलवायु परिवर्तन के कारण विगत दो दशकों में कृषि उत्पादकता में और भी कमी आई है, जिससे बहिर्प्रवासन पर दबाव और बढ़ा है। प्रेक्षणों से ज्ञात होता है कि कम और असमान वर्षा ने फसल उत्पादन में पहले से ही कमी कर दी है, जबकि आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 के लिए पूर्वानुमान, कृषि जल तनाव में वृद्धि और उपज में और भी अधिक गिरावट प्रदर्शित करते हैं। अधिक ऊंचाई वाले अनेक क्षेत्रों में, जलवायु परिवर्तन के कारण पहाड़ पिघल रहे हैं (और वहां वनस्पतियां उग रही हैं) जिससे पानी के स्रोत सूख रहे हैं और जलवायु प्रभावों, आजीविका और पलायन के बीच संबंध अधिक गंभीर रूप से स्पष्ट हो रहा है। चित्र 1 राज्य में कृषि - आधारित आजीविकाओं के पूर्वानुमानित जलवायु जोखिम इंगित करता है। मौजूदा बहिर्प्रवासन पैटर्नों और पूर्वानुमानित जलवायु परिवर्तन प्रभावों का संयोजन – मुख्यतः उत्तरी, मध्य और पश्चिमी भागों में – इंगित करता है कि इन क्षेत्रों में आजीविकाओं के अधिक प्रभावित होने की संभावना है।

यह आश्चर्यजनक नहीं है कि भारतीय हिमालयी क्षेत्र में दशाओं का एक विश्लेषण यह दर्शाता है कि पर्यावरणीय दशाओं के कारण आय में गिरावट आने के साथ पलायन में वृद्धि होती है। लोगों के प्रवासित हो जाने के साथ उनके समुदायों में कृषि श्रमिकों की संख्या कम बचती है, जो आय में और गिरावट उत्पन्न कर सकती है। कम लोगों और कम विकल्पों के बचने के साथ, ग्रामीण पहाड़ी जनसंख्या, मज़बूरीवश पलायन और विस्थापन के प्रति अधिक असुरक्षित बन सकती है। यह स्वतः संचालित होने वाली प्रक्रिया, स्थानीय अनुकूलन क्षमताएं खत्म कर देती है और सामाजिक पूँजी में कमी लाती है जिससे अंततः बस्तियां पूरी तरह से निर्जन हो जाती हैं। (या 'भुतहे गाँव' बन जाती हैं, जैसा कि उत्तराखंड में इन्हें कहा जाता है)।

जहां कुछ लोग प्रवास करने के लिए मज़बूर हो सकते हैं वहीं अन्य लोग पारिवारिक दायित्वों या संसाधनों के अभाव के कारण स्थान छोड़कर जा नहीं सकते। उत्तराखंड से, पुरुषों के प्रवास कर जाने के कारण घरों में बचने वाली महिलाओं पर खेती-बाड़ी और घरेलू काम-काज दोनों को देखने की दोहरी जिम्मेदारी आ जाती है - जिसके अलावा उनको जलवायु प्रभावों का भी सामना करना पड़ता है। हालांकि समाज के सबसे असुरक्षित वर्ग, निश्चित दशाओं में पलायन कर सकते हैं, लेकिन अधिक संसाधनों वालों के मुकाबले उनके पास विकल्पों की उपलब्धता नहीं होती। चूंकि भविष्य में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव अधिक गंभीर होते जाने के अनुमान हैं, ऐसे में सीमाएं टूट सकती हैं और आर्थिक रूप से वंचित लोग अपने स्थानों पर फंस सकते हैं।

हालाँकि, लंबे समय के जलवायु परिवर्तन जनांकिक रिवर्सल भी कर सकते हैं। पहाड़ी जिलों से बहिर्प्रवासन के वर्तमान रूझान के बावजूद, कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों के लिए पूर्वानुमानित उच्च तापन स्तरों को देखते हुए इनके मुकाबले भविष्य में अधिक ऊंचाई वाले इलाके, अपेक्षाकृत अनुकूल जलवायु दशाएं प्रदान कर सकते हैं।

अनुसंधान की कमियां

उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन और पलायन के बीच समस्त संबंधों की पहचान करने और समझने के लिए अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए कौन-से संदर्भगत कारक यह निर्धारित करते हैं कि समान स्थितियों या एक समान परिवर्तनशील जलवायु दशाओं में रहने के बावजूद क्यों कुछ लोग प्रवास कर जाते हैं जबकि कुछ लोग वहीं बने रहते हैं। ऐसे संबंधों का उन्नत और अधिक गहन विश्लेषण, अनुकूलन योजनाओं की प्रभावशीलता में सुधार कर सकता है।

परिवर्तनशील जलवायु में विभिन्न प्रकार के आवागमन को समझने के लिए अधिक पड़ताल की आवश्यकता है। उत्तराखंड में आवागमन पर प्रायः स्थायी या अस्थायी पलायन के दायरे में चर्चा की जाती है। लेकिन अन्य प्रकार के आवागमन भी उत्तराखंड में प्रासंगिक हैं और विचार किए जाने के योग्य हैं। इनमें ऋतुकालीन चरवाही, मौसमी पलायन और विस्थापन शामिल हैं – जो सभी जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो सकते हैं।

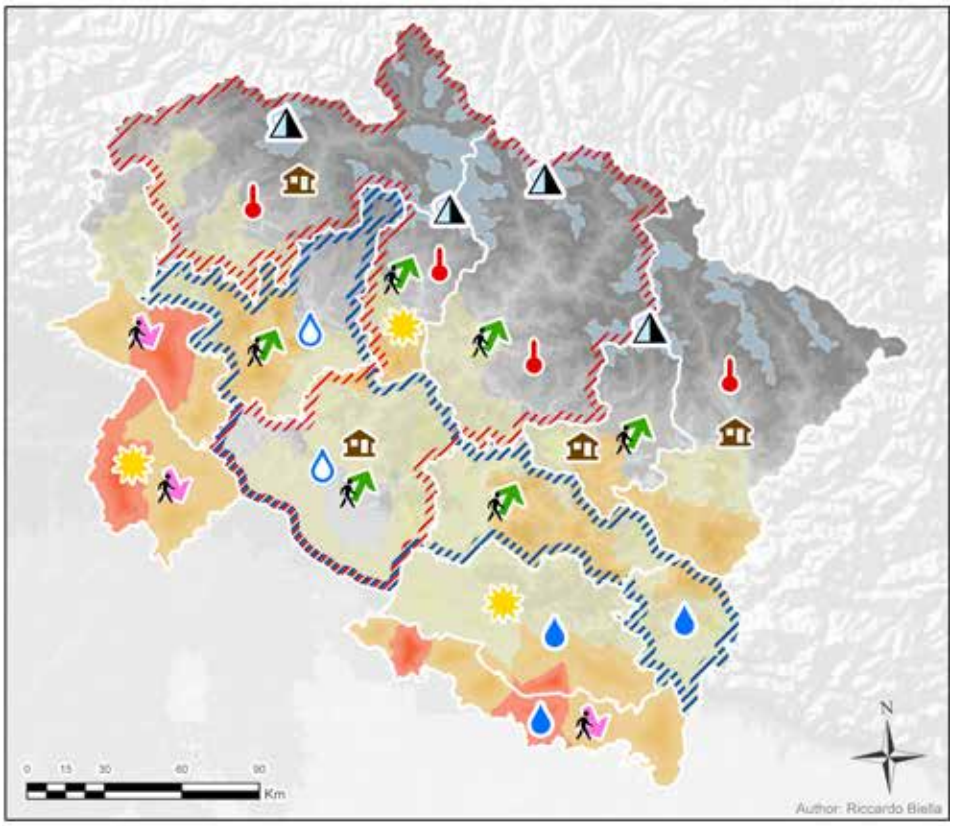

Legend

Population density by tehsil (Census 2011)
- Population density > 800 /km2
- Population density >200 /km2
- Population density >100 /km2
- Population density <100 /km2

Future impacts on agriculture
- Decrease in crop yields
- Increase in agricultural water stress

Projected climate change
- Temperature increase
- Precipitation increase

Projected climate extremes
- Increase in very warm days
- Increase in heavy precipitation days

Impact on glaciers (Sati 2020)
- Major glaciers
- Glacial melt

Migration indicators (RDMC 2018)
- Main district of origin of migrants
- Main migrant destination district
- Abandoned villages

References
Census 2011 - Census, 2011. Migration. Census. Government of India

INRM 2016 - INRM, 2016. Agenda for Climate Action, Agriculture: Linking the Culnerability and Risk Assessment for Uttarakhand with Policy Implications for the State. CDKN

RDMC 2018 - Rural Development and Migration Commission, 2018. Interim Report on The Status Of Migration in Gram Panchayats Of Uttarakhand. Rural Development and Migration Commission, Pauri Gharwal

Sati Vishwambhar Prasad. 2020 Glaciers of the Uttarakhand Himalaya. In: Himalaya on the Threshold of Change. Advances in Global Change Research, vol 66. Springer, Cham.

चित्र 1: उत्तराखंड का आजीविका जोखिम मानचित्र पूर्वानुमानित जलवायु परिवर्तन प्रभावों, पूर्वानुमानित जलवायु चरम दशाओं, कृषि पर प्रभावों, पलायन संकेतक और जनसंख्या घनत्व को रेखांकित करता है। राज्य के उत्तरी, पश्चिमी और मध्य भाग में पहाड़ी जिले, अधिक प्रभावित हैं और उच्चतर आजीविका जोखिमों का सामना कर सकते हैं, क्योंकि यहां अधिकांश जनसंख्या निर्वाह - आधारित, वर्षा-सिंचित कृषि पर निर्भर है – जिससे पहाड़ी से मैदानी जिलों की ओर बहिर्प्रवासन और बढ़ता है

उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन और पलायन के विशिष्ट प्रभावों को समझने के लिए और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है। इस बारे में आनुभविक साक्ष्य विकसित किए जाने चाहिए कि किस तरह से महिलाएं और पुरुष, पलायन के संबंध में विभिन्न निर्णय ले सकते हैं। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, पुरुषों के प्रवास कर जाने के बाद घर में रह जाने वाली महिलाओं को जलवायु परिवर्तन का सामना करने के साथ ही खेतीबाड़ी और घरेलू दोनों तरह की गतिविधियों का बोझ उठाना पड़ता है। तथापि हम महज यह मानकर नहीं चल सकते कि विवाहित महिलाओं के पास कम विकल्प होते हैं और उनके वहीं रहने की संभावना अधिक रहती है, जबकि अविवाहित महिलाओं के पास विकल्प अधिक होते हैं और उनके प्रवास कर जाने की संभावनाएं अधिक रहती हैं। ऐसी संकल्पनाओं का परीक्षण वास्तविक डाटा के सापेक्ष किया जाना चाहिए।

जनसंख्या में कौन लोग वहीं रहने का विकल्प चुनते हैं और कौन स्थानांतरण में अक्षम होते हैं, इसकी पहचान की जानी चाहिए और उनकी आकांक्षाओं का विश्लेषण किया जाना चाहिए। पर्यावरणीय निम्नीकरण और आपदाओं से प्रभावित कुछ लोग पलायन में असमर्थ हो सकते हैं। ऐसा वित्तीय संसाधनों के अभाव के कारण या घरेलू परिस्थितियों जैसे कि बड़े-बुजुर्गों की देखभाल करने की जिम्मेदारियों के कारण हो सकता है। इन कारकों के प्रभावों के बारे में अधिक जानकारी आवश्यक है। इसी प्रकार से, क्यों कुछ लोग स्वेच्छा से ऐसी प्रतिकूल दशाओं में भी वहीं रहना पसंद करते हैं, जबकि उन दशाओं के कारण अनेक अन्य लोग वहां से चले जाते हैं? अपलायन भी पलायन की तरह ही पड़ताल की माँग करता है।

डाटा की आवश्यकताएं

तुलनीय, देशांतरीय और भूसंदर्भित डाटा अनिवार्य है, लेकिन आमतौर से उपलब्ध नहीं है। अधिक सटीक विश्लेषण निर्मित करने के लिए विशेष रूप से, अस्थायी और स्थानिक पैमानों पर पर्यावरणीय और जनांकिक चरों का कालक्रमानुसार डाटा आवश्यक है। घरेलू और ग्राम स्तरों पर सर्वाधिक बारीकियों (सूक्ष्मताओं) वाला डाटा एकत्र करने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए। दीर्घकालीन देशांतरीय डाटा जिसकी तुलना की जा सकती हो और जियोटैग्ड (भूसंदर्भित) हो, वह सूचित नीति निर्माण में सहायता के लिए पलायन के पैटर्न समझने में मदद कर सकता है।

उत्तराखंड में अच्छी गुणवत्ता वाले, ऐतिहासिक मौसमी डाटा का अभाव, राज्य में जलवायु संबंधी अनुसंधान को अनिवार्य रूप से सीमित कर देता है। इसके मौसम स्टेशनों की संख्या और परिष्कृति (गुणवत्ता) में बढ़ोत्तरी और सुधार किया जाना चाहिए। क्षेत्रीय-पैमाने वाले मॉडलों से परिणामों का सत्यापन करने के लिए अधिकाधिक सटीक प्रेक्षण अति आवश्यक हैं। फिर इन्हें समायोजित करके उन्नयन के पैटर्न, पार्वतिकी उत्थापन (ओरोग्राफिक लिफ्टिंग) आदि दशाओं और अन्य जटिल स्थलाकृतिक विशेषताओं को बेहतर प्रस्तुत किया जा सकता है।

सांख्यिकीय कौशलों और डाटा अवसंरचना में निवेशों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। राष्ट्रीय जनसंख्या या पलायन जनगणनाओं द्वारा कैप्चर किए गए पलायन के डाटा में प्रायः यह शामिल नहीं होता कि किस तरह से पर्यावरणीय निम्नीकरण, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव या आपदाएं, पलायन को प्रभावित करते हैं। ऐसे सुधारों के साथ पूरक रूप में, डाटा संकलन हेतु उत्तरदायी संस्थानों और एजेंसियों का अनिवार्य प्रशिक्षण और क्षमता सृजन किया जा सकता है।

नीति निर्माताओं के लिए अनुशंसाएं (सिफारिशें)

जलवायु परिवर्तन की नीतियों और योजनाओं में जलवायु परिवर्तन और पलायन के बीच संबंध पर विचार किया जाना चाहिए। जलवायु परिवर्तन पर *उत्तराखंड कार्य योजना* (2014) में, पलायन *पर जलवायु परिवर्तन* के संभावित प्रभावों को समझने के लिए एक सम्पूर्ण व्यापक अध्ययन की आवश्यकता को पहले ही मान्यता दी गई है। असुरक्षाओं के मौजूदा आकलनों, जैसे कि भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) द्वारा 2019 में भारतीय हिमालयी क्षेत्र (आईएचआर) के लिए किया गया आकलन या उत्तराखंड सरकार के लिए जिला और प्रखंड स्तर पर आईएनआरएम कंसल्टैंट्स के 2016 के असुरक्षा मूल्यांकन, में वर्तमान और संभावित भावी संबंधों को एकीकृत करना इस दिशा में पहला कदम हो सकता है। अन्य चरणों में निम्न शामिल हैं:

- **पलायन के परिणामस्वरूप जनसंख्यात्मक परिवर्तनों के लिए तैयारी** *सुरक्षित, क्रमबद्ध और नियमित पलायन पर वैश्विक अनुबंध* (जीसीएम) के सिद्धांतों के अनुरूप, जिस पर भारत ने भी हस्ताक्षर किए हैं, सरकार स्थानांतरण करने वालों का सुरक्षित और क्रमबद्ध पलायन सुनिश्चित करने के लिए कृतसंकल्प है। हालाँकि प्रवास करने वालों की सहायता करने के साथ *यथा स्थान* पर जलवायु अनुकूलन विकल्पों हेतु सहायक रणनीतियां भी विकसित की जानी चाहिए, जिससे लोग अपना घर छोड़े बिना समायोजन कर सकें।

- **अर्थव्यवस्था को नया संबल देने के लिए पहाड़ी जिलों में वैकल्पिक आजीविका विकल्पों का सृजन** उदाहरण के लिए, उत्तराखंड में अनेक प्राकृतिक संपत्तियां उपलब्ध हैं, जिनका दोहन करके धारणीय पारिस्थितिक उद्यान विकसित किए जा सकते हैं। गाँवों में गृहनिवास (होमस्टे) को बढ़ावा देने से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सृजित हो सकते हैं। धारणीय, व्यवस्थित पर्यटन पहाड़ी जिलों की ऐतिहासिक आर्थिक वंचनाओं को परिसंपत्तियों में बदलने के लिए एक प्रभावशाली विकल्प हो सकता है। हालांकि पर्यटन केवल एक संभावना है तथा अन्य विकल्पों का भी अन्वेषण किया जाना चाहिए।

- **कृषि नीतियों की नए सिरे से समीक्षा।** घटती कृषि उत्पादकता, उत्तराखंड में बहिर्प्रवासन का एक प्रमुख प्रेरक है। अपने आय स्रोत बढ़ाने और उनमें सुधार करने के लिए किसानों को सहायता की आवश्यकता है। उनकी कृषि विधियों को आधुनिक बनाने और उनकी फसलों का विविधीकरण करने के लिए कृषि विस्तार सेवाएं, शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, मशरूम आदि नकदी फसलें अधिक उगाना, जिनके लिए पानी की कम आवश्यकता होती है। या खाद्यान्नों के साथ औषधीय और सगंध पौधों की अंतःफसली खेती करना। सौंदर्य प्रसाधन और फार्मास्यूटिकल क्षेत्रों में निवेश पर उच्च प्रतिफल हैं और अधिक माँग है। सिंचाई चैनलों और वर्षाजल संग्रहण संरचनाओं के विकास, बेहतर गुणवत्ता के बीज की उपलब्धता, फसल और पशु बीमा के बारे में जानकारी, बाज़ारों तक बेहतर पहुँच और संपर्क सुविधाएं या सेब आदि बागानी फसलों की बेहतर मार्केटिंग आदि के लिए किसानों को सहायता दी जा सकती है।

संक्षेप में, उत्तराखंड की पोस्टकार्ड वाली छवि – इसके आकर्षक पर्वतों, नदियों और घाटियों की विशेषता– के पीछे जलवायु परिवर्तन की गंभीर चुनौतियां छिपी हैं जिनका राज्य के पहाड़ी जिलों में निर्वाह कृषि पर निर्भर किसानों तथा घाटियों में शहरी केंद्रों के लोगों को सामना करना होगा। तथापि यदि तापन को 2° से. से कम पर रखा जा सके तो इसके प्रभावों में सुधार करने के सार्थक अवसर मौजूद रहेंगे। ग्रामीण आजीविकाओं का स्थिरीकरण और उन्नत पारंपरिक कृषि में निवेश, उत्तराखंड के एक धारणीय भविष्य की दिशा में महत्त्वपूर्ण बुनियादी आधार हैं।

परिचय

उत्तराखंड, भारत के पहाड़ी क्षेत्र में सीढ़ीदार खेती
© अनस्प्लैश/केतन पांडेय

1 परिचय

जलवायु परिवर्तन एक अपरिहार्य तथ्य है और इसके प्रभाव विश्व के अनेक भागों में देखे गए हैं। प्रतिक्रिया की सीमित क्षमता वाले, विकासशील और उभरती अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों के मामले में यह विशेष रूप से सत्य है। इस रिपोर्ट में ऐसे ही एक मामले को, उत्तर भारत के उत्तराखंड राज्य में इस प्रक्रिया की भूमिका को रेखांकित किया गया है। जलवायु परिवर्तन सहित परिवर्तन के अनेक प्रेरक, उत्तराखंड के प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित समुदायों पर कार्य करते हैं। आर्थिक वृद्धि, बेहतर संचार नेटवर्क, बेहतर सड़कों के कारण राज्य में लोगों की आकांक्षाएं बढ़ रही हैं और आवागमन प्रेरित हुआ है। मोबाइल फोन का प्रसार और इंटरनेट की उपलब्धता ने बाहरी दुनिया से संपर्क बढ़ा दिया है और राज्य के सुदूर क्षेत्रों में भी ऐसे संपर्क और नेटवर्क मज़बूत बनाने में मदद की है जिनकी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी (Mehta, 2014)। सड़कों के बढ़ते नेटवर्क के कारण कनेक्टिविटी अधिक बढ़ गई है। पहाड़ियों के गाँवों से मैदानों में शहरी केंद्रों तक बहिर्प्रवासन के रूझान के साथ इन परिवर्तनों ने शहरी केंद्रों में अवसरों के द्वार खोल दिए हैं। बहिर्प्रवासन, पहाड़ी जिलों में निर्जनीकरण का एक प्रमुख कारक बन गया है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या का आवागमन प्रभावित करने वाले एक जोखिम कारक के रूप में कार्य कर रहा है।

उत्तराखंड में लोग पहले से ही जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का सामना कर रहे हैं, जैसे कि बदलते तापमान, ऊपर उठती हिमरेखाएं, पिघलते ग्लेशियर, अनियमित वर्षा, जाड़ों में बर्फ में कमी, गर्मी में बढ़ोत्तरी, फसल ऋतुएं बढ़ना, निश्चित फसलों के लिए खेती के परिक्षेत्रों में परिवर्तन और बारहमासी जलधाराओं का सूखना (Government of Uttarakhand [GU], 2014)। चूंकि राज्य की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण पहाड़ी क्षेत्रों में रहती है और वर्षा-सिंचित कृषि पर निर्भर है, इसलिए ये प्रभाव इन लोगों की आजीविकाओं के लिए गंभीर परिणाम उत्पन्न करेंगे।

उत्तराखंड राज्य दो मुख्य भौगोलिक परिक्षेत्रों में विभाजित है: हिमालय के पहाड़ी जिले और वे मैदानी जिले जहां कई बड़े शहरी केंद्र स्थित हैं। विविध कारणों से, जिनमें जलवायु परिवर्तन के बढ़ते हुए गंभीर प्रभाव भी शामिल हैं, लोग पहाड़ी से मैदानी जिलों की ओर प्रवास करने के लिए प्रेरित होते हैं। एक तरफ तो इस गतिशीलता से गाँव निर्जन हो जाते हैं और पहाड़ी जिलों में कृषि क्षेत्र संकुचित होता जाता है; वहीं दूसरी ओर वे मैदानी क्षेत्रों में पहले से घने बसे शहरों पर अतिरिक्त दबाव उत्पन्न करते हैं। इसके परिणामस्वरूप शहरों में भीड़, संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा और मलिन बस्तियों की संख्या बढ़ती जाती है। (Habeeb and Javaid, 2019; Rural Development and Migration Commission, 2018; Sati, 2020)। पहाड़ी जिलों के गाँवों का निर्जनीकरण होने से वहां श्रमिकों की कमी हो जाती है जिससे गाँव से बहिर्प्रवासन को और अधिक बल मिलता है क्योंकि वहां बचे हुए लोगों पर कृषि श्रम का अतिरिक्त भार पड़ता है और इसलिए वे प्रभावी ढंग से पारंपरिक कृषि नहीं कर पाते। इसके अलावा, बहिर्प्रवासन मूलस्थान के सामाजिक ताने-बाने को भी छिन्न-भिन्न कर सकता है। राज्य सरकार ने जलवायु परिवर्तन और पहाड़ी जिलों से स्थायी बहिर्प्रवासन को गंभीर चुनौतियां माना है (GU, 2014; Rural Development and Migration Commission, 2018)।

उत्तराखंड में, जलवायु परिवर्तन और पलायन को महत्त्वपूर्ण नीतिगत दस्तावेज़ों में स्थान दिया गया है (for climate change, refer to Uttarakhand Action Plan on Climate Change, 2014; for migration, see the Report on Status of Migration in Gram Panchayats of Uttarakhand, Rural Development and Migration Commission, 2018) देखें। जहां उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन और पलायन के बारे में अधिक जानकारी मौजूद है, यह केवल राज्य सरकार के विविध विभागों और एजेंसियों के पास विभिन्न रिपोर्टों विविध नीतियों और योजनाओं में अलग-अलग बिखरे रूप में उपलब्ध है। अतएव इसे प्राप्त करना प्रायः कठिन है। इसके

अलावा, उत्तराखंड में पलायन और जलवायु परिवर्तन के बीच संबंधों पर केंद्रित कुछ ही अध्ययन मौजूद हैं। यह कमी दूर करने में सहायता के लिए, इस रिपोर्ट में जलवायु परिवर्तन और पलायन के पैटर्नों पर अधिकाधिक उपलब्ध जानकारी को यथासंभव संकलित करने का प्रयास किया गया है। यह कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों की महत्त्वपूर्ण भूमिका और ग्रामीण आजीविकाओं और पलायन से इसके संबंधों का आकलन करती है। इस विषय के बारे में ज्ञानवर्धन करते हुए यह रिपोर्ट, राज्य की जलवायु परिवर्तन और पलायन नीतियों के बारे में जानकारी और मार्गदर्शन प्रदान करेगी।

यह रिपोर्ट उत्कृष्ट साहित्य की समीक्षा पर आधारित है जिन्हें वैज्ञानिक प्रकाशन, सरकारी रिपोर्टें, नीतिगत दस्तावेज़, कार्यपत्रों तथा सांख्यिकीय आंकड़ों (डाटा) आदि के विविध स्रोतों से प्राप्त किया गया है। शुरुआत में अध्याय 2 में उत्तराखंड का एक अवलोकन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें 2000 में राज्य के गठन के बाद से इसकी अर्थव्यस्था, जनसंख्या (और निर्जनीकरण), निर्धनता, क्षेत्रीय असमानताओं और मानव विकास सूचकांक संबंधी रूझानों का वर्णन किया गया है। अध्याय 3 उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन विभिन्नताओं और असुरक्षाओं पर केंद्रित है – जिसमें वर्षा और तापमान के रूझान और पूर्वानुमान, चरम मौसम घटनाएं और जिला-वार असुरक्षित स्थितियों की एक चर्चा शामिल है। पलायन का एक विश्लेषण अध्याय 4 में दिया गया है जिसमें ऐतिहासिक रूझानों, वर्तमान पैटर्न, पलायन के कारण, पलायन करने वालों के गंतव्य स्थल, स्थायी और गैर-स्थायी आवागमन, उजाड़ गाँव और निर्जनीकरण शामिल हैं। जलवायु परिवर्तन के रूझानों और पलायन के पैटर्नों पर विचार करने के पश्चात अध्याय 5 कृषि पर ध्यान केंद्रित करते हुए जलवायु परिवर्तन और पलायन के बीच संबंधों का विश्लेषण करता है। अध्याय 6 में पलायन के संदर्भ में मौजूदा नीतिगत रूपरेखाओं की चर्चा की गई है। अंत में अध्याय 7 में अनुसंधान में कमियों, डाटा की आवश्यकताओं और नीतिगत सिफारिशों के रूप में प्राथमिकताओं को रेखांकित किया गया है।

यह रिपोर्ट उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन के रूझानों और पलायन के पैटर्नों और उनके संबंधों का एक साक्ष्य- आधारित अवलोकन प्रदान करती है। इस विषय पर अकादमिक और नीतिगत चर्चाएं प्रारंभ कराना इसका अभिप्राय है, जिनका महत्त्व आने वाले समय में और भी बढ़ेगा।

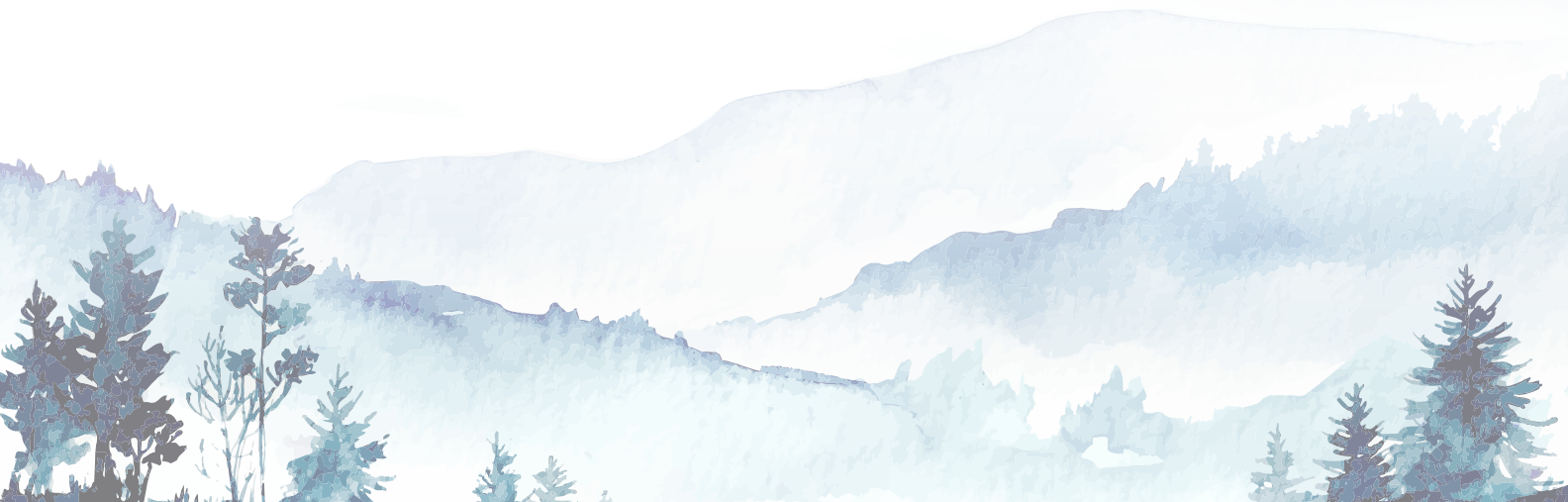

उत्तराखंड का अवलोकन

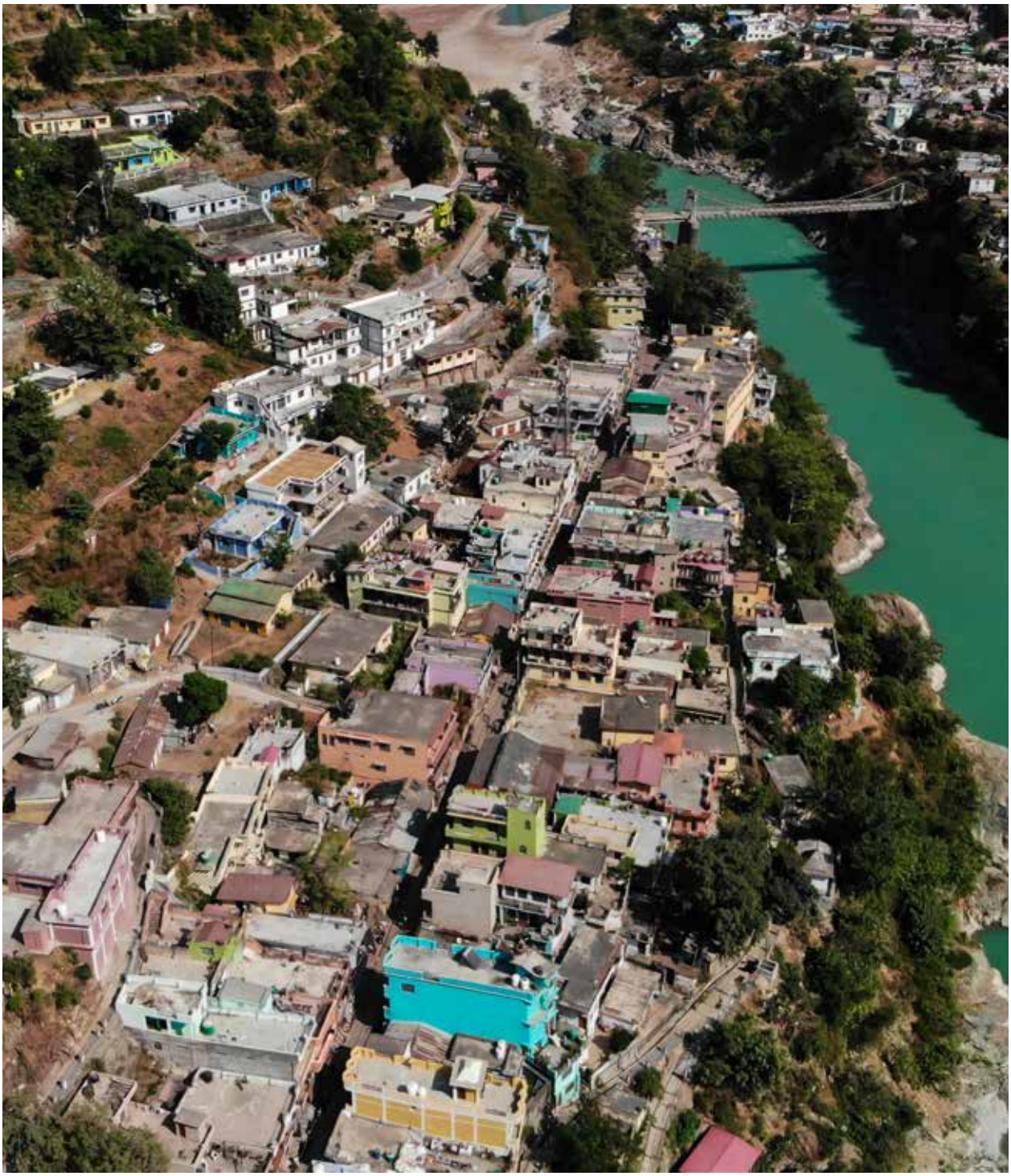

पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड में श्रीनगर शहर का हवाई दृश्य। अलकनंदा नदी के तट पर स्थित।

© शटरस्टॉक/मानवेन्द्र सिंह रावत

2 उत्तराखंड का अवलोकन

राज्य का दर्जा हासिल करने के लिए यहां के निवासियों द्वारा किए गए एक लंबे संघर्ष के उपरांत 9 नवम्बर 2000 को, उत्तराखंड भारत गणराज्य का सत्ताइसवां राज्य बन गया (Kumar, 2011; Linkenbach, 2002; Pathak, 1999)। उत्तराखंड में उत्तर प्रदेश (यूपी) राज्य से अलग किए गए तेरह उत्तरी जिले शामिल हैं।[3] हिमालय की तलहटी में स्थित, पर्वतीय जनजीवन की खास विशेषताएं, यहां के लोगों के जीवन और आजीविका में एक केंद्रीय भूमिका निभाती हैं। अपने अधिकारों के संरक्षण के लिए उन्होंने एक पृथक राज्य की माँग की, क्योंकि उनको लगता था कि प्रमुख रूप से एक मैदानी राज्य उत्तर प्रदेश की राजनैतिक और विकास संबंधी प्रक्रियाओं में पर्वतीय लोगों के हितों की उपेक्षा होती रही है (उत्तराखंड आंदोलन के अवलोकन के लिए रिपोर्ट के अंत में परिशिष्ट में बॉक्स 8 देखें)। इस तथ्य के बावजूद कि पहाड़ केंद्रित विकास एक पृथक राज्य की माँग का निर्णायक कारण था, यहां के मैदानी क्षेत्र आर्थिक निवेशों से अनुपातहीन रूप से लाभान्वित हुए हैं। (अनुभाग 2.3 देखें।) इस गतिशीलता ने क्षेत्रीय विसंगतियों में बढ़ोत्तरी की है, जिससे पहाड़ी क्षेत्रों से मैदानी क्षेत्रों की ओर पलायन प्रेरित और स्थायी हुआ है। हालाँकि, प्रवास कर जाने का निर्णय केवल आर्थिक नहीं, बल्कि प्रायः परस्पर संबंधित कई जटिल कारकों पर निर्भर होता है, जिनमें सामाजिक, राजनैतिक, पर्यावरणीय व अन्य शामिल होते हैं (Foresight, 2011)। अतएव किसी विशिष्ट क्षेत्र में जलवायु – पलायन सहसंबंध पर विचार करने के दौरान, लोगों के प्रवास करने या न करने के कारणों को समझने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण आवश्यक है। यह अनुभाग उत्तराखंड का एक ऐसा ही व्यापक अवलोकन प्रदान करने के लिए है, जिसमें यहां की भौगोलिक विशेषताओं, जनसंख्या गतिकी, मानव विकास संकेतकों, आर्थिक वृद्धि और क्षेत्रीय असमानताओं के बारे में चर्चा की गई है।

उत्तराखंड, भारत के उत्तरी भाग में स्थित है (चित्र 2)। इसका क्षेत्रफल 53,483 किमी^{2} या भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग 1.63% है। इस राज्य की अंतर्राष्ट्रीय सीमाएं उत्तर में चीन (तिब्बत) और पूर्व में नेपाल से लगती हैं, जबकि इसकी अंतर्राज्यीय सीमाएं पश्चिम और उत्तर-पश्चिम में हिमाचल प्रदेश और दक्षिण में उत्तर प्रदेश से लगती हैं। उत्तराखंड का नाम हिंदी शब्दों *उत्तर*, जिसका अर्थ 'उत्तर दिशा' होता है और *खंड* जिसका अर्थ 'भूमि' होता है, से मिलकर बना है, जिसका अर्थ 'उत्तरी भूमि' है। यह राज्य *देव भूमि* अर्थात देवताओं की भूमि भी कहलाता है, क्योंकि यहां हिंदू धर्म के कुछ सबसे पवित्र माने जाने वाले तीर्थस्थान स्थित हैं। हिंदू धर्म की दो सबसे पवित्र मानी जाने वाली नदियां गंगा (जिसे गंगे भी कहा जाता है) और यमुना, इसी राज्य के पर्वतों से निकलती हैं।

[3] गठन के समय नए राज्य को उत्तरांचल कहा गया था। 2007 में उत्तराखंड के रूप में इसका नया नामकरण किया गया।

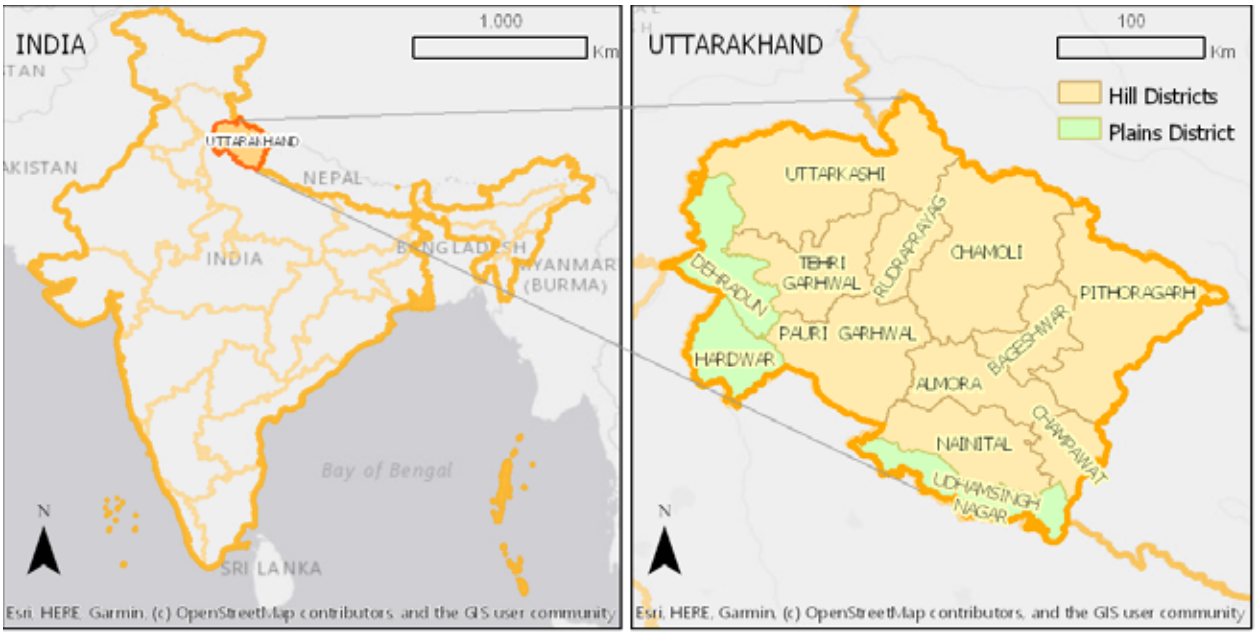

चित्र 2: भारत का मानचित्र जिसमें उत्तराखंड राज्य को रेखांकित किया गया है; दायीं ओर उत्तराखंड के तेरह जिले हैं
चित्र साभार: रिकार्डो बिएला, पीआईके

उत्तराखंड दस भारतीय हिमालयी राज्यों में से एक है। उत्तराखंड का अधिकांश भूभाग पर्वतीय के रूप में वर्गीकृत है। पर्वतों की सर्वाधिक प्रयोग की जाने वाली परिभाषा संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) के विश्व संरक्षण निगरानी केंद्र द्वारा विकसित की गई थी। [(Kapos et al., 2000) पर आधारित]। इसमें पर्वतीय क्षेत्रों को ऊंचाई और ढाल के आधार पर सात वर्गों में बांटा गया है (सात वर्गों के लिए चित्र 3 में लीजेंड देखें)। उत्तराखंड राज्य पर इस विधि का प्रयोग करने से, राज्य का लगभग 85% भाग छह में से एक पर्वतीय वर्ग के रूप में वर्गीकृत है और 30% से अधिक की ऊंचाई 2500 मी (पर्वत वर्ग 1, 2 और 3) से अधिक है (चित्र 3)। इसकी सर्वोच्च चोटियां बंदरपूंछ (6315 मी) पश्चिम में और त्रिशूल (7120 मी) और नंदा देवी (7817 मी) पूर्व में स्थित हैं। 210 मी से 7817 मी. तक ऊंचाई के कारण जलवायु और वनस्पतियों और जीव-जंतुओं में तथा विशिष्ट भूआकृतिक परिक्षेत्रों में अंतर पाए जाते हैं। पश्चिमी क्षेत्र टोंस और यमुना नदी; मध्य भाग भागीरथी और अलकनंदा (जिसे देवप्रयाग कस्बे से आगे गंगा के नाम से जाना जाता है) नदी और पूर्वी भाग काली और रामगंगा नदी से सिंचित है। उत्तराखंड में वन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की समृद्धता है और यह राज्य हिमालयी पर्वतीय श्रृंखला में स्थित होने के कारण, यहां ऊंचाई के अनुसार वनस्पतियों में काफी अंतर पाए जाते हैं [Forest Survey of India (FSI), 2019]। अधिक ऊंचाई पर ओक, फर और स्प्रूस के वृक्ष पाए जाते हैं, जबकि अपेक्षाकृत कम ऊंचाई वाले इलाकों में चीड़ (पाइन) के वृक्ष प्रमुखता से पाए जाते हैं। 3000 मी की ऊंचाई तक सीढ़ीदार कृषि देखी जा सकती है और सिंचाई की सुविधाओं तथा ऊंचाई के अनुसार फसलों में अंतर मिलते हैं (चावल, बाजरा, गेहूं, दालें, आलू, सेब, संतरे आदि)। राज्य की स्थलाकृति काफी विविधतापूर्ण है जिसमें दक्षिणी भागों में मैदानी क्षेत्र और शेष भाग में पहाड़ी और पर्वतीय भूभाग4 तथा घाटियां और गहरे कैन्यन/खड्ड पाए जाते हैं। पहाड़ियों और मैदानों का यह संयोजन, उत्तराखंड की एक अनिवार्य विशेषता है जो जनसंख्या की जनांकिकी, स्थानीय पहचान5, आजीविकाओं और पलायन के पैटर्नों को प्रभावित करती है।

[4] एक ही जिले में कुछ भाग पहाड़ी हो सकते हैं और ऊंचाई की ओर बढ़ने पर यह पर्वतीय हो जाता है। इस रिपोर्ट के प्रयोजन से पहाड़ी और पर्वतीय को प्रायः परस्पर मिले-जुले रूप में प्रयोग किया गया है।

[5] पहाड़ों या पर्वतों पर रहने वाले लोग खुद को पहाड़ी कहते हैं जो कि एक हिंदी शब्द है जिसका अर्थ पर्वतों/पहाड़ों में रहने वाले लोग होता है, जबकि मैदानी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को स्थानीय रूप से मैदानी कहा जाता है।

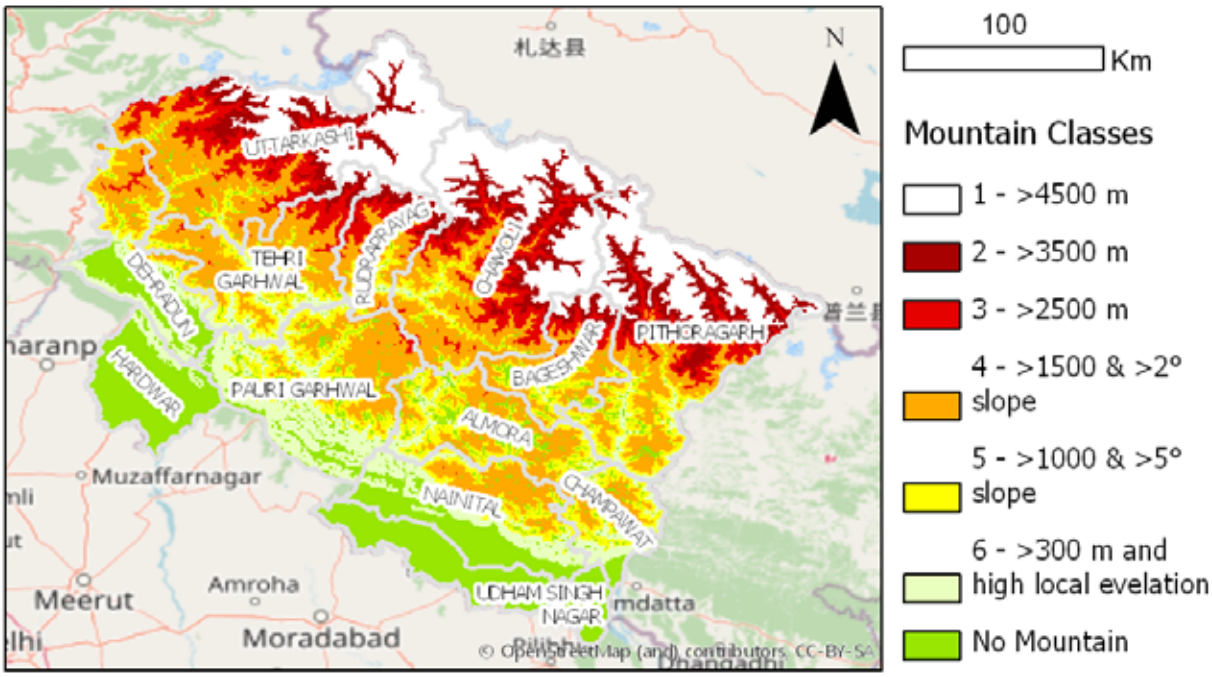

चित्र 3: यूएनईपी के पर्वतीय वर्गीकरण के अनुसार वर्गीकृत उत्तराखंड राज्य
स्रोत: कपोस एट अल., 2000
चित्र साभार: रिकार्डो बिएला, पीआईके

प्रशासनिक दृष्टि से राज्य को गढ़वाल और कुमाऊं इन दो संभागों में बांटा गया है। इनमें कुल तेरह जिले, 95 विकास खंड और 7950 ग्राम पंचायतें (ग्राम परिषदें) शामिल हैं। 16,793 जनगणना गाँव (Census, 2011a) स्थित हैं जिनमें से 15745 आवासित हैं और 1048 उजाड़ हैं (Census, 2011a)। 2011 में उत्तराखंड में लगभग 80% गाँवों में जनसंख्या 500 व्यक्ति से कम थी (Rural Development and Migration Commission, 2018)।

मैदानी और पहाड़ी क्षेत्रों के बीच अंतर, इस रिपोर्ट के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है। इन क्षेत्रों के बीच आजीविकाएं और आर्थिक संभावनाएं काफी अलग-अलग हैं, जो उत्तराखंड में पलायन गतिकी को प्रभावित करती हैं, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है। मुख्यतः तीन दक्षिणी जिले देहरादून, हरिद्वार और ऊधम सिंह नगर मैदानी हैं; जबकि शेष दस जिले – अल्मोड़ा, बागेश्वर, चमोली, चम्पावत, नैनीताल, पौड़ी गढ़वाल, पिथौरागढ़, रूद्रप्रयाग, टिहरी और उत्तरकाशी – पहाड़ी क्षेत्र निर्मित करते हैं। राज्य की लगभग आधी (48.0%) जनसंख्या पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करती है, जिनका बड़ा भाग (85.0%) ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है। वर्तमान में उत्तराखंड की कुल ग्रामीण जनसंख्या का 67.9% भाग पहाड़ी जिलों में रहता है (Planning Commission, GU, 2017)। तालिका 1 में राज्य का एक अवलोकन प्रस्तुत किया गया है जिसमें यहां की भौगोलिक, जनसंख्यात्मक, प्रशासनिक, पलायन और श्रम विशेषताओं संबंधी जानकारी दी गई है।

तालिका 1: उत्तराखंड का अवलोकन

राज्य का गठन		9 नवम्बर 2000
पूँजी		देहरादून[6]
भौगोलिक अवलोकन		
कुल भूभाग		53,483 किमी^{2}
कुल पहाड़ी क्षेत्रफल		46,035 किमी^{2}
कुल मैदानी क्षेत्रफल		7,448 किमी^{2}
कुल वन क्षेत्रफल		38,000 किमी^{2}
प्रशासनिक अवलोकन		
जिलों की कुल संख्या		13
विकास खंड		95
नगर निगम (2018 के अनुसार)		8
कस्बे (2011 की जनगणना के अनुसार)		41
गाँव (2011 की जनगणना के अनुसार)		16,793
उजाड़ गाँव (2011 की जनगणना के अनुसार)		1,048
जनसंख्यात्मक अवलोकन		
कुल जनसंख्या (2011 की जनगणना के अनुसार)		10,086,292
पुरुष जनसंख्या (2011 की जनगणना के अनुसार)		5,138,000
महिला जनसंख्या (2011 की जनगणना के अनुसार)		4,948,000
ग्रामीण जनसंख्या (2011 की जनगणना के अनुसार)		7,037,000
ग्रामीण जनसंख्या का %	2001 में	74.33%
	2011 में	69.45%
शहरी जनसंख्या (2011 की जनगणना के अनुसार)		3,050,000
शहरी जनसंख्या का %	2001 में	25.6%
	2011 में	30.5%
जनसंख्या घनत्व (2011 की जनगणना के अनुसार)		189 व्यक्ति/किमी^{2}
लिंगानुपात		963 महिलाएं प्रति 1000 पुरुष
साक्षरता दर (2011 की जनगणना के अनुसार)		78.80%

[6] जून 2020 में गैरसैण, जो कि उत्तराखंड के मध्य में पहाड़ी जिले चमोली में स्थित एक छोटा-सा कस्बा है, को आधिकारिक रूप से राज्य की ग्रीष्मकालीन राजधानी घोषित किया गया। आधिकारिक रूप से राज्य का गठन होने से पहले से ही यह काफी व्यापक राजनैतिक चर्चा का विषय बना हुआ था कि गैरसैण को राज्य की ग्रीष्मकालीन राजधानी घोषित करने से पहाड़ी क्षेत्रों का तेज़ी से विकास होगा। अधिक जानकारी यहां देखी जा सकती है: https://www.hindustantimes.com/travel/uttarakhand-gets-gairsain-as-its-summer-capital-after-governor-gives-her-assent/story-tK6nb6XZG7aeSeF9GFXwnO.html.

मानव विकास सूचकांक (एचडीआई)	0.718
श्रम शक्ति अवलोकन	
मुख्य कामगार[7] (2011 की जनगणना के अनुसार)	28.71%
– खेतिहर[8] (2011 की जनगणना के अनुसार)	10.46%
– कृषि श्रमिक[9] (2011 की जनगणना के अनुसार)	2.47%
– घरेलू औद्योगिक कामगार[10] (2011 की जनगणना के अनुसार)	0.77%
– अन्य कामगार (2011 की जनगणना के अनुसार)	15.1%
सीमांत कामगार[11] (2011 की जनगणना के अनुसार)	10.1%
– खेतिहर (2011 की जनगणना के अनुसार)	5.35%
– कृषि श्रमिक (2011 की जनगणना के अनुसार)	1.56%
– घरेलू औद्योगिक कामगार (2011 की जनगणना के अनुसार)	0.37%
– अन्य कामगार (2011 की जनगणना के अनुसार)	2.73%

स्रोत: जनसंख्या जनगणना 2011 (जनगणना, 2011c); उत्तराखंड राज्य का आर्थिक सर्वेक्षण 2016-17 (योजना आयोग, जीयू, 2017)

2.1 जनसंख्या गतिकी

2011 की जनगणना के डाटा के अनुसार, उत्तराखंड की जनसंख्या 1.01 करोड़ (लगभग 10.086 मिलियन) थी, जो कि 2001 की जनगणना में 84.89 लाख (लगभग 8.5 मिलियन) से अधिक हो गई थी (चित्र 4) (Census, 2011c; Planning Commission, Government of Uttarakhand, 2017)। इस अवधि में 19.17% की दशकीय वृद्धि दर राष्ट्रीय औसत 17.64% से अधिक रही थी। उत्तराखंड की लगभग 70% जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, जो कि 2001 की जनगणना से लगभग 5% कम है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, उत्तराखंड की कुल ग्रामीण जनसंख्या में से लगभग 68% दस पहाड़ी जिलों में निवास करती है (Planning Commission, GU, 2017)। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की परिभाषा के लिए, बॉक्स 1 देखें।

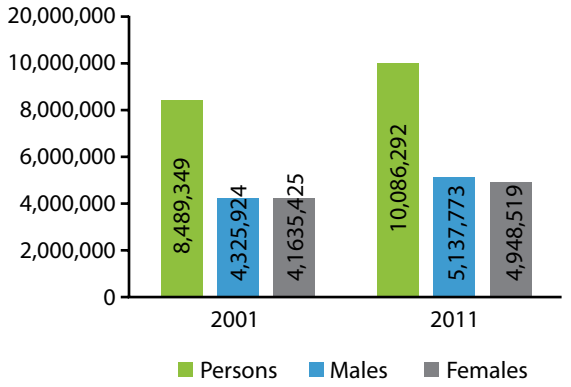

चित्र 4: 2001 और 2011 की जनगणना की तुलना के साथ उत्तराखंड का जनसंख्या प्रोफाइल
डेटा स्रोत: जनगणना, 2011

[7] जनगणना में मुख्य कामगारों को ऐसे '[का]मगारों के रूप में पारिभाषित किया जाता है जिन्होंने संदर्भ अवधि में 6 महीनों (180 दिनों) से अधिक समय तक काम किया हो' (Census, 2011b, p. 16).

[8] जनगणना के प्रयोजन से, खेतिहर वह व्यक्ति है जो 'अपने स्वामित्व वाली या सरकार से प्राप्त या निजी व्यक्तियों से या संस्थानों से प्राप्त भूमि पर खेती करता है जिसके बदले वह धन, वस्तुरूप या हिस्सेदारी (बटाईदारी) के रूप में भुगतान करता है। खेती में कार्यक्षम पर्यवेक्षण या निर्देशन भी खेती में शामिल है। कोई व्यक्ति जिसने धन, वस्तुरूप या फसल के हिस्से (बटाई) के बदले अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों या संस्थान (नों) को अपनी भूमि दी हो और जो भूमि का पर्यवेक्षण या उस पर प्रत्यक्ष खेती न करता हो, उसे खेतिहर नहीं माना जाएगा' (Census, 2011b, p. 16)।

[9] जनगणना में कृषि मज़दूर को '[ऐसा] व्यक्ति माना गया है जो अन्य व्यक्ति की भूमि पर धन या वस्तुरूप या हिस्से के रूप में मज़दूरी के बदले कार्य करता है। [...] खेती में उसका जोखिम नहीं होता, बल्कि वह केवल मज़दूरी के बदले अन्य व्यक्ति की भूमि पर कार्य करता है। कृषि मज़दूर को उस भूमि के पट्टे या अनुबंध का अधिकार नहीं है जिस पर वह कार्य करता है' (Census, 2011b, p. 16)।

[10] जनगणना में घरेलू उद्योग को 'ऐसे उद्योग के रूप में पारिभाषित किया गया है जो परिवार के एक या अधिक सदस्यों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में घर में या गाँव में चलाया जाता है, और अगर परिवार शहरी क्षेत्र में रहता है तो ऐसा उद्योग घर के अहाते में संचालित किया जाता है। घरेलू उद्योग में कामगारों में बड़ा अनुपात घर के सदस्यों का होता है। यह उद्योग "रजिस्टर्ड फैक्टरी जिसमें बिजली युक्त होने पर 10 से अधिक व्यक्ति या बिजली के बिना 20 व्यक्ति होते हैं, जिसकी भारतीय कारखाना अधिनियम के अंतर्गत पात्रता होती है या रजिस्टर्ड कराना होता है" के पैमाने पर नहीं संचालित किया जाता (Census, 2011b, p. 16)।

[11] सीमांत कामगार ऐसे '[का]मगार होते हैं जिन्होंने संदर्भ अवधि में छह महीनों (180 दिनों) से कम कार्य किया हो' (Census, 2011b, p. 16)।

बॉक्स 1: शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की परिभाषा

भारत की जनगणना 2011 में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों को निम्नानुसार पारिभाषित किया गया है:

शहरी क्षेत्र:

1. पालिका, निगम, छावनी बोर्ड या अधिसूचित कस्बा क्षेत्र समिति के अंतर्गत सभी विधिक स्थान
2. सभी अन्य स्थान जो निम्नलिखित मानदंड पूरे करते हों:
   a. न्यूनतम 5000 की जनसंख्या
   b. पुरुष कार्यशील जनसंख्या का कम से कम 75% भाग गैर-कृषि कार्यों में संलिप्त हो
   c. न्यूनतम 400 व्यक्ति प्रति/किमी^{2} का जनसंख्या घनत्व

ग्रामीण क्षेत्र: ऐसे सभी क्षेत्र जो शहरी क्षेत्र के रूप में पारिभाषित न हों, वे ग्रामीण क्षेत्र माने जाएंगे। राजस्व ग्राम, ग्रामीण क्षेत्रों की आधारभूत इकाई है। राजस्व ग्राम का बस्तियों का एकल संकलन होना आवश्यक नहीं है। लेकिन राजस्व ग्राम की एक निश्चित सर्वेक्षित सीमा होगी और पृथक ग्राम खाते के साथ प्रत्येक ग्राम एक पृथक प्रशासनिक इकाई होगा। इसमें एक या अधिक पुरवे (मजरे) शामिल हो सकते हैं। पूरा राजस्व ग्राम एक इकाई होगा।

स्रोत: जनगणना, 2011b, पृष्ठ 2

तालिका 2 में ग्रामीण और शहरी जनसंख्या के प्रतिशत का अवलोकन दिया गया है जबकि तालिका 3 में उत्तराखंड में ग्रामीण और शहरी जनसंख्या का जिला-वार प्रसार दिया गया है।

तालिका 2: ग्रामीण और शहरी जनसंख्या का प्रतिशत

शहरी जनसंख्या का प्रतिशत		ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत	
2001	2011	2001	2011
25.6	30.5	74.33	69.45

स्रोत: डीओआरडी, जीओआई, 2011

तालिका 3: उत्तराखंड में ग्रामीण और शहरी घरों का जिला-वार प्रतिशत

जिला	ग्रामीण क्षेत्रों में घरों का %	शहरी क्षेत्रों में घरों का %
अल्मोड़ा	91.48%	8.52%
बागेश्वर	96.75%	3.25%
चमोली	86.37%	13.63%
चम्पावत	88.44%	11.56%
देहरादून	51.06%	48.94%
पौड़ी गढ़वाल	88.37%	11.63%
हरिद्वार	69.37%	30.63%
नैनीताल	65.75%	34.25%
पिथौरागढ़	86.86%	13.14%
रूद्रप्रयाग	95.86%	4.14%
टिहरी गढ़वाल	93.05%	6.95%
ऊधम सिंह नगर	70.13%	29.87%
उत्तरकाशी	92.61%	7.39%

स्रोत: सामाजिक-आर्थिक और जाति जनगणना, 2011 (DoRD, GoI, 2011)

2001 और 2011 के बीच राज्य के पहाड़ी जिलों में वार्षिक जनसंख्या वृद्धि, मैदानी जिलों की अपेक्षा काफी कम रही है (मैदानी जिलों में 2.82% की तुलना में पहाड़ी जिलों में 0.70%)। तद्नुरूप, पहाड़ी जिलों में रहने वाली जनसंख्या 2001 में 53% से 2011 में कम होकर लगभग 48% रह गई है। चित्र 5 दर्शाता है कि 2001 की जनगणना की तुलना में 2011 में सभी दस पहाड़ी जिलों में दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर में गिरावट दर्ज की गई है जबकि तीनों मैदानी जिलों में दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर बढ़ी है।

जनसंख्या	1 अल्मोड़ा 622,506	2 बागेश्वर 259,898	3 चमोली 391,605	4 रूद्रप्रयाग 242,285	5 पौड़ी गढ़वाल 687,271	6 टिहरी गढ़वाल 618,931	7 पिथौरागढ़ 4,83,439
दशकीय वृद्धि दर में परिवर्तन	135% ↓	55% ↓	58.6% ↓	51.37% ↓	136% ↓	85.5% ↓	58.17% ↓
जनसंख्या	8 उत्तरकाशी 330.086	9 चम्पावत 259,648	10 नैनीताल 954,605	11 हरिद्वार 1,890,422	12 देहरादून 1,696,694	13 ऊधम सिंह नगर 1,648,902	
दशकीय वृद्धि दर में परिवर्तन	48.46% ↓	11.1% ↓	23.2% ↓	6.7% ↑	29.32% ↑	0.4% ↑	

चित्र 5: 1991–2001 और 2001–2011 के बीच दशकीय जनसंख्या वृद्धि दर में परिवर्तन
डेटा स्रोत: जनगणना, 2011; सांख्यिकीय डायरी 2013–14, उत्तराखंड राज्य सरकार

दो पहाड़ी जिलों अल्मोड़ा और पौड़ी गढ़वाल में 2001 और 2011 के बीच जनसंख्या में ऋणात्मक वृद्धि दर्ज की गई। दशक के दौरान कुल मिलाकर दोनों जिलों में 17,868 व्यक्तियों की निरपेक्ष कमी दर्ज की गई (Mamgain and Reddy,2016)। हालांकि यह बहुत अधिक नहीं प्रतीत हो सकता है, लेकिन कुल जनसंख्या में कमी, भारत में अपेक्षाकृत असाधारण रूझान है। उत्तराखंड में अन्य पहाड़ी जिलों में कम जनसंख्या वृद्धि दर्ज की गई है जिनमें बागेश्वर, चमोली, पिथौरागढ़, रूद्रप्रयाग और टिहरी गढ़वाल शामिल हैं। चित्र 6 में जनसंख्या में प्रति जिला दशकीय परिवर्तन दर्शाया गया है जो 1981, 1991, 2001 और 2011 की जनगणना के आंकड़ों पर आधारित है। जनसंख्या में ऋणात्मक परिवर्तन, कई कारणों से जनसंख्या में कमी परिलक्षित कर सकता है, जैसे कि उच्च मृत्यु दर, मृत्यु की अपेक्षा जन्म कम होना या बहिर्प्रवासन के परिणाम के रूप में (या इनमें से कुछ के सम्मिलित प्रभाव के कारण)। कई अध्ययनों में, बहिर्प्रवासन को उत्तराखंड के कुछ ग्रामीण और पहाड़ी क्षेत्रों में जनसंख्या में होने वाली कमी का कारण बताया गया है (Department of Planning, GU, 2018; GU, 2018; Joshi, 2018; Mamgain and Suryanarayana, 2017; Pathak et al., 2017; Rural Development and Migration Commission, 2018)। जोशी ने विशेषरूप से राज्य के पर्वतीय और पहाड़ी क्षेत्रों से बढ़ते ग्रामीण बहिर्प्रवासन को उत्तराखंड के शहरी क्षेत्रों में तथा तराई/तलहटी क्षेत्रों में उच्च जनसंख्या वृद्धि का कारण माना है (Joshi, 2018, p. 4)। राज्य के पहाड़ी जिलों में ऋणात्मक और कम जनसंख्या वृद्धि और गहन अनुसंधान की माँग करती है।

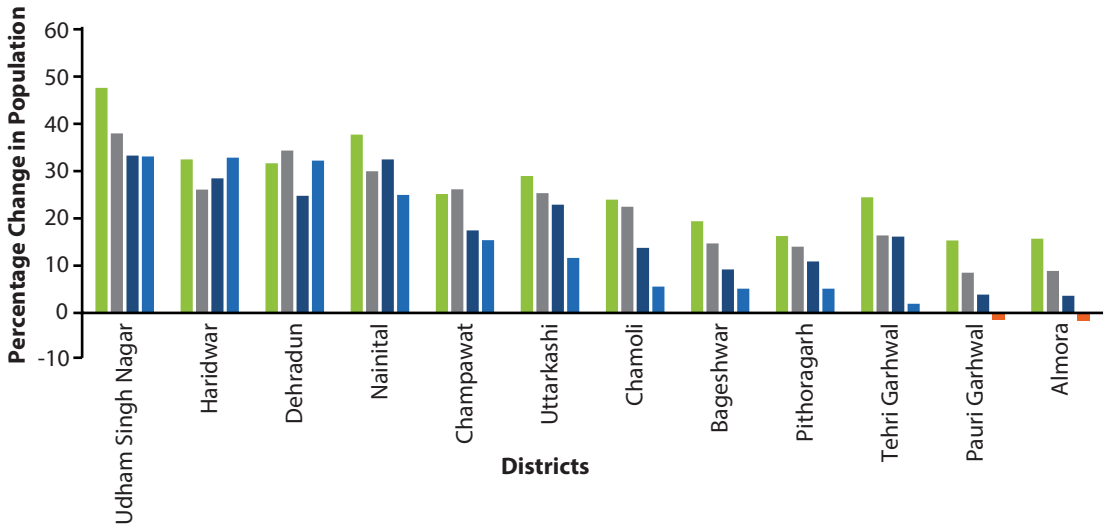

चित्र 6: उत्तराखंड की जनसंख्या में जिला-वार दशकीय परिवर्तन
डेटा स्रोत: ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके

2.2 मानव विकास के संकेतक

इस अनुभाग में राज्य में विभिन्न प्रकार के मानव विकास संकेतकों के बारे में चर्चा की गई है।

मानव विकास सूचकांक

मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) एक टूल है जो सामाजिक और आर्थिक पहलुओं पर किसी देश के विकास का विश्लेषण करने के लिए संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा उपयोग किया जाता है। इस मिश्रित विधि में मानव विकास के तीन प्रमुख आयाम शामिल हैं: स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवन स्तर।[12] स्वास्थ्य के पहलू का आकलन, जन्म के समय जीवन प्रत्याशा द्वारा किया जाता है; शिक्षा का आकलन स्कूली शिक्षा के माध्य और अपेक्षित वर्षों द्वारा किया जाता है; और जीवन स्तर का आकलन प्रति व्यक्ति आय[13] के सापेक्ष किया जाता है जिसे, क्रय शक्ति समानता हेतु समायोजित किया जाता है।[14] एचडीआई, यूएनडीपी की वार्षिक मानव विकास रिपोर्ट का एक अभिन्न अंग है और इसमें समय अवधि के दौरान मानव विकास की तुलना और निगरानी की जा सकती है। उत्तराखंड सरकार की हाल की एक रिपोर्ट में, अपेक्षाकृत नए राज्य में सामाजिक-आर्थिक विकास के वर्तमान स्तरों के मानचित्रण के लिए यूएनडीपी विधि का उपयोग किया गया है (GU, 2018)। इस अनुभाग में कुछ परिणाम प्रस्तुत किए गए हैं।

[12] एचडीआई इन तीन आयामों का ज्यामितीय माध्य है। एचडीआई की गणना की सही विधि मानव विकास रिपोर्ट 2019 की तकनीकी टिप्पणियों में वर्णित की गई है: http://hdr.undp.org/sites/default/files/hdr2019_technical_notes.pdf.

[13] प्रति व्यक्ति आय किसी दिए गए क्षेत्र में, उदाहरण के लिए किसी देश या जिले में एक निश्चित वर्ष में माध्य आय प्रति व्यक्ति की माप है। एचडीआई में यह सकल राष्ट्रीय आय (जीएनआई) पर आधारित होती है।

[14] एचडीआई इन तीन आयामों का ज्यामितीय माध्य है। एचडीआई की गणना की सही विधि मानव विकास रिपोर्ट 2019 की तकनीकी टिप्पणियों में वर्णित की गई है: http://hdr.undp.org/sites/default/files/hdr2019_technical_notes.pdf.

उत्तराखंड में एचडीआई में 2011–12 में 0.531 से 2017 में 0.718 तक की बढ़ोत्तरी हुई। सम्पूर्ण भारत के लिए एचडीआई 2017 में 0.643 था। इन समग्र सकारात्मक रूझानों के बाावजूद मानव विकास की अनेक चुनौतियां बनी हुई हैं 'जिनमें जलवायु परिवर्तन भी शामिल है, जो जनहानि, आजीविका के नुकसान, पर्यावरणीय निम्नीकरण व अन्य प्रकारों से मानव विकास की स्थिति को प्रभावित करती हैं' (GU, 2018, p. 187).)। इस रिपोर्ट में, राज्य द्वारा सामना की जाने वाली मुख्य चुनौतियों में 'पहाड़ी और मैदानी जिलों के बीच क्षेत्रीय असमानताओं और विसंगतियों' का भी वर्णन किया गया है (GU, 2018, p. 10)।

उत्तराखंड के पहाड़ी जिलों का एचडीआई मैदानी जिलों की अपेक्षा कम है। चित्र 7 में दिखाया गया है कि तीन जिलों – देहरादून, हरिद्वार और ऊधम सिंह नगर में – एचडीआई सर्वाधिक है। इस उच्च रैंकिंग का प्रमुख कारण यहां की प्रति व्यक्ति उच्चतर आय है क्योंकि शिक्षा और स्वास्थ्य के संकेतक पहाड़ी जिलों से केवल मामूली अंतर दर्शाते हैं। मैदानों के विपरीत पहाड़ी जिलों की जनसंख्या अपनी आजीविका के लिए, मुख्यतः निर्वाह - आधारित कृषि पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त भौतिक अवसंरचना जैसे कि सड़कें, बिजली या पाइप आधारित जल आपूर्ति प्रणाली, उत्तराखंड के पहाड़ी जिलों में भलीभांति विकसित नहीं है। ये कमियां, पहाड़ी जिलों और मैदानी जिलों के आर्थिक विकास के बीच तीक्ष्ण द्विभाजन सुदृढ़ बनाती हैं। उत्तराखंड के पहाड़ी जिलों में इन कमियों के क्रमिक प्रभाव हैं, क्योंकि आय के स्तर निम्न होने से सामाजिक अवसंरचनात्मक सेवाओं जैसे कि शिक्षा या स्वास्थ्य तक पहुँच बाधित होती है (Awasthi, 2010)।

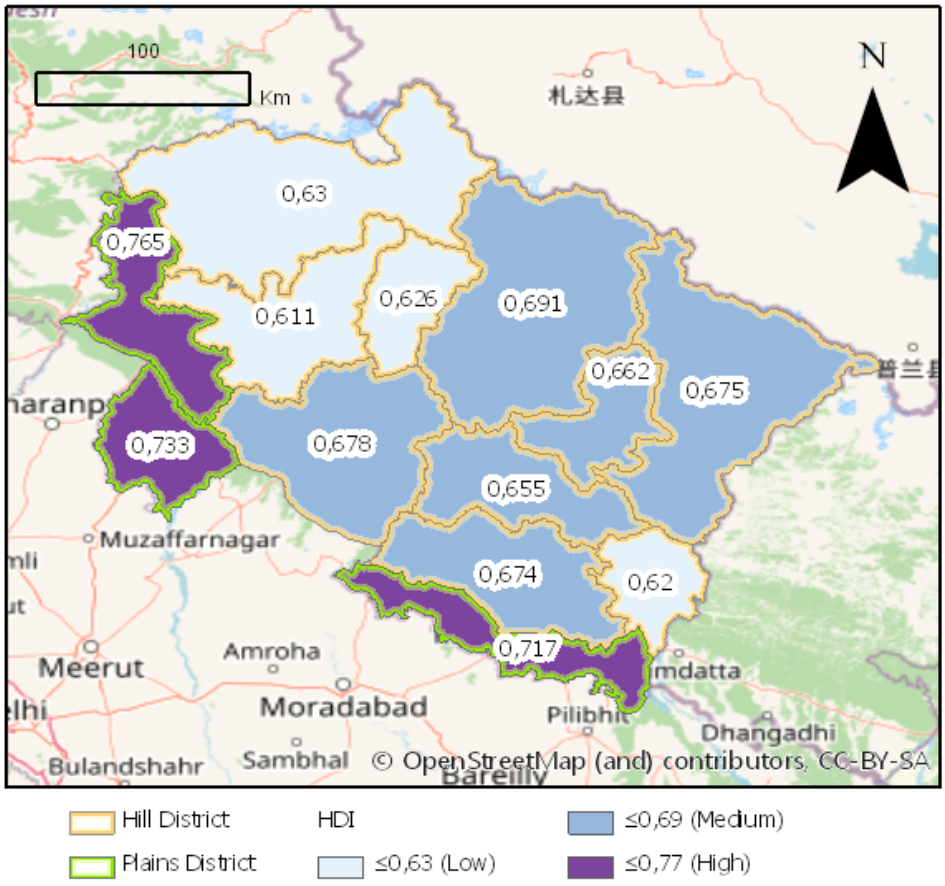

चित्र 7: जिला-वार एचडीआई
स्रोत: जीयू, 2018a | **चित्र साभार:** रिकार्डो बिएला, पीआईके

स्वास्थ्य

2017 में 68.5 वर्ष के राष्ट्रीय औसत की तुलना में उत्तराखंड में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा 71.5 वर्ष थी। एचडीआई में जीवन प्रत्याशा को, जनसंख्या की स्वास्थ्य स्थिति जानने तथा समय के साथ स्वास्थ्य प्रणाली में सुधारों के बारे में पता लगाने के उपाय के रूप में उपयोग किया जाता है। शहरी क्षेत्रों में 72.9 वर्ष की जीवन प्रत्याशा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए सूचित 71.0 वर्ष से कुछ अधिक थी, हालांकि यह अंतराल राष्ट्रीय स्तर पर पांच वर्ष के अंतर से कम था। शहरी क्षेत्रों में 72.2 वर्ष बनाम ग्रामीण में 67.4 वर्ष। यह रोचक है कि तीन अधिक समृद्ध मैदानी जिलों (देहरादून, हरिद्वार और ऊधम सिंह नगर) में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा राज्य के औसत से कम है (GU, 2018)।

शिक्षा

शैक्षिक उपलब्धियों के लिए एचडीआई संकेतक उत्तराखंड में अपेक्षाकृत ठीक हैं। राज्य में 25 वर्ष या अधिक आयु के लोगों के लिए स्कूली शिक्षा के माध्य वर्ष 7.5 वर्ष अनुमानित हैं। एचडीआर सर्वेक्षण डाटा यह दिखाता है कि पहाड़ी जिले चम्पावत में स्कूली शिक्षा के माध्य वर्ष 6.3 सबसे निम्न आंकड़ा है और मैदानी जिले देहरादून में सर्वाधिक 8.6 वर्ष है (GU, 2018)। स्कूली शिक्षा के अपेक्षित वर्ष, एचडीआई में दूसरा संकेतक जो शैक्षिक उपलब्धियों का मापन करता है, 11.2 वर्ष है। इसलिए औसतन, उत्तराखंड में स्कूली शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चे अपनी माध्यमिक स्तर की शिक्षा पूरी करते हैं (GU, 2018)। शिक्षा के अन्य संकेतक पूर्ण परिदृश्य को समझने में सहायक हैं। राज्य का निवल नामांकन अनुपात (एनईआर) प्राइमरी (प्राथमिक) स्तर पर 89.18% और उच्चतर प्राथमिक स्तर पर 71.00% है। स्कूली शिक्षा पूरी करने की दर, प्राथमिक स्तर पर 100% और उच्चतर प्राथमिक स्तर पर 96.76% है। सात वर्ष और अधिक आयु के लोगों के लिए, उत्तराखंड में साक्षरता स्तर 78.80% है जो कि राष्ट्रीय औसत 74.00% से अधिक है (Census, 2011c)। पहाड़ी क्षेत्रों के जिलों में मैदानी जिलों की अपेक्षा साक्षरता दर अधिक है (Planning Commission, GU, 2017, p. 176)।

जीवन स्तर और निर्धनता

हालांकि राज्य का गठन होने के बाद से उत्तराखंड में उच्च स्तर की आर्थिक वृद्धि हुई है और प्रति व्यक्ति आय बढ़ी है लेकिन 2011–12 राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण डाटा के अनुसार उत्तराखंड की लगभग 11.3% जनसंख्या निर्धनता रेखा के नीचे ($1.25 प्रतिदिन से कम) जीवनयापन करती है। सरकार की मानव विकास रिपोर्ट में जीवन स्तर संकेतक प्रति व्यक्ति निवल जिला घरेलू उत्पाद (एनडीडीपी) रु. 157,400 द्वारा मापा गया है (ये 2017-18 के लिए अर्थ एवं संख्या विभाग के आंकड़े हैं)। चूंकि प्रति व्यक्ति आय और क्षेत्रीय असमानताओं के बारे में अनुभाग 2.3 में चर्चा की गई है, इस अनुभाग में निर्धनता और अन्य संकेतकों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। उत्तराखंड विगत दशक में निर्धनता रेखा को नीचे लाने में सक्षम रहा है: निर्धनता रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों का प्रतिशत 2004–05 में 31.8% से 2011–12 में कम होकर 11.3% हो गया (Planning Commission, GoI, 2013, 2007; Planning Commission, GU, 2017)। यह इसी वर्ष में राष्ट्रीय स्तर पर निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले 21.9% लोगों से लगभग 10.0% कम है। (Department of Planning, GU, 2018)। उत्तराखंड सरकार की विकास रिपोर्ट, मानव विकास और कल्याण के लिए अनेक अन्य महत्त्वपूर्ण संकेतकों पर भी प्रकाश डालती है (GU, 2018)। उदाहरण के लिए, चम्पावत और पौड़ी गढ़वाल में लगभग एक-तिहाई परिवारों की, उनके घर के निकट पानी के स्वच्छ स्रोत तक पहुँच नहीं है। उत्तरकाशी में, एक-तिहाई से अधिक परिवारों के पास समुचित स्वच्छता सुविधाएं नहीं हैं। पहाड़ों और मैदानों के बीच विकास की उपलब्धियों में क्षेत्रीय असमानताओं की चर्चा करते हुए, रिपोर्ट यह निष्कर्ष प्रस्तुत करती है कि 'आय और स्वास्थ्य में सुधार, सबसे महत्त्वपूर्ण नीतिगत सरोकारों के रूप में उभरे हैं' (GU, 2018, p 38)।

जेंडर विकास सूचकांक

जेंडर आधारित असमानता, मानव विकास में प्रगति की एक प्रमुख रूकावट बनी हुई है। महिलाओं और पुरुषों के बीच मानव विकास में अंतरों के मापन के लिए 1995 में यूएनडीपी ने जेंडर विकास सूचकांक (जीडीआई) निर्मित किया जिसमें एचडीआई के समान संकेतक उपयोग किए गए (यूएनडीपी, एन.डी.)। जीडीआई, 1.0 के जितना ही निकट होगा, महिलाओं और पुरुषों के मानव विकास के बीच अंतर भी उतना ही कम होगा।[15] *उत्तराखंड सरकार की मानव विकास रिपोर्ट में* जीडीआई के मान राज्य और जिला स्तरों पर दर्ज किए गए हैं और इस पर जोर दिया गया है कि जीडीआई, 'असमानताओं के समाधान करने और संसाधनों के आवंटन की प्राथमिकताएं पुनःनिर्धारित करने के लिए पैरवी और नीति प्रतिपादन' का एक महत्त्वपूर्ण सहायक टूल है (GU, 2018, p 26)। 2017 में, 0.841 के राष्ट्रीय स्तर के मुकाबले राज्य का जीडीआई 0.727 था (UNDP, 2018)।

उत्तराखंड में जीडीआई मान उत्तरकाशी में 0.892 से लेकर हरिद्वार में 0.561 तक हैं। सर्वाधिक जीडीआई वाला जिला उत्तरकाशी (0.892) है जिसके बाद अन्य पहाड़ी जिलों,रूद्रप्रयाग (0.864), बागेश्वर (0.820), पौड़ी गढ़वाल (0.791), चम्पावत (0.757), पिथौरागढ़ (0.728), टिहरी गढ़वाल (0.726), अल्मोड़ा (0.721), चमोली (0.698) और नैनीताल (0.679) का स्थान है। ऊधम सिंह नगर (0.632), देहरादून (0.593) और हरिद्वार (0.561); ये तीन मैदानी जिले, जीडीआई की जिला-वार रैंकिंग में नीचे देखे जा सकते हैं (चित्र 8)।

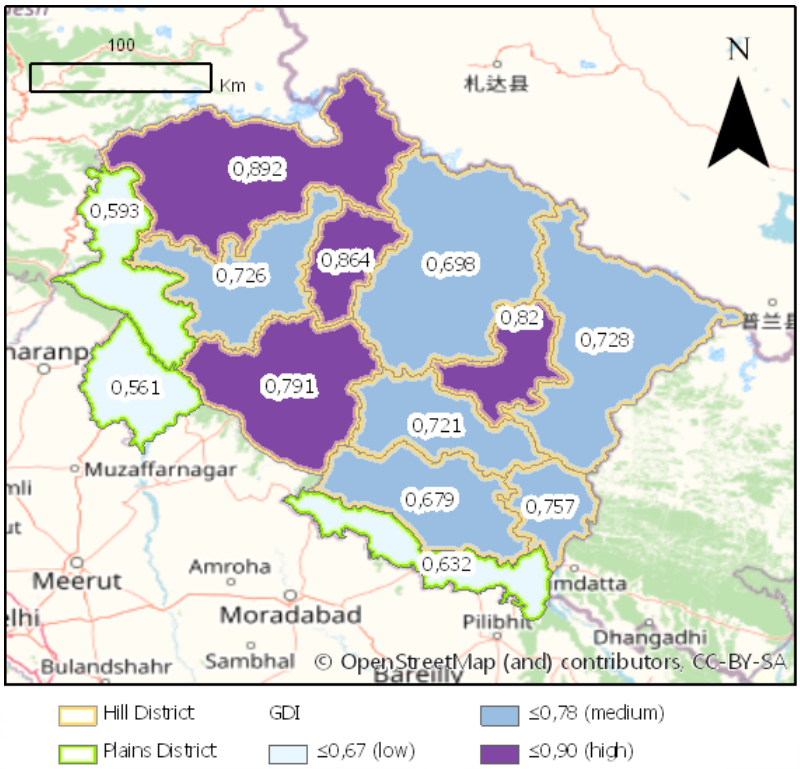

चित्र 8: उत्तराखंड का जिला-वार जीडीआई, एचडीआई रिपोर्ट
स्रोत: जीयू, 2018a | **चित्र साभार:** रिकार्डो बिएला, पीआईके

[15] जीडीआई मान प्राप्त करने के लिए, पहले महिलाओं और पुरुषों के लिए एचडीआई की पृथक गणना की जाती है। इन जेंडर विशिष्ट एचडीआई का अनुपात जीडीआई होता है। यह अनुपात 1 के जितना ही निकट होगा, जेंडर अंतराल उतना ही कम होगा [United Nations Development Programme (UNDP), 2019]। इस विधि के विस्तृत विवरण के लिए मानव विकास रिपोर्ट 2019 की तकनीकी टिप्पणियां देखें: http://hdr.undp.org/sites/default/files/hdr2019_technical_notes.pdf.

एचडीआई के विपरीत जीडीआई के मामले में पहाड़ी जिलों की रैंकिंग मैदानी जिलों से ऊंची है। सामान्य तौर पर, पहाड़ी जिलों में जीडीआई के उच्चतर मान यह इंगित करते हैं कि मैदानी जिलों की अपेक्षा पहाड़ी जिलों में महिलाओं और पुरुषों के बीच असमानता अपेक्षाकृत कम है। हालाँकि एचडीआई और जीडीआई में पहाड़ी जिलों और मैदानी जिलों की रैंकिंग के बीच अंतर ही जेंडर संबंधों पर प्रकाश नहीं डालता। प्रति व्यक्ति आय को बारीकी से देखने पर इसे समझने में मदद मिलती है। हालांकि उत्तराखंड के सभी जिलों में प्रति व्यक्ति आय में जेंडर आधारित उल्लेखनीय अंतराल बने हुए हैं लेकिन पहाड़ी क्षेत्रों में खराब आर्थिक स्थितियों के कारण पहाड़ी जिलों में ये अपेक्षाकृत कम हैं। जैसा कि चित्र 9 में प्रदर्शित है, देहरादून, हरिद्वार और ऊधम सिंह नगर इन मैदानी जिलों में पुरुषों की तुलना में पहाड़ी जिलों में पुरुष काफी कम आय अर्जित कर पाते हैं। इस तरह से, वार्षिक प्रति व्यक्ति आय में जेंडर आधारित अंतराल पहाड़ी जिलों में कम है। तथापि पहाड़ी जिलों में महिलाओं की प्रति व्यक्ति आय मैदानी जिलों में महिलाओं की अपेक्षा कुछ अधिक है।

पहाड़ी क्षेत्रों में आय उपार्जन गतिविधियों में महिलाओं की उच्चतर भागीदारी, पुरुषों के बहिर्प्रवासन के कारण हो सकती है। ममगैन और रेड्डी द्वारा किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि उत्तराखंड में मैदानी जिलों की अपेक्षा पहाड़ी जिलों में कार्यशील पुरुषों का हिस्सा कम है (2016)। लेखकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि 'कार्यबल में पुरुषों की भागीदारी की निम्न दर जनांकिक परिघटना नहीं है, बल्कि यह पूर्णतया एक आर्थिक परिघटना है जिसमें नकद आय उपार्जन करने के लिए पुरुषों की जनसंख्या का बड़ा प्रतिशत भाग बहिर्प्रवास कर जाता है [...] और उनके श्रम का स्थान महिलाएं ले लेती हैं, जिससे उनकी कुल सहभागिता बढ़ जाती है' (Mamgain and Reddy, 2016, p. 28)। अतएव, हालांकि पहाड़ों से पुरुषों का बहिर्प्रवासन, पीछे बचने वाली महिलाओं के लिए आय उपार्जन के अवसर सृजित करता है, लेकिन यह कृषि गतिविधियों के लिए उनकी जिम्मेदारियां भी बढ़ा देता है। महिलाओं, जेंडर संबंधों और जेंडर – आधारित सामाजिक मानकों – पर इन परिवर्तनों के पूर्ण प्रभाव समझने के लिए, अधिक अनुसंधान की आवश्यकता होगी जिससे राज्य में पुरुषों और महिलाओं के विकास में अंतर का समाधान करने के लिए सूचित नीतियों में मदद मिल सकती है।

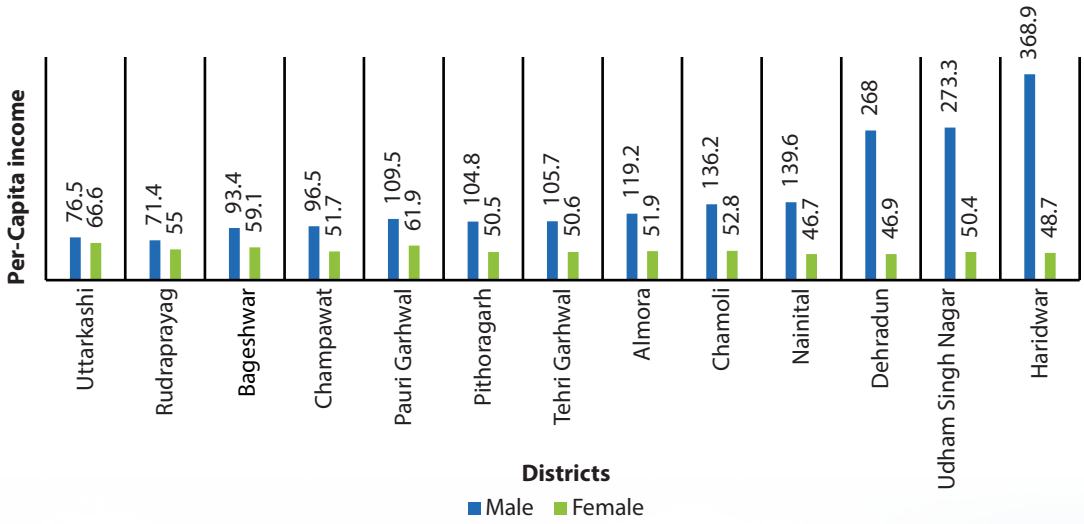

चित्र 9: उत्तराखंड का जिला-वार जीडीआई, एचडीआई रिपोर्ट
स्रोत: जीयू, 2018a | **चित्र साभार:** रिकार्डो बिएला, पीआईके

2.3 आर्थिक वृद्धि और क्षेत्रीय असमानताएं

गठन के बाद के वर्षों में, उत्तराखंड में तीव्र आर्थिक वृद्धि हुई है। राज्य के सकल राजकीय घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी[16]) में वृद्धि 2001–2002 से 2011–2012 के बीच (2004–2005 की कीमतों के अनुसार) औसतन 9% रही (Planning Commission, GU, 2017)। इस अवधि में वास्तविक प्रति व्यक्ति आय लगभग 4.5 गुने (रु. 19,164 से रु. 92,911) बढ़ी। राष्ट्रीय औसत से तुलना करने पर, उत्तराखंड में प्रति व्यक्ति आय 2005–2006 के बाद अधिक रही है। जैसा कि चित्र 10 दर्शाता है, 2008–2009 से उत्तराखंड ने अपने पड़ोसी पहाड़ी राज्य हिमाचल प्रदेश की तुलना में भी बेहतर प्रदर्शन किया है। हालाँकि इसके मातृ राज्य उत्तर प्रदेश (यूपी) की तुलना में इस राज्य की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि सर्वाधिक उल्लेखनीय है। पृथक होने के पंद्रह वर्ष पश्चात, उत्तराखंड में प्रति व्यक्ति आय यूपी से तीन गुने से अधिक थी (Mamgain and Reddy, 2016) हालाँकि 2001–2001 में दोनों राज्यों के आंकड़े समान थे। 2016–2017 में उत्तराखंड में औसत प्रति व्यक्ति आय 160,796 (रु. में) या लगभग 2500 (अमरीकी डालर में) थी।

हालाँकि, जिला-वार प्रति व्यक्ति आय में क्षेत्रीय असमानताएं यह इंगित करती हैं कि राज्य की आर्थिक सफलता से सभी क्षेत्र समान रूप से लाभान्वित नहीं हुए हैं। जैसी कि पहले चर्चा की गई है, उत्तराखंड के मैदानी जिलों में प्रति व्यक्ति आय, पहाड़ी जिलों में प्रति व्यक्ति आय से अधिक है। चित्र 11 दर्शाता है कि किस तरह से 2016–17 में तीन मैदानी जिलों में प्रति व्यक्ति आय, राज्य के औसत 160,796 (रु. में) या 2500 (अमरीकी डालर में) से अधिक थी, जबकि पहाड़ी जिले इस स्तर से नीचे थे। इसके अलावा, कुछ पहाड़ी जिलों (बागेश्वर, चम्पावत, टिहरी गढ़वाल और अल्मोड़ा) में प्रति व्यक्ति आय, मैदानी जिलों देहरादून और हरिद्वार की तुलना में लगभग आधी है (Rural Development and Migration Commission, 2018)। जिला-वार प्रति व्यक्ति आय में असमानताएं (प्रति व्यक्ति निवल जिला घरेलू

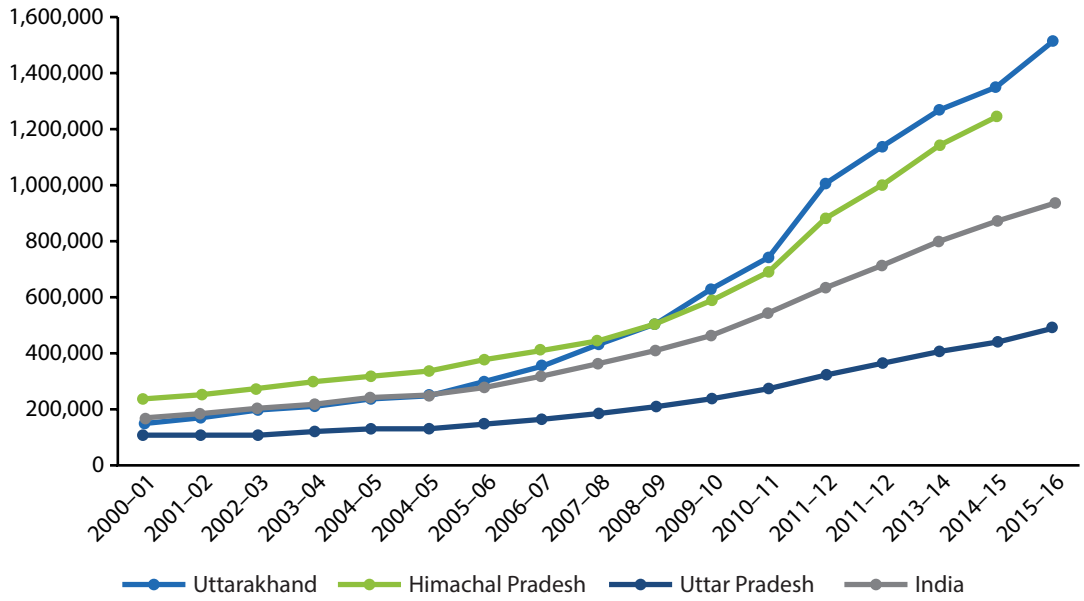

चित्र 10: राष्ट्रीय औसत, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश की तुलना में उत्तराखंड का प्रति व्यक्ति सकल राजकीय घरेलू उत्पाद।
वर्ष 2000–2001 से 2004–2005 के लिए, 1999–2000 की कीमतों पर;
अवधि 2004–2005 से 2011–2012 के लिए, 2004–2005 की कीमतों पर
स्रोत: ममगैन और सूर्यनारायण, 2017

[16] सकल राजकीय घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) को एक निर्दिष्ट समय अवधि के दौरान 'राज्य की सीमा के अंदर उत्पादित, प्रतिलिपिकरण के बिना लेखांकित, समस्त माल व सेवाओं की मात्रा की मौद्रिक संदर्भ में माप के रूप में पारिभाषित किया जा सकता है। डाटा, वर्तमान कीमतों पर जीएसडीपी में औसत वार्षिक वृद्धि दरें प्रदर्शित करता है'। स्रोत: https://data.gov.in/keywords/gross-state-domestic-product.

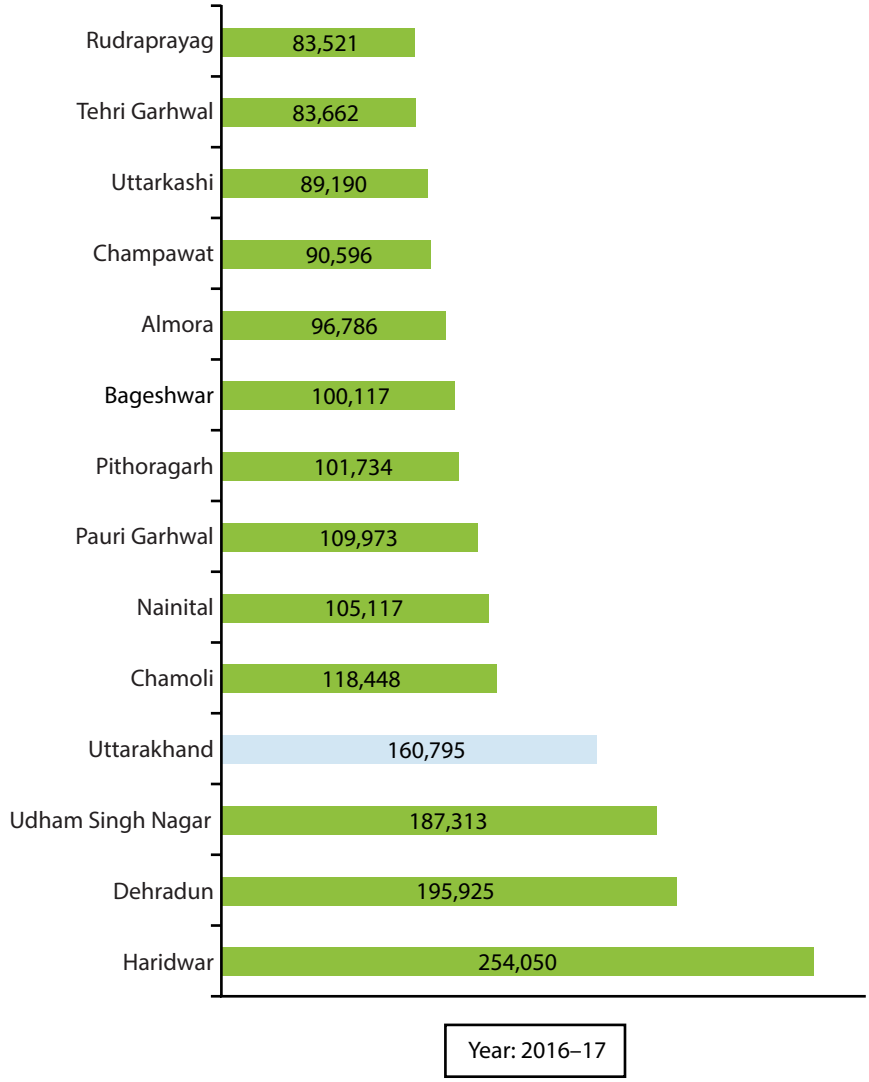

चित्र 11: वर्ष 2016–17 के लिए जिला-वार प्रति व्यक्ति आय
स्रोत: योजना आयोग, उत्तराखंड सरकार 2017

उत्पाद के रूप में मापित) राज्य में आर्थिक विकास नियोजन और सार्वजनिक निवेशों से संबंधित असमानता का एक संकेतक हैं, जिन्होंने प्रमुख रूप से मैदानों में आर्थिक वृद्धि को प्रेरित किया है।

उत्तराखंड की औद्योगीकरण की प्रक्रिया की विशेषताओं ने संरचनागत क्षेत्रीय असमानताओं को जन्म दिया है। तीव्र औद्योगीकरण के साथ मार्च 2010 तक राज्य में 16,012 नई औद्योगिक इकाइयां स्थापित की गईं, जबकि पड़ोसी पहाड़ी राज्य हिमाचल प्रदेश (एचपी) में 7,606 इकाइयां स्थापित थीं (Planning Commission, GU, 2017)। जहां सार्वजनिक निवेश, इस विकास के पीछे मुख्य कारण था, (Planning Commission, GU, 2017), वहीं इस रणनीति के कारण असमान निवेशों के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि हुई।

उदाहरण के लिए, राज्य में उद्योगों को बढ़ावा देने वाले और औद्योगिक संरचना का विकास करने वाले अधिकांश सिडकुल[17] (उत्तराखंड राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड), मैदानी जिलों में स्थित हैं (SIDCUL, 2015)। इस समय, अर्थव्यवस्था में द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों में अधिकांश गतिविधियां, मैदानी जिलों में संकुलित हैं (अर्थव्यवस्था के क्षेत्रों से संबंधित बॉक्स 2 देखें)। चूंकि राज्य की अर्थव्यवस्था की लगभग समस्त वृद्धि इन क्षेत्रों में रही है, इसलिए पहाड़ी जिलों को तुलनात्मक रूप से पिछड़ेपन का सामना करना पड़ा है और अब भी कर रहे हैं।

बॉक्स 2: अर्थव्यवस्था के क्षेत्र

अर्थव्यवस्था को तीन क्षेत्रों – प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक के मध्य विभाजित किया जाता है

1. प्राथमिक क्षेत्र में फसलें, पालतू पशु, मत्स्यन, वानिकी और कटान तथा खनन और खदान आते हैं
2. द्वितीयक क्षेत्र में उत्पादन, विद्युत, गैस, विनिर्माण तथा जलापूर्ति और अन्य उपयोगिता सेवाएं आते हैं
3. तृतीयक क्षेत्र में परिवहन, भंडारण, व्यापार, मरम्मत, होटल और रेस्टोरेन्ट, वित्तीय सेवाएं, रियल एस्टेट, संचार और प्रसारण सेवाएं, व अन्य सेवाएं आते हैं।

स्रोत: *योजना आयोग, जीयू 2017*

असमान निवेशों और अर्थव्यवस्था के बदलते स्वरूप के परिणामस्वरूप पहाड़ी जिले, विकास की प्रक्रिया से पृथक हो गए हैं। सकल राजकीय घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) के असंगठित कालक्रमानुसार डाटा से, राज्य की अर्थव्यवस्था की तेज़ी से परिवर्तनशील संरचना का पता चलता है (चित्र 12)। 1993–94 से 2012–13 तक दो दशकों में उत्तराखंड की जीएसडीपी में प्राथमिक क्षेत्र का हिस्सा, 40% से कम होकर लगभग 11% रह गया है (Dhyani, 2015)। निरपेक्ष शब्दों में, 2004 और 2013 के बीच प्राथमिक क्षेत्र में वास्तविक वृद्धि 22.5% रही है। द्वितीयक

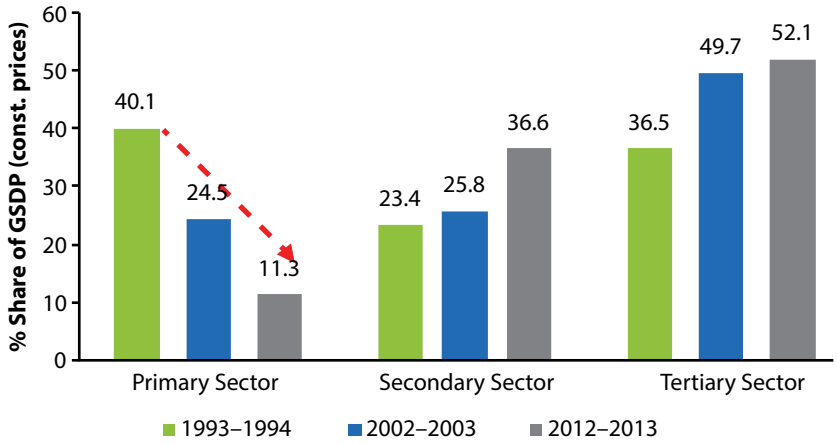

चित्र 12: सकल राजकीय घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) का क्षेत्रवार हिस्सा
स्रोत: 1993–94: गंगा बेसिन में कृषि और कृषि विधियों में रूझान, भाग 1: उत्तराखंड।
2004-05 और 2012–13.
स्रोत: अर्थ एवं संख्या निदेशालय, 2013;
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके

[17] सिडकुल उत्तराखंड सरकार का एक उपक्रम है जो 'उत्तराखंड राज्य में प्रत्यक्ष रूप से या विशेष प्रयोजन वाले वाहकों (स्पेशल पर्पज व्हीकल्स), निवेश सहायतित कंपनियों आदि के माध्यम से परोक्ष रूप से अनिवार्य अवसंरचना तथा उद्योग के विकास द्वारा राज्य का समग्र औद्योगिक विकास करने' के मुख्य ध्येय के साथ 2002 में स्थापित किया गया था। स्रोत: https://www.siidcul.com/about/siidcul. इस लिंक में सिडकुल की सूची दी गई है और उनमें से अधिकांश मैदानी क्षेत्रों में स्थित हैं।

और तृतीयक क्षेत्रों के लिए संगत आंकड़े क्रमशः 245% और 168% रहे हैं।[18] चूंकि राज्य के गठन के बाद मैदानी जिले, आर्थिक गतिविधि के केंद्र बन गए, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, पहाड़ी जिले अर्थव्यस्था के द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों में वृद्धि से समान रूप से लाभान्वित नहीं हो सके। परिणामस्वरूप मैदानी और पहाड़ी जिलों के बीच असमानता बढ़ गई और पलायन के प्रवाह में भी वृद्धि हुई (Department of Planning, GU, 2018)।

उत्तराखंड की जीएसडीपी में प्राथमिक क्षेत्र के घटते महत्त्व के बावजूद, इसमें अब भी राज्य की लगभग 70% जनसंख्या नियोजित है (Chopra, 2014; Planning Commission, GU, 2017, p. 51), (देखें चित्र 12 और 13[19])। जनसंख्या, कृषि और सहायक क्षेत्रों पर अत्यधिक निर्भर रही है, जिससे वह कृषि में जलवायु-प्रेरित परिवर्तनों के प्रति असुरक्षित है (देखें अनुभाग 3.5 उत्तराखंड के जिलों का जलवायु परिवर्तन असुरक्षा प्रोफाइल)। राज्य के पहाड़ी जिलों में कृषि के समक्ष अनेक चुनौतियां हैं, जिनमें युवाओं की बदलती महत्त्वाकांक्षाएं भी शामिल हैं जो प्राथमिक क्षेत्र के बाहर रोजगार की तलाश कर रहे हैं (अनुभाग 4.3 पलायन के कारण, भी देखें)। जहां राज्य की अधिकांश जनसंख्या वर्षा-सिंचित और निर्वाह - आधारित कृषि पर निर्भर है, उत्तराखंड में कृषि उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभाव राज्य में पलायन गतिकी को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं (देखें अनुभाग 5.2 जलवायु परिवर्तन, कृषि और पलायन)। विज़न 2013 में उत्तराखंड सरकार ने पलायन कम करने की अपनी रणनीति निर्धारित करते हुए 'कृषि को बागवानी, सगंध और औषधीय पौधों की खेती, पशुपालन आदि के रूप में विविधीकृत करने के माध्यम से कृषि को लाभप्रद बनाने और पहाड़ों में लोगों को रोजगार के अतिरिक्त अवसर प्रदान करके उन्हें वहीं बनाए रखने' का ध्येय सम्मिलित किया था (Department of Planning, GU, 2018) (इसके सारांश और अन्य नीतियों के लिए अनुभाग 6 देखें)।

आर्थिक प्रगति से विकास के लाभ पूरे राज्य में समान रूप से वितरित नहीं किए गए हैं। जैसा कि इस अनुभाग में चर्चा की गई है, असमान सार्वजनिक निवेशों और अर्थव्यवस्था के बदलते स्वरूप ने पहाड़ की अर्थव्यवस्थाओं को पिछड़ेपन की स्थिति में ला दिया है। पहाड़ी क्षेत्रों में निर्वाह - आधारित और वर्षा-सिंचित कृषि पर निर्भर अधिकांश जनसंख्या के पास प्रायः कम उत्पादकता वाली विखंडित भूमि है। इसके अलावा, संपर्क सुविधाओं का अभाव और अवसंरचना, तकनीक, जानकारी और बाज़ारों तक कम पहुँच का अभाव भी पहाड़ी जिलों में रहने वाली जनसंख्या की असुरक्षाओं में वृद्धि करता है (GU, 2018)। शहरीकरण और जनसंख्या वृद्धि के मुख्य केंद्र, मैदानी शहर और कस्बे रहे

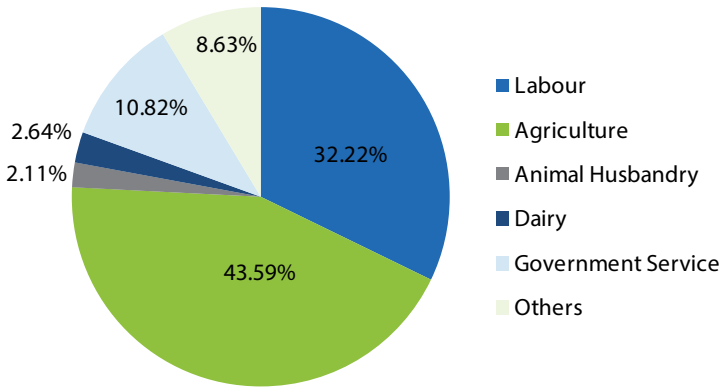

चित्र 13: उत्तराखंड में मुख्य व्यवसाय
डेटा स्रोत: ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके

[18] द्वितीयक क्षेत्र में, विनिर्माण और उत्पादन, सबसे तेज़ी से वृद्धि करने वाले उपक्षेत्र हैं। व्यापार, होटल और रेस्टोरेन्ट, खानपान, पर्यटन, सत्कार उद्योग और परिवहन, तृतीयक क्षेत्र में वृद्धि में प्रमुख रूप से योगदान करते हैं। वृद्धि के राष्ट्रीय पैटर्न के विपरीत इस राज्य की आर्थिक वृद्धि में आईटी क्षेत्र की प्रमुख भूमिका नहीं रही है। इसके बजाय यहां व्यापार, परिवहन और पर्यटन का प्रभुत्व रहा है (lanning Commission, GU, 2017)।

[19] पाई चार्ट (चित्र 11) में 'श्रम' शब्द उन व्यक्तियों को इंगित करता है जो दैनिक मज़दूरी के आधार पर अनियमित कार्यों में लगे होते हैं।

हैं। सबसे हाल की जनगणना में पाया गया कि सभी नामित शहरी क्षेत्र (देहरादून, रूड़की, रूद्रपुर, हल्द्वानी, हरिद्वार, ऋषिकेश और काशीपुर) मैदानों में स्थित हैं और राज्य में शहरीकरण दर 30.55% सूचित की गई (Census, 2011, 2011b)। शहरीकरण और जनसंख्या वृद्धि की दोहरी प्रक्रिया के साथ पहाड़ी गाँवों से लोग मैदानी कस्बों और शहरों में आकर बस गए हैं, जिससे 'भुतहे गाँव' बन गए हैं, जहां वृद्ध लोगों के न रह जाने पर वे गाँव उजाड़ बन जाएंगे (Dey, 2017; Press Trust of India, 2018; Upadhyay, 2018)।

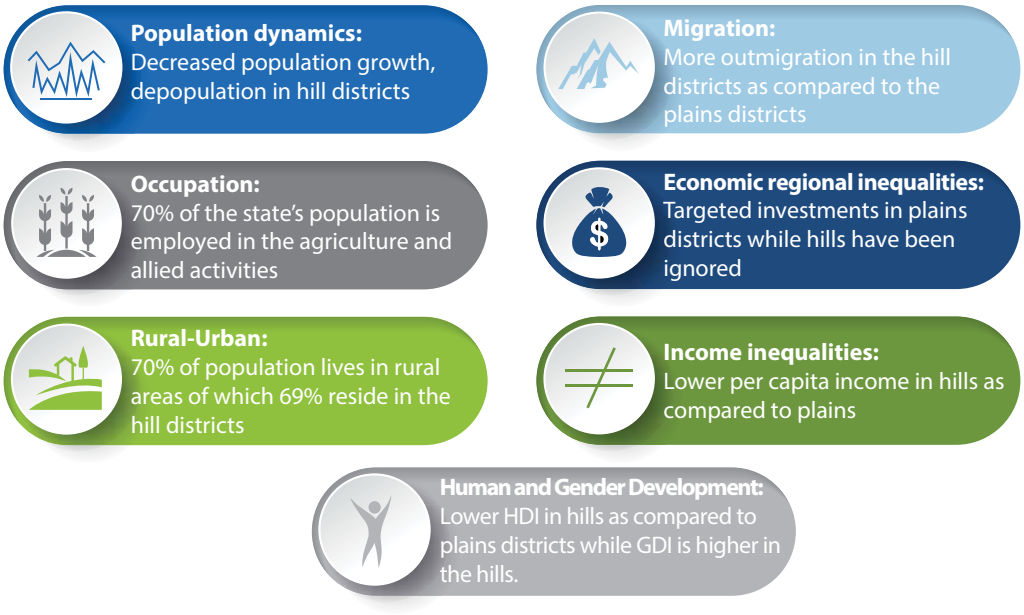

चित्र 14: अनुभाग 2 का सारांश
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके

उत्तराखंड में अवलोकित और पूर्वानुमानित जलवायु परिवर्तन

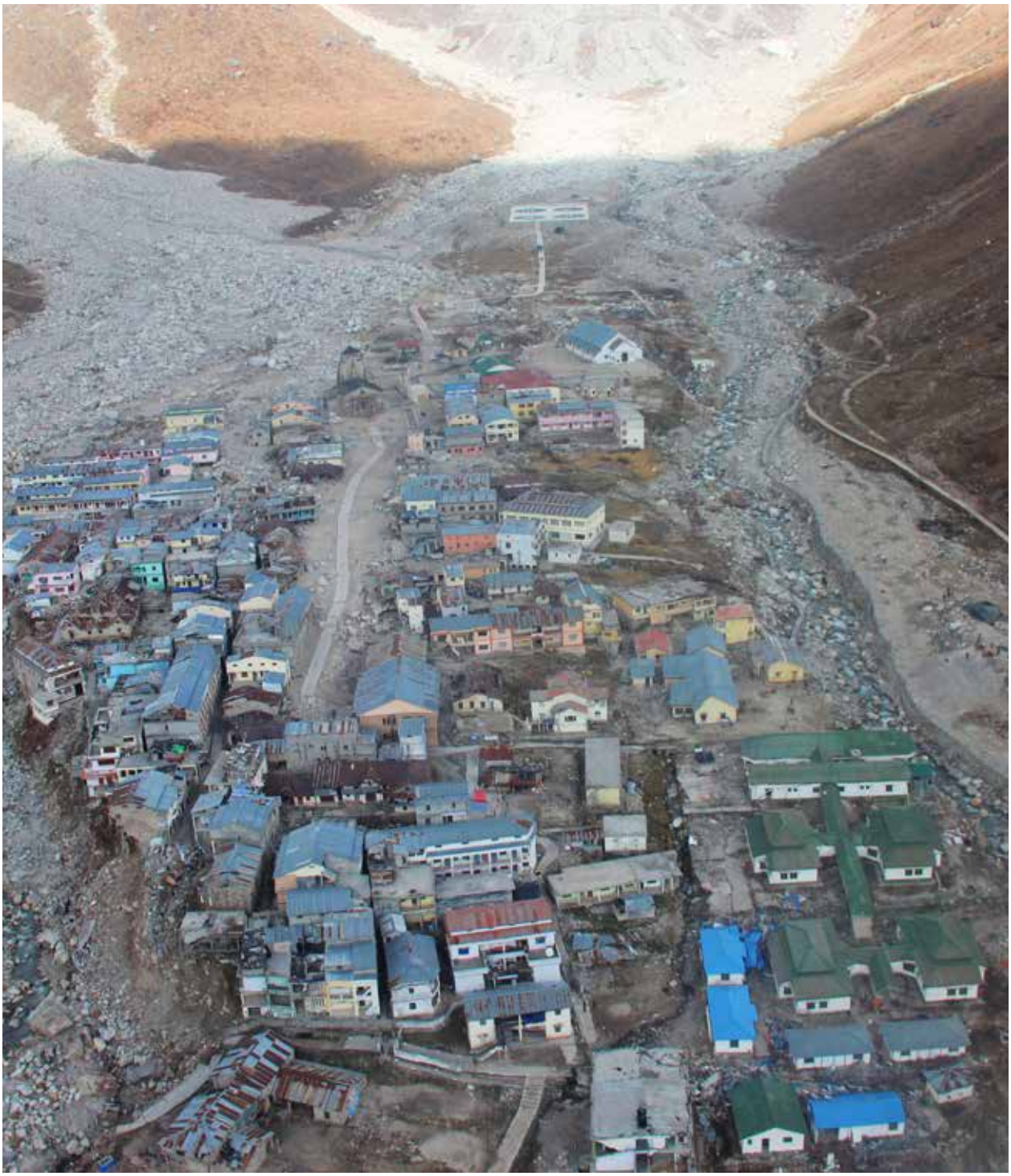

उत्तराखंड। 2103 की बाढ़ से अभी भी उबर रहा है।

© शटरस्टॉक/लियो पहाड़ी

3 उत्तराखंड में अवलोकित और पूर्वानुमानित जलवायु परिवर्तन

उत्तराखंड की विविधतापूर्ण भौगोलिक परिस्थितियां, जलवायु संबंधित अनेक परिवर्तनों के प्रति असुरक्षित हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में उन्नयन आश्रित तापन (ईडीडब्ल्यू) का अनुभव किया जा रहा है जहां तापन की दर, अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में और अधिक है अर्थात वे कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों की अपेक्षा तापमान में अधिक तीव्र और गंभीर परिवर्तनों का अनुभव करते हैं (Pepin et al., 2015)। इससे हिम रेखा में परिवर्तन हो सकते हैं जहां पर्वतों के ऊंचाई वाले क्षेत्र पहले हिमाच्छादित थे वे हिमरहित हो सकते हैं (Kohler et al., 2009)। हिंदू कुश हिमालय मूल्यांकन के अनुसार, पूर्व-औद्योगिक स्तर की तुलना में यदि वैश्विक औसत तापमान 1.5° से. से अधिक बढ़ता है तो इस शताब्दी के अंत तक हिमालय के ग्लेशियरों की एक-तिहाई बर्फ पिघल सकती है (Wester et al., 2019)। चालीस वर्षों के सैटेलाइट डाटा (उपग्रहीय आंकड़ों) पर आधारित एक अन्य अध्ययन में यह आकलन किया गया है कि 1975–2000 और 2000–2016 के दौरान 2000 किमी. हिमालयी रेखा में बर्फ की मोटाई कम हो गई है। यह पाया गया है कि 1975–2000 की तुलना में 2000–2016 की अवधि के दौरान बर्फ की औसत हानि दोगुनी रही है (Maurer et al., 2019)। एच.डी. प्रिटचार्ड के अनुसार एशिया के उच्च पर्वतीय क्षेत्र में 'बर्फ के कम होते भंडार के कारण पहले तो ग्लेशियरों से बहने वाले जल की मात्रा में वृद्धि होगी, [...] जो आईपीसीसी जलवायु परिदृश्य आरसीपी 2.6 परिदृश्य के अंतर्गत वर्ष 2030 तक, या परिदृश्य आरसीपी8.5 के अंतर्गत लगभग एक से तीन दशकों के बाद चरम पर होगी' (Pritchard, 2019, p. 654)। अल्पकाल में, इससे क्षेत्र में बाढ़ आ सकती है, जबकि ग्लेशियरों की बर्फ पिघलने के परिणामस्वरूप दीर्घकाल में जल उपलब्धता में कमी हो जाएगी। पानी की कमी होने से स्थानीय पर्वतीय समुदायों के लिए गंभीर परिणाम उत्पन्न होंगे और इससे क्षेत्र में कृषि उपज में गिरावट आ सकती है (IPCC, 2019, p. 15; Rasul et al., 2019)। जलवायु परिवर्तन के कारण पर्वतों के सौंदर्य पर[20] और स्थानीय सांस्कृतिक विधियों पर भी प्रतिकूल प्रभाव हो सकते हैं जिसके साथ पलायन पर भी प्रभाव पड़ेंगे (IPCC, 2019)।

उत्तराखंड में, वैज्ञानिक अध्ययनों में यह उल्लेख किया गया है कि पातन (वर्षण) और तापमान में परिवर्तन से जल के निस्सारण, मात्रा और उपलब्धता के प्रभावित होने की संभावना है (Bandyopadhyay and Perveen, 2003; Kumar et al., 2006; Negi et al., 2012; Viviroli et al., 2007, 2003)। बदलती जलवायु दशाओं से सूखे पड़ने की भी आवृत्ति अधिक हो जाएगी, जिसके साथ उच्च-तीव्रता वाली वर्षा की घटनाओं में बढ़ोत्तरी होगी (GU, 2014; Krishnan et al., 2019; Pandey and Mishra, 2015; Tewari et al., 2017)। भारत सरकार द्वारा 2018 में जारी एक रिपोर्ट के अनुसार, देश पहले से ही अपने इतिहास में सबसे गंभीर जल संकट का सामना कर रहा है, जहां 600 मिलियन लोगों को पानी को लेकर चरम तनाव का सामना करना पड़ रहा है और लगभग 200,000 लोग हर वर्ष सुरक्षित पेयजल तक अपर्याप्त पहुँच के कारण मर जाते हैं। 2030 तक, पानी की अनुमानित माँग, उपलब्ध आपूर्ति से दोगुनी तक बढ़ जाएगी, जो कि पहले से ही जल संकट का सामना कर रहे देश के लिए एक चिंताजनक परिणाम होगा (NITI Aayog, 2018, p. 15)। इन रूझानों के कारण पलायन पर क्रमसंचयी प्रभाव होंगे, क्योंकि उत्तराखंड की 70% जनसंख्या कृषि या सहायक गतिविधियों में लगी हुई है[21]। इसलिए, तापमान और वर्षा के पैटर्नों में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन, यहां के लोगों की आजीविका को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं (Planning Commission, GU, 2017, p. 51)।

---

[20] पर्वतीय सौंदर्य 'क्रायोस्फीयर (हिममंडल) के सौंदर्य मूल्य से संबंधित है जो क्रायोस्फेरिक (हिमावरण) पर्यटन को प्रोत्साहित करता है। सौंदर्य मूल्य मुख्यतया हिममंडलीय भूदृश्य की कलात्मक विशिष्टताओं (उदा. आकृति और रंग), स्थिति और महत्त्व (उदा. विविधता, विषमता, आनंद और अखंडता) से संदर्भित है। सौंदर्य मान पर विशिष्ट एकाधिकार के साथ हिममंडलीय भूदृश्य को प्रतिकृत नहीं किया जा सकता। हिममंडल में अनेक विभिन्न तत्व जैसे कि ग्लेशियर, ग्लेशियर अवशेष, हिम चादरें, हिम ताक, समुद्री बर्फ, हिमाच्छादन, पाला, तुषार ढेर, हिमावरण, हिम वर्षा, हिम कोहरा, हिमाकृतियां और अन्य संबंधित सौंदर्यात्मक और सांस्कृतिक विशिष्टताएं शामिल हैं जो महत्त्वपूर्ण पर्यटक आकर्षण होती हैं और मनोरंजन सेवाओं में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएं निभाती हैं।' (Hock et al., 2019, p. 171; Xiao et al., 2015, p. 184)।

[21] सांख्यिकी एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन मंत्रालय के अनुसार कृषि और सहायक सेवाओं में 'समुचित कृषि, पालतू पशु एवं पालतू पशुओं के उत्पाद और सिंचाई प्रणाली का संचालन' शामिल (MOSPI, 2007) हैं।

प्रतिनिधि संकेंद्रण मार्ग (रिप्रेजेंटेशन कंसेंट्रेशन पाथवे)

प्रतिनिधि संकेंद्रण मार्ग (रिप्रेजेंटेशन कंसेंट्रेशन पाथवे) (आरसीपी) एक ग्रीनहाउस गैस संकेंद्रण प्रक्षेप (पूर्वानुमान) है जिसे जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल (आईपीसीसी) द्वारा इसकी पांचवीं मूल्यांकन रिपोर्ट (एआर5) में अपनाया गया है। आरसीपी 2.6, आरसीपी4.5, आरसीपी 6 और आरसीपी8.5 नामक चार मार्ग वभिन्न जलवायु भविष्य वर्णित करते हैं और कुल विस्तार वर्ष 2100 विकिरण प्रभाव मूल्यों/मानों (रेडिएटिव फोर्सिंग वैल्यू) अर्थात 2.6 से 8.5 डब्ल्यू/एम2 तक है जिनका नामकरण विकिरण प्रभाव मानों की संभावित सीमा के आधार पर किया गया है। जलवायु में भावी परिवर्तनों का आकलन करने के लिए इस रिपोर्ट में आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 परिदृश्यों का प्रयोग किया गया है। आरसीपी8.5 मूलभूत रूप से इसके प्रक्षेप (पूर्वानुमान) प्रदान करता है कि यदि हम किसी प्रभावी न्यूनीकरण उपाय के बिना अपने वर्तमान उत्सर्जन स्तर बनाए रखें तो क्या होगा, जबकि अन्य भावी प्रक्षेप (पूर्वानुमान) नियम आरसीपी4.5 भविष्य के लिए अपेक्षाकृत कम तापन संभाव्यता दर्शाता है। हालाँकि यह मूल्यांकन, इस बारे में जानकारी प्रदान करने का प्रयास करता है कि इन दो प्रतिनिधात्मक परिदृश्यों के अंतर्गत राज्य में भावी जलवायु का स्वरूप कैसा होगा। इन दोनों परिदृश्यों का एक अवलोकन, तालिका 4 में दिखाया गया है (van Vuuren et al., 2011)।

तालिका 4: प्रतिनिधि संकेंद्रण मार्गों का अवलोकन

मार्ग	विवरण	IA मॉडल
आरसीपी 8.5	2100 तक 8.5 डब्ल्यू/एम^2> (~1370 पीपीएम CO_2 ईक्यू) तक बढ़ोत्तरी वाला वृद्धिशील प्रतिनिधि संकेंद्रण मार्ग	(Riahi et al. 2007)— संदेश
आरसीपी 4.5	पाथवे अतिक्रमण के बिना 4.5 डब्ल्यू/एम^2 (~650 पीपीएम CO_2 ईक्यू) तक स्थिरीकरण 2100 के बाद स्थिरीकरण	(Clarke et al. 2007; Smith and Wigley 2006; Wise et al. 2009)—जीसीएएम

इस अनुभाग में तापमान और वर्षण में ऐतिहासिक रूझानों का विश्लेषण किया गया है (उप-अनुभाग 3.1) और मानसून रूझानों के विश्लेषण पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित करते हुए (अनुभाग 3.3) विभिन्न जलवायु परिवर्तन तापन परिदृश्यों आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 के अंतर्गत जलवायु पूर्वानुमानों को प्रसतुत किया गया है (अनुभाग 3.2.)। तत्पश्चात विगत चरम मौसम घटनाओं का एक अवलोकन और उसके बाद जलवायु की चरम स्थितियों के भावी पूर्वानुमानों पर चर्चा की गई है (अनुभाग 3.4)। इस अनुभाग में जलवायु परिवर्तन अवलोकन और पूर्वानुमानों के साथ राज्य में जिला-वार असुरक्षा प्रोफाइल (अनुभाग 3.5) और पलायन से इसके संभावित संबंधों पर चर्चा की गई है।

3.1 अवलोकित जलवायु विभिन्नता

अवलोकित तापमान

उत्तराखंड में तापमान बढ़ रहा है। मिश्रा और यादव द्वारा किए गए दो अध्ययनों में उत्तराखंड क्षेत्र में 1911 से 2011 तक एक उल्लेखनीय तापन रूझान सूचित किया गया, जैसा कि चित्र 15 में दर्शाया गया है। औसतन, वार्षिक तापमान वृद्धि 0.46° से. है। विगत दशक में यह तापन बढ़ा है। पहाड़ी जिलों, जैसे कि उत्तरकाशी, चमोली, रूद्रप्रयाग और पिथौरागढ़ में तापमान अधिक उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है, जबकि हरिद्वार, देहरादून और पौड़ी गढ़वाल में अन्य की अपेक्षा वृद्धि कम है (Mishra, 2017; Yadav et al. 2014)।

किए गए अनेक अध्ययनों में राज्य में वार्षिक तथा मौसमी तापमान रूझानों का विश्लेषण किया गया है। जलवायु संबंधी अधिकांश अध्ययनों में, अधिकतम (एक दिन में दर्ज किया गया अधिकतम तापमान) और न्यूनतम (एक दिन में दर्ज किया गया न्यूनतम तापमान) मान में परिवर्तन के सापेक्ष तापमान का विश्लेषण किया गया है। प्रनुथी और आईएनआरएम द्वारा सूचित किया गया है कि 1950 और 2013 के बीच सभी तेरह जिलों के लिए उत्तराखंड का वार्षिक औसत अधिकतम तापमान गिरावट या शीतलन रूझान दर्शाता है, जबकि राज्य का

न्यूनतम तापमान वृद्धिशील या तापन रूझान दर्शाता है। यद्यपि वार्षिक रूझान, संख्यात्मक रूप से उल्लेखनीय नहीं हैं[22], लेकिन मौसमी रूझान विश्लेषण अधिक अंतर प्रकट करते हैं, अर्थात ऋतुओं के संदर्भ में परिवर्तनों के अध्ययन हेतु अधिक गहन विश्लेषण की आवश्यकता है। तालिका 5 में 1911 और 2011 के बीच मासिक माध्य तापमान में परिवर्तनों को संक्षेपित किया गया है। इसमें प्रदर्शित है कि नवम्बर, दिसम्बर और फरवरी के शीतकालीन महीनों में तापमान में अधिकतम वृद्धि दर्ज की गई, जबकि जून, जुलाई, अगस्त और सितम्बर के मानसून के महीनों में शीतलन रूझान प्रदर्शित होता है (Pranuthi et al. 2014; INRM, 2016b)।

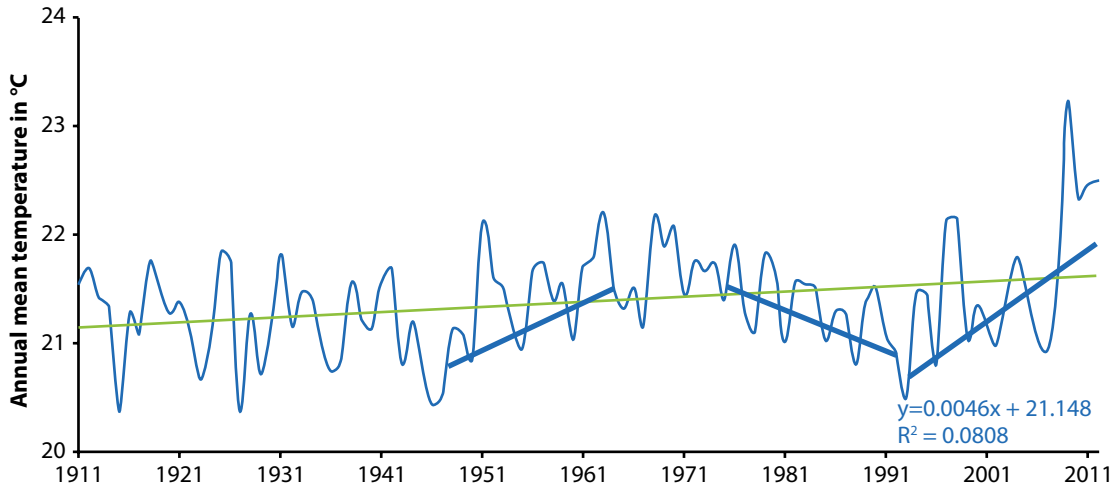

चित्र 15: उत्तराखंड के वार्षिक माध्य तापमान रूझान (1911–2012)

तालिका 5: मासिक माध्य तापमान परिवर्तन (°से./100 वर्ष)

जिला/राज्य	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
अल्मोड़ा	0.49	1.77**	1.12	0.75	0.09	-0.43	-0.27	-0.36*	-0.21	0.29	1.00**	1.27**
बागेश्वर	0.63	1.79**	1.19	0.8	0.14	-0.36	-0.2	-0.31	-0.18	0.35	1.01**	1.32**
चमोली	0.73	1.73**	1.25*	0.87	0.23	-0.27	-0.22	-0.24	-0.17	0.37	1.00**	1.24**
चम्पावत	0.54	1.77**	1.07	0.71	0.14	-0.38	-0.17	-0.31	-0.18	0.33	0.99**	1.32**
देहरादून	0.56	1.47**	1.07*	1.15*	0.46	-0.5	-0.58*	-0.50*	-0.44*	-0.09	0.87**	0.97**
पौड़ी गढ़वाल	0.54	1.63**	1.05	0.92	0.21	-0.47	-0.45	-0.43*	-0.33	0.16	0.93**	1.14**
हरिद्वार	0.55	1.50**	0.9	1.12*	0.3	-0.55	-0.63*	-0.51*	-0.48*	-0.07	0.87**	1.11**
नैनीताल	0.44	1.75**	1.03	0.72	0.06	-0.49	-0.29	-0.35*	-0.24	0.28	1.05**	1.32**

[22] सांख्यिकीय रूप से उल्लेखनीय का आशय है कि एक निर्धारित समय अवधि के अंदर तापमान में वृद्धि, निर्दिष्ट नीति नियोजन को ध्यान में रखते हुए सांख्यिकीय रूप से अधिक होती है। हालाँकि, यह उल्लेख किया जा सकता है कि वार्षिक आधार पर विभिन्नताएं, पूर्ण समय अवधि के लिए इस बढ़ते रूझान का एक अंग हैं। इसलिए, तापमान में इस दीर्घकालीन वृद्धि के अंतर्गत वर्ष के अंदर तापमान की मौसमी विभिन्नताओं को समझना बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

जिला/राज्य	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
पिथौरागढ़	0.78	1.82**	1.24*	0.87	0.21	-0.26	-0.1	-0.25	-0.13	0.39	1.02**	1.36**
रूद्रप्रयाग	0.72	1.71**	1.23*	0.89	0.28	-0.27	-0.28	-0.24	-0.2	0.34	0.98**	1.16**
टिहरी गढ़वाल	0.6	1.54**	1.16*	1.01	0.36	-0.4	-0.42	-0.38	-0.31	0.13	0.90**	0.99**
ऊधम सिंह नगर	0.44	1.70**	0.99	0.76	0.08	-0.57	-0.36	-0.35*	-0.3	0.27	1.10**	1.31**
उत्तरकाशी	0.67	1.58**	1.29*	1.02*	0.46	-0.28	-0.33	-0.27	-0.22	0.2	0.98**	1.06**
उत्तराखंड	0.59	1.67**	1.12	0.89	0.23	-0.4	-0.33	-0.35*	-0.26	0.23	0.98**	1.20**

**99% कॉन्फिडेंस स्तर पर रूझान महत्त्वपूर्ण है।
* 95% कॉन्फिडेंस स्तर पर रूझान महत्त्वपूर्ण है।
स्रोत: मिश्रा, 2017

उत्तराखंड के वार्षिक न्यूनतम तापमान में 1951 से 2013 के बीच तिरसठ वर्षों के दौरान 0.42° से. की वृद्धि हुई है जिस दौरान वार्षिक अधिकतम तापमान में 0.25° से. कमी आई है। कोई रूझान सांख्यिकीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है (INRM, 2016a)। हालाँकि इसी अवधि में, शीतकालीन ऋतु (जनवरी और फरवरी के महीने) में राज्य के सभी जिलों में अधिकतम तापमान में सांख्यिकीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण गिरावट का रूझान देखा गया है, जबकि उत्तरकाशी, देहरादून, टिहरी गढ़वाल और पिथौरागढ़ जिलों में न्यूनतम तापमान में सांख्यिकीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बढ़ोत्तरी का रूझान देखा गया है।

अवलोकित वर्षा

वर्षा में विभिन्नता, बदलती क्षेत्रीय जलवायु का एक महत्त्वपूर्ण संकेतक है। वर्षा में अधिक अंतर होने पर सूखे या बाढ़ के रूप में चरम घटनाएं हो सकती हैं, जिनसे जन-धन दोनों पर प्रभाव पड़ता है। अनेक अध्ययनों ने राज्य में उत्तराखंड राज्य और इसके जिलों में वर्षा में सामयिक और स्थानिक विभिन्नता और रूझानों का अध्ययन किया है। (Mishra, 2017, 2014; Pranuthi et al., 2014; Yadav et al., 2014)। मिश्रा (2017) ने 1911 से 2011 की अवधि के दौरान वर्षा के पैटर्न का विश्लेषण करते हुए (चित्र 16) विश्लेषित डाटा सेट में विगत 100 वर्षों में वर्षा पैटर्न में एक उल्लेखनीय अंतर-वार्षिक विभिन्नता और 1990 के दशक के बाद गिरावट का अधिक प्रमुख रूझान प्रदर्शित किया है। यद्यपि 1990 के दशक के बाद कुल वार्षिक वर्षा में अधिक कमी नहीं देखी गई है, लेकिन यह क्षेत्र के जल संसाधनों पर अत्यधिक दबाव डाल सकती है। जैसा कि चित्र 17 और 18 में देखा जा सकता है, पूरे राज्य में वर्षा में कमी एकसमान नहीं रही है। हरिद्वार एकमात्र ऐसा जिला है जहां वर्षा में कुछ वृद्धि हुई है, जबकि सभी अन्य जिलों में वर्षा की कमी देखी गई है। वर्षा की यह कमी, पहाड़ी जिलों, जैसे कि पिथौरागढ़, बागेश्वर, अल्मोड़ा, चम्पावत और नैनीताल में अधिक देखी गई है (Mishra, 2014)। राज्य के पर्वतीय क्षेत्र अधिक शुष्क हो गए हैं और दक्षिण से उत्तर तथा पश्चिम से पूर्व की ओर वर्षा में गिरावट आ रही है (Mishra, 2017)। वर्ष 1951 से 2013 के दौरान उत्तराखंड के सभी जिलों में वार्षिक वर्षा में 20%–36% की विभिन्नता रही है (INRM, 2016a)।

चित्र 17 उत्तराखंड के विभिन्न जिलों में 1911 से 2011 के दौरान मासिक वर्षा में परिवर्तन दर्शाता है। यह मार्च, मई और नवम्बर के सिवाय अन्य सभी महीनों में घटती वर्षा का रूझान प्रदर्शित करता है। मानसून की ऋतु में भी गिरावट के प्रबल रूझान देखे गए हैं। वर्षा के पैटर्नों में यह विचारणीय परिवर्तन, कृषि और फसल उत्पादनों को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करेंगे क्योंकि राज्य की लगभग 80% कृषि वर्षा-सिंचित है (Mishra and Chaudhuri, 2015)।

पूरे उत्तराखंड में 1951 से 2013 के दौरान वार्षिक वर्षायुक्त दिनों की संख्या में भी कमी हुई है। (INRM, 2016a) जैसा कि चित्र 19 में दिखाया गया है। यद्यपि वार्षिक वर्षा के ऋणात्मक रूझान, सांख्यिकीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, लेकिन वर्षायुक्त दिनों के ऋणात्मक रूझान

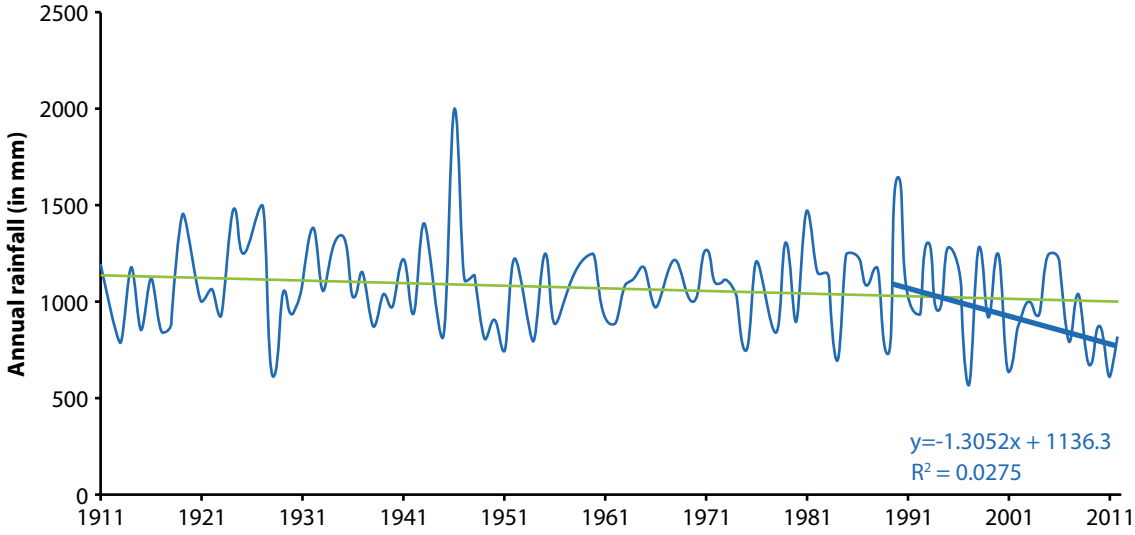

चित्र 16: उत्तराखंड के वार्षिक वर्षा रूझान
स्रोत: मिश्रा, 2017

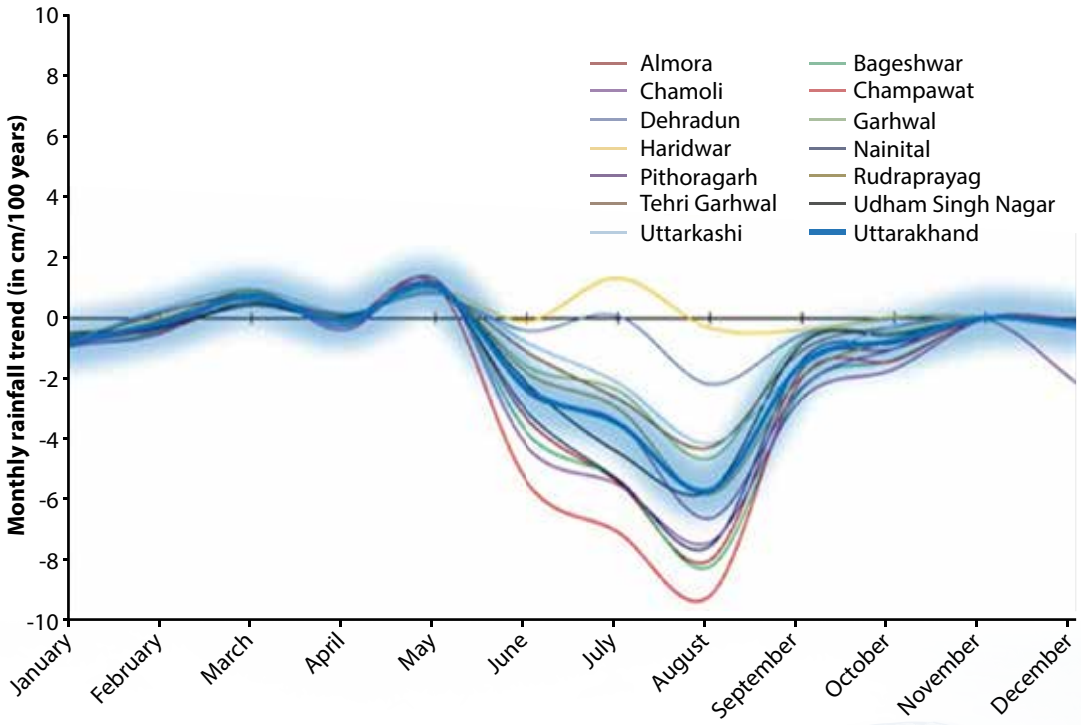

चित्र 17: 1911–2011 के दौरान मासिक वर्षा में परिवर्तन
स्रोत: मिश्रा, 2017

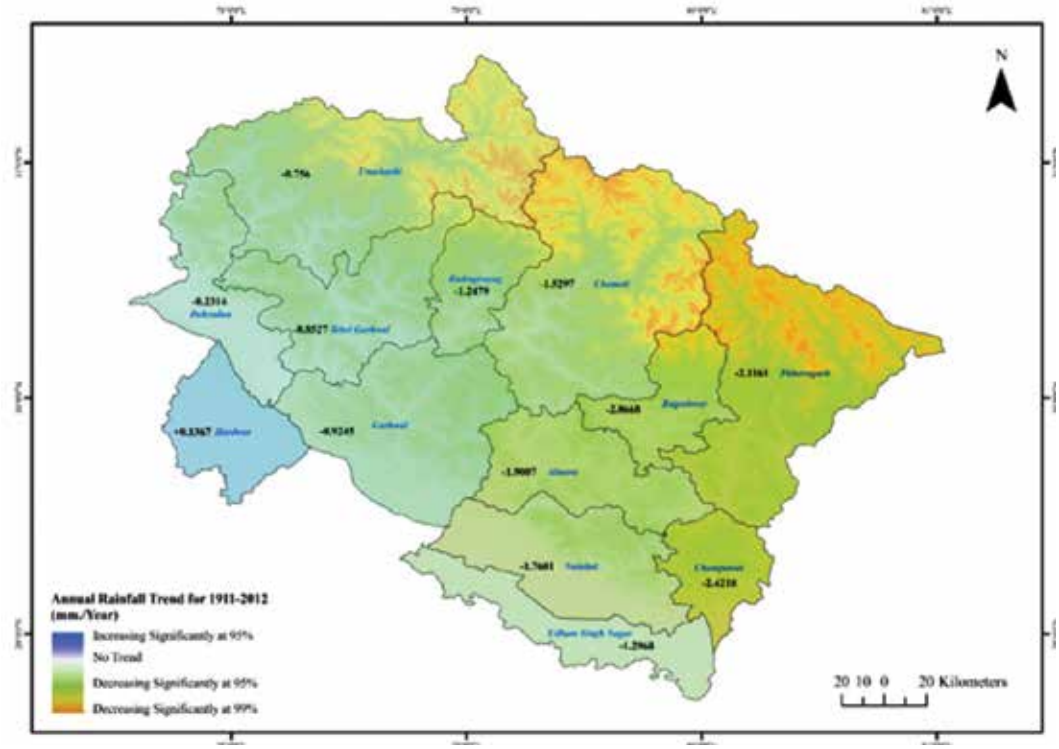

चित्र 18: वार्षिक वर्षा परिवर्तनों का स्थानिक वितरण
स्रोत: मिश्रा, 2017

सांख्यिकीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। अतएव, यद्यपि वर्षायुक्त दिनों की संख्या कम हुई है, लेकिन क्रमसंचयी वार्षिक वर्षा में उल्लेखनीय कमी नहीं आई है – जो राज्य में 1951 से 2013 के बीच बढ़ती तीव्रता को इंगित करता है।

3.2 जलवायु को लेकर भावी दृष्टिकोण

भावी जलवायु परिवर्तन, पारिस्थितिक और सामाजिक-आर्थिक प्रणालियों पर अतिरिक्त तनाव डाल सकते हैं, जो पहले से ही तीव्र शहरीकरण, औद्योगीकरण और सामान्य रूप से, आर्थिक विकास के कारण अत्यधिक दबावों का सामना कर रहे हैं। अतएव इन संभावित तनावों और प्रभावों को समावेशित करते हुए जलवायु विज्ञान द्वारा भावी रूझानों के पूर्वानुमान, वैश्विक, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तरों पर सूचित नीतिनिर्माण में सहायक होंगे। भावी जलवायु और इसके प्रभावों के पूर्वानुमान समझने और इनके अनुसार कार्यवाही करने में निर्णयकर्ताओं की सहायता के लिए जलवायु विज्ञान समुदाय द्वारा विभिन्न वैश्विक और क्षेत्रीय जलवायु मॉडल उपयोग किए जाते हैं। जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल (आईपीसीसी) ने अपनी पांचवीं मूल्यांकन रिपोर्ट (एआर5) में यह उल्लेख किया है कि 1880 से 2012 की अवधि के लिए वैश्विक पृष्ठीय तापमान में 0.85° से. का वृद्धिशील (तापन) रूझान देखा गया है (IPCC, 2014)। असमान और गतिशील जलवायु परिवर्तन परिदृश्य के अंतर्गत क्षेत्रीय जलवायु विभिन्नताओं (अंतरों) को समझना भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

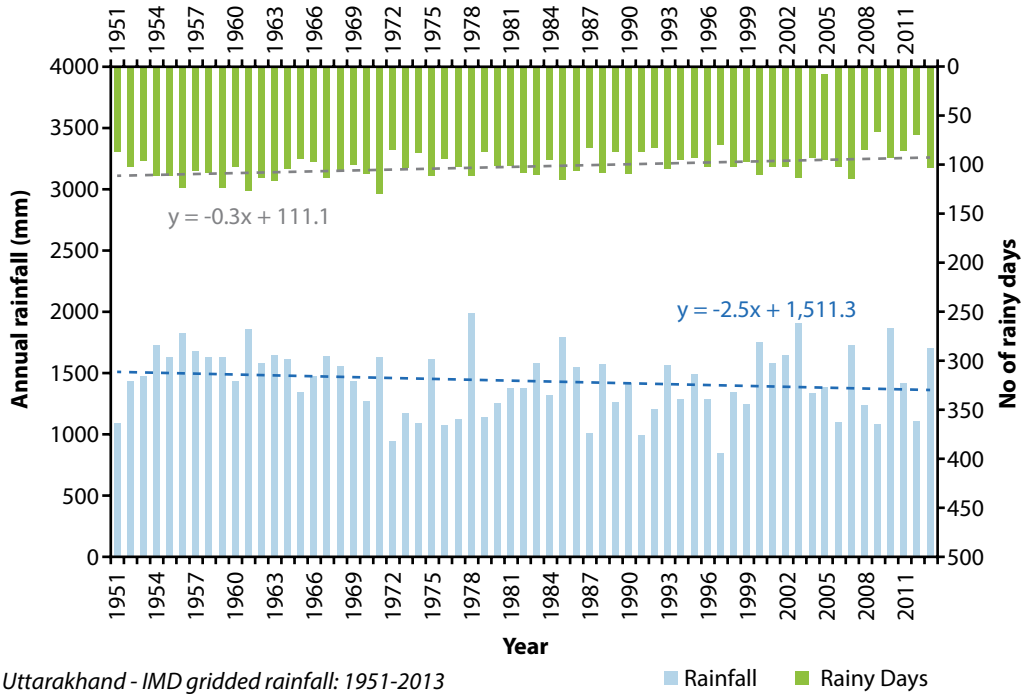

चित्र 19: उत्तराखंड में अवलोकित वार्षिक वर्षा की विशेषताएं और वर्षायुक्त दिनों की संख्या (1951 – 2013)
स्रोत: आईएनआरएम, 2016b

आरसीपी6.0 से आरसीपी8.5 के अंतर्गत भारत के लिए जलवायु परिवर्तन के मौजूदा रूझान पूर्वऔद्योगिक अवधि के सापेक्ष - **2030 के दशक तक (2021 और 2050 के बीच) 1.7° से. से 2.0° से. के और 2080 के दशक तक (2070 और 2099 के बीच) 3.3° से. से 4.8° से. तक संभावित तापन, दर्शाते हैं।** इस परिदृश्य के अंतर्गत पातन (वर्षण) 1961 से 1990 बेसलाइन के सापेक्ष 2030 के दशक तक 4% से 5% बढ़ने और 2080 के दशक तक 6% से 14% तक बढ़ने का पूर्वानुमान है (Chaturvedi et al., 2012)। भारतीय हिमालयी क्षेत्र के लिए पूर्वानुमान भी उल्लेखनीय तापन की ओर इंगित करते हैं। यह सूचित किया गया है कि चरम आरसीपी8.5 परिदृश्य के अंतर्गत प्रति दशक अधिकतम तापमान 0.3° से. से 1.0° से. तक परिवर्तित हुआ है और न्यूनतम तापमान प्रति दशक 0.3° से. से 1.1° से. तक परिवर्तित हुआ है (Dimri et al., 2018)।

इस रिपोर्ट में उत्तराखंड राज्य में, विशेष रूप से पर्वतीय क्षेत्रों में निम्नतर रेजोल्यूशन पर स्थलाकृति और गुम क्षेत्रीय जलवायु विभिन्नता को कैप्चर करते हुए जलवायु प्रभावों का विश्लेषण करने के लिए उच्च स्थानिक रेजोल्यूशन डाटा का उपयोग किया गया है (Hijmans et al., 2005)। 25 किमी × 25 किमी के स्थानिक रेजोल्यूशन के साथ उच्च-रेजोल्यूशन वाले, पूर्वाग्रह संशोधित एनईएक्स-जीडीडीपी डाटा उपयोग किया गया है (जैसा कि अगले अनुभाग में विवरण दिया गया है)। इस अध्ययन में परिणाम, अन्य राज्य व्यापी मूल्यांकनों जैसे कि आईएनआरएम (2016a) के भी अनुरूप हैं।

यह अनुभाग जलवायु के मानदंडों, विशेषकर तापमान और वर्षा के भावी परिवर्तनों के बारे में क्षेत्र में उनके सामान्य औसत तथा उनके चरम व्यवहार के संदर्भ में, जानकारी प्रदान करता है। भावी परिवर्तनों को समझने के लिए दो प्रतिस्पर्धी आरसीपी मुख्यतः आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 का उपयोग किया गया है।

प्रयुक्त डाटा और पद्धति

निकट-भविष्य (2021–2050), मध्यम-भविष्य (2051–2080) और सुदूर-भविष्य (2081–2099) अवधियों के लिए – वर्षा, अधिकतम और न्यूनतम तापमान और विविध चरम जलवायु सूचकों के संदर्भ में पूर्वानुमानित परिवर्तनों का विश्लेषण करने – और उत्तराखंड राज्य और इसके जिलों के लिए इसका मानचित्रण करने के लिए नासा के पृथ्वी विनिमय वैश्विक दैनिक लघुकृत प्रक्षेप/पूर्वानुमान (एनईएक्स-जीडीडीपी) डाटासेट का उपयोग किया गया। एनईएक्स-जीडीडीपी में इक्कीस वैश्विक प्रसार/संचरण मॉडलों (जीसीएम) का उपयोग करते हुए कणिकीय जानकारी निर्मित करने की सांख्यिकीय तकनीकों का उपयोग किया जाता है (टायलर एट अल., 2012)। इस तकनीक से वैश्विक मॉडल डाटासेटों का उपयोग करते हुए उच्च रेजोल्यूशन वाली जानकारी निर्मित करने में मदद मिलती है। एनईएक्स-जीडीडीपी डाटासेट का क्षैतिजिक रेजोल्यूशन लगभग 25 किमी × 25किमी (0.25° देशांतर × 0.25° अक्षांश) है जिससे ऐसे कणिकीय भावी जलवायु प्राक्कलन, उप-राष्ट्रीय स्तरों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का आकलन करने में सहायक हैं। प्रयुक्त मॉडलों का विवरण परिशिष्ट 1 में प्रदान किया गया है। उत्तराखंड में पूर्वानुमानित परिवर्तन, आईपीसीसी द्वारा अपनाए गए आरसीपी का उपयोग करके विश्लेषित किए गए।

वर्षा के पूर्वानुमान

अनेक मॉडलों के उपयोग वाले पूर्वानुमानों की अनिश्चितता कम करने के लिए वैश्विक जलवायु समुदाय द्वारा आमतौर से विभिन्न क्षेत्रीय मॉडलों के परिणामों के औसत का प्रयोग किया जाता है, जो मल्टीमोडल एन्सेम्बल तकनीकें कहलाती हैं। 1971–2005[23] की बेसलाइन अवधि के सापेक्ष क्रमशः 2021–2050, 2051–2080 और 2081–2099, की निकट-भविष्य, मध्यम-भविष्य और सुदूर-भविष्य अवधियों के लिए वार्षिक और मौसमी वर्षा में परिवर्तनों का विश्लेषण करने के लिए एनईएक्स-जीडीडीपी मॉडलों का मल्टीमोडल एन्सेम्बल माध्य उपयोग किया गया है। चित्र 20ए और चित्र 20बी उत्तराखंड और इसके जिलों के लिए आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 परिदृश्यों हेतु वार्षिक वर्षा में प्रतिशत परिवर्तन दर्शाते हैं। दोनों परिदृश्यों के लिए वार्षिक वर्षा में पूर्वानुमानित परिवर्तन की जिला-वार विभिन्नताएं चित्र 21 में प्रदर्शित हैं। विभिन्न भावी समय अवधियों के लिए मौसमी और वार्षिक वर्षा में पूर्वानुमानित परिवर्तनों का स्थानिक निरूपण चित्रों 22, 23 और 24 में दर्शाया गया है। आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 परिदृश्यों के लिए वार्षिक वर्षा में पूर्वानुमानित परिवर्तन परिशिष्ट 2 में दिए गए हैं।

आरसीपी4.5 के अंतर्गत क्रमशः निकट-भविष्य, मध्यम-भविष्य और सुदूर-भविष्य अवधियों के लिए औसत वार्षिक वर्षा में लगभग 6%, 10% और 16% वृद्धि पूर्वानुमानित है जबकि आरसीपी8.5 में 8%, 20% और 32% वृद्धि के पूर्वानुमान हैं (देखें चित्र 20)। अतएव, दोनों परिदृश्यों में पूर्वानुमानित औसत वार्षिक वर्षा में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है। सर्वाधिक वृद्धि जून से जुलाई तक की मानसून ऋतु के लिए पूर्वानुमानित है, जो बेसलाइन के सापेक्ष निकट-भविष्य, मध्यम-भविष्य और सुदूर-भविष्य में क्रमशः 8%, 14% और 21% का पूर्वानुमानित परिवर्तन दर्शाते हैं। मानसून पश्चात ऋतु (अक्टूबर और नवम्बर) में भी दोनों परिदृश्यों के अंतर्गत समस्त अवधियों के लिए पूर्वानुमानित वर्षा में वृद्धि प्रदर्शित है। शीत ऋतु (दिसम्बर-जनवरी-फरवरी) के दौरान मॉडल, दोनों परिदृश्यों के अंतर्गत समस्त भावी समय अवधियों के लिए वर्षा में कमी पूर्वानुमानित करते हैं। आरसीपी4.5 के लिए औसत वार्षिक वर्षा निकट-भविष्य और मध्यम-भविष्य अवधियों में पूर्व मानसून ऋतु (मार्च-अप्रैल-मई) के दौरान एक पूर्वानुमानित कमी और सुदूर-भविष्य अवधि में वृद्धि दर्शाती है; जबकि आरसीपी8.5 के लिए यह सभी तीनों अवधियों में घटनी पूर्वानुमानित है।

[23] संदर्भ अवधि को आईपीसीसी एआर5 के अनुरूप चुना गया है और नवीनतम जलवायु चक्र को शामिल किया गया है जिसे भावी परिवर्तनों का मूल्यांकन करने के लिए संदर्भ अवधि के रूप में उपयोग किया गया है।

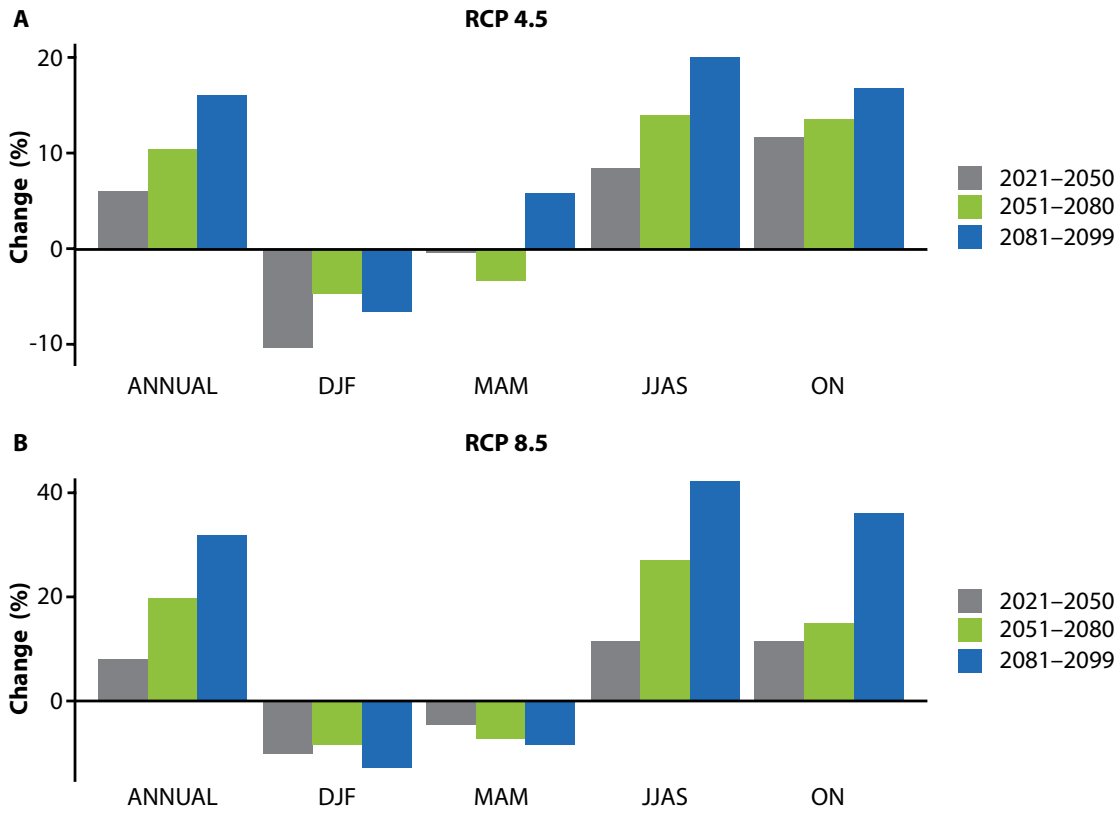

चित्र 20: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में उत्तराखंड राज्य में वार्षिक और मौसमी वर्षा में पूर्वानुमानित परिवर्तन

जैसा कि चित्र 21 में देखा जा सकता है, सभी जिलों में दोनों परिदृश्यों के लिए वार्षिक औसत वर्षा में वृद्धि पूर्वानुमानित है। आरसीपी4.5 के लिए निकट-भविष्य परिदृश्य के अंतर्गत अन्य जिलों की तुलना में दक्षिणी जिलों जैसे कि ऊधम सिंह नगर, नैनीताल और चम्पावत में वार्षिक औसत वर्षा में सर्वाधिक पूर्वानुमानित वृद्धि (7.5%–8%) प्रदर्शित है। इसके विपरीत चमोली, पौड़ी गढ़वाल, हरिद्वार और पिथौरागढ़ जिलों में आरसीपी8.5 निकट-भविष्य परिदृश्य के लिए सर्वाधिक पूर्वानुमानित वृद्धि (11%–12%) प्रदर्शित है। दोनों परिदृश्यों के लिए मध्यम-भविष्य के मामले में, अन्य जिलों की तुलना में चम्पावत और ऊधम सिंह नगर में सर्वाधिक पूर्वानुमानित वृद्धि प्रदर्शित है। दोनों परिदृश्यों के लिए सुदूर-भविष्य अवधि में ऊधम सिंह नगर, चम्पावत और रूद्रप्रयाग में वार्षिक औसत वर्षा में सर्वाधिक पूर्वानुमानित वृद्धि प्रदर्शित है।

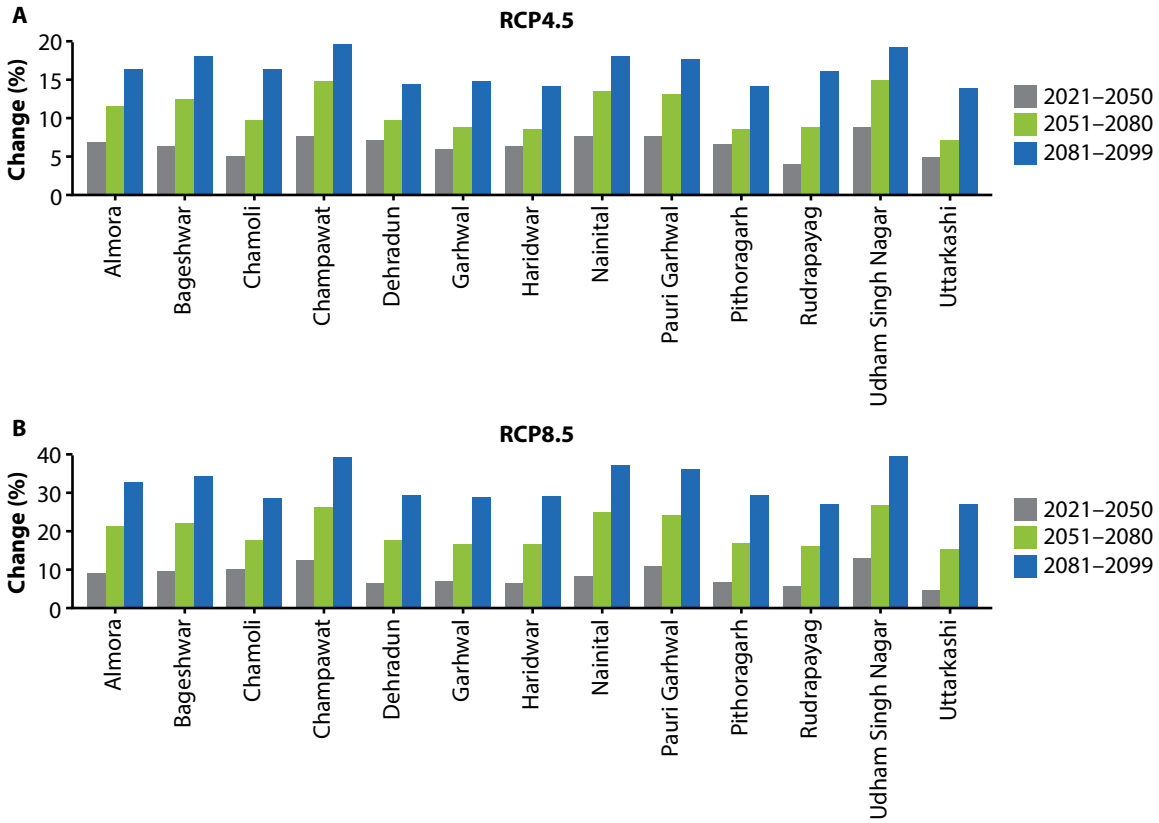

चित्र 21: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में उत्तराखंड के जिलों में वार्षिक वर्षा में पूर्वानुमानित परिवर्तन

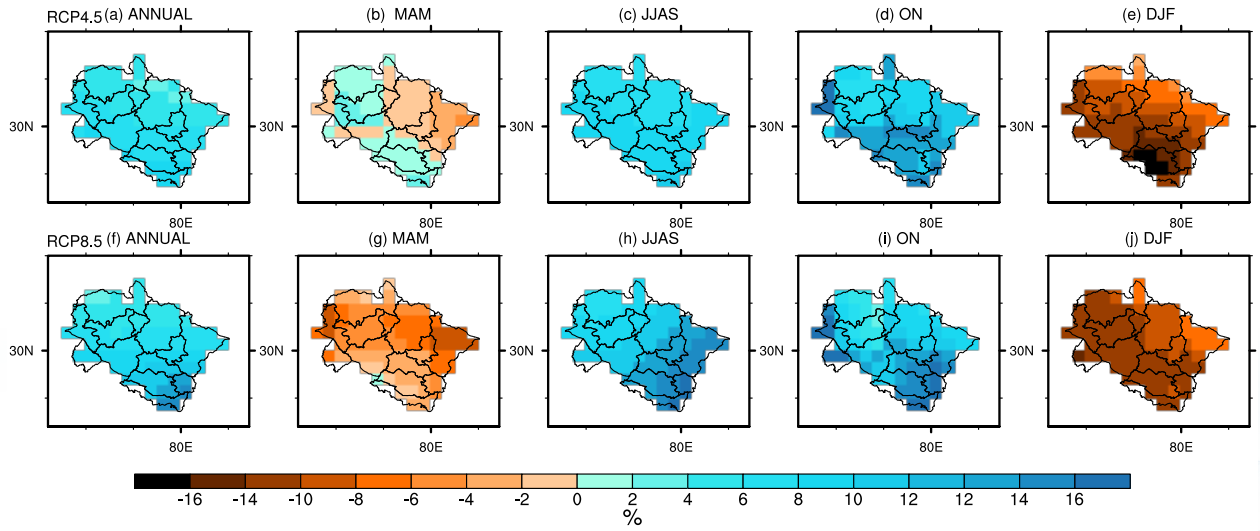

चित्र 22: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में उत्तराखंड के जिलों में वार्षिक वर्षा में पूर्वानुमानित परिवर्तन

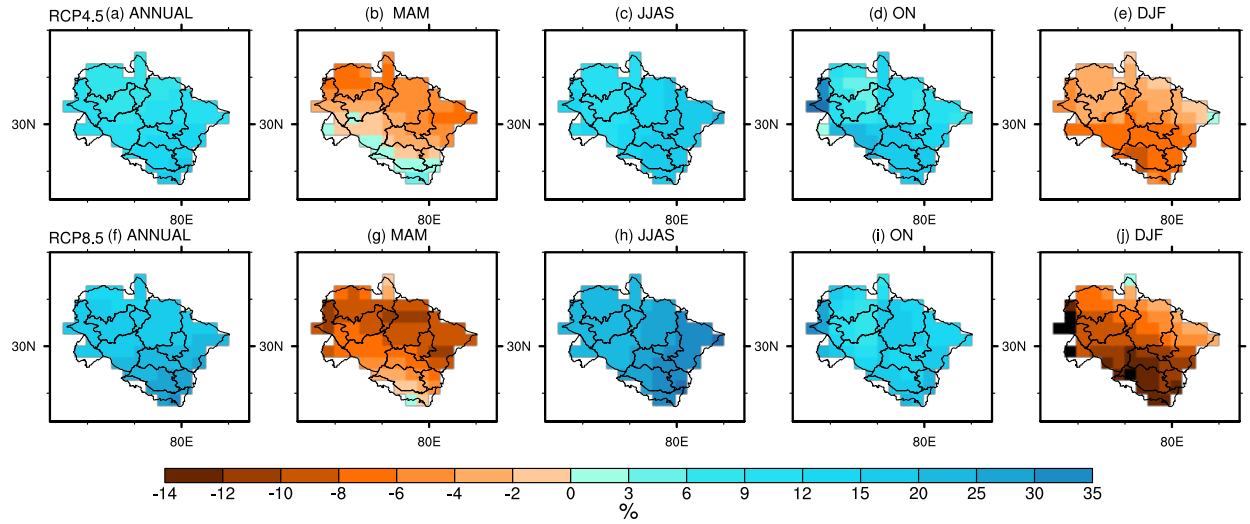

चित्र 23: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में 2051–2080 के दौरान वर्षा में पूर्वानुमानित भावी परिवर्तन

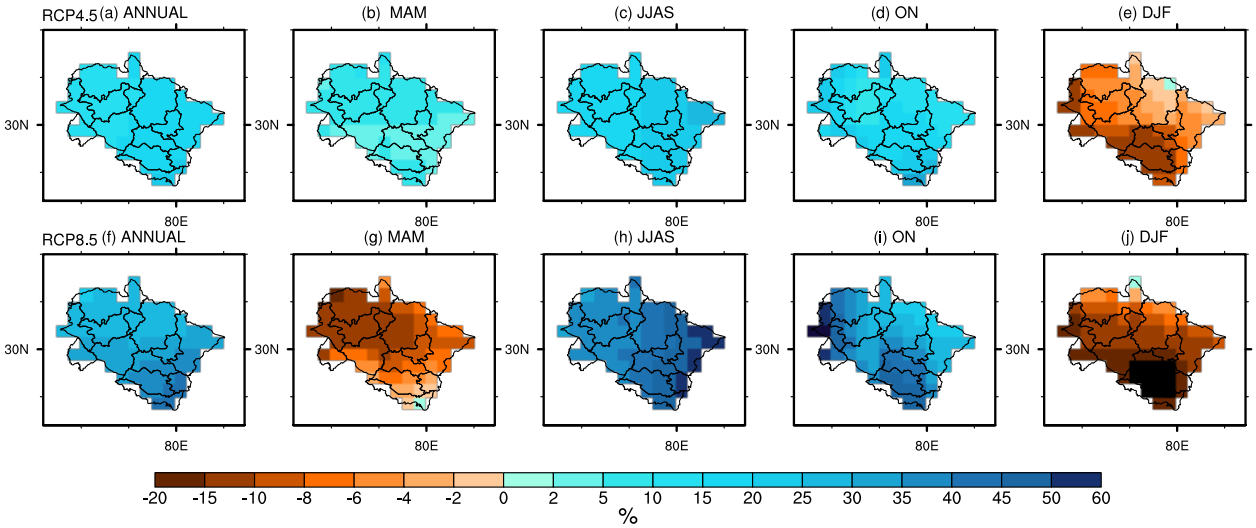

चित्र 24: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में 2081-2099 के दौरान वर्षा में पूर्वानुमानित भावी परिवर्तन

तापमान के पूर्वानुमान

बेसलाइन अवधि 1971–2005 के सापेक्ष क्रमशः 2021–2050, 2051–2080 और 2081–2099, की निकट-भविष्य, मध्यम-भविष्य और सुदूर-भविष्य अवधियों के दौरान अधिकतम वार्षिक और मौसमी तापमानों में भावी परिवर्तनों का विश्लेषण करने के लिए 21 एनईएक्स-जीडीडीपी मॉडलों का मल्टीमोडल एन्सेम्बल माध्य का उपयोग किया गया। यह विश्लेषण दो आईपीसीसी परिदृश्यों के लिए किया गयाः आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5. चित्र 25ए और 25बी उत्तराखंड में अधिकतम वार्षिक और मौसमी तापमान में परिवर्तन दर्शाते हैं। चित्र 26 राज्य में जिलावार अधिकतम तापमान में औसत वार्षिक परिवर्तन दर्शाता है। अधिकतम मौसमी और वार्षिक तापमानों में पूर्वानुमानित परिवर्तनों का स्थानिक निरूपण चित्रों 27, 28 और 29 में दर्शाया गया है। वार्षिक अधिकतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन परिशिष्ट 3 में दिया गया है।

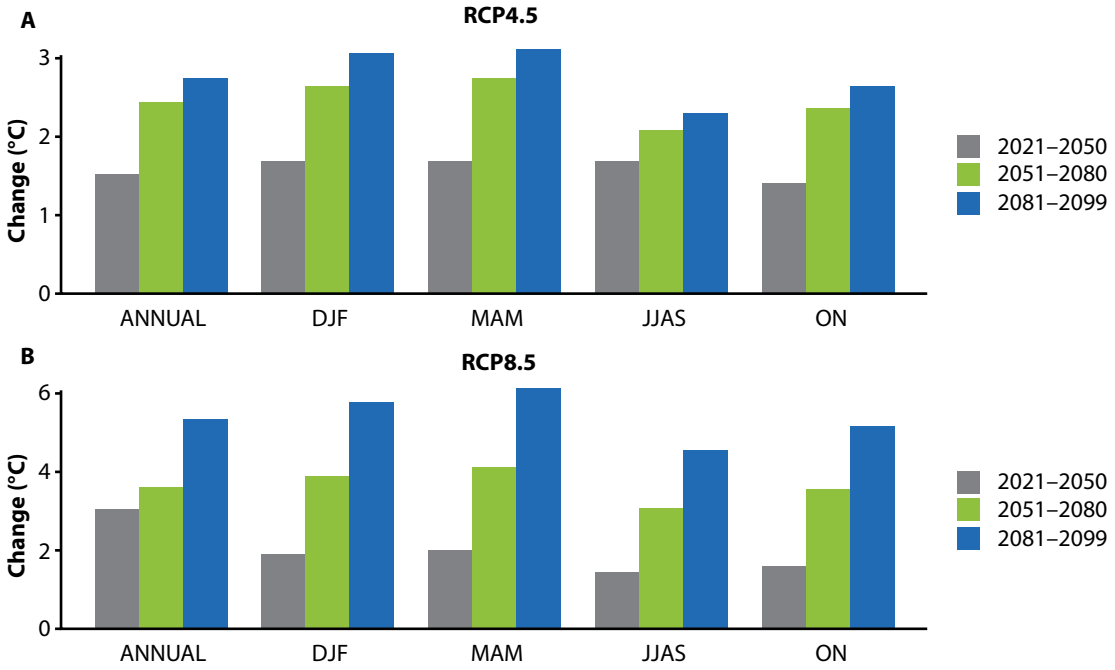

चित्र 25: पूर्वानुमानित निकट-भविष्य (2021–2050), मध्यम-भविष्य (2051–2080) और सुदूर-भविष्य (2081–2099)। बेसलाइन अवधि (1971–2005) के संदर्भ में उत्तराखंड में वार्षिक और मौसमी अधिकतम तापमान में परिवर्तन

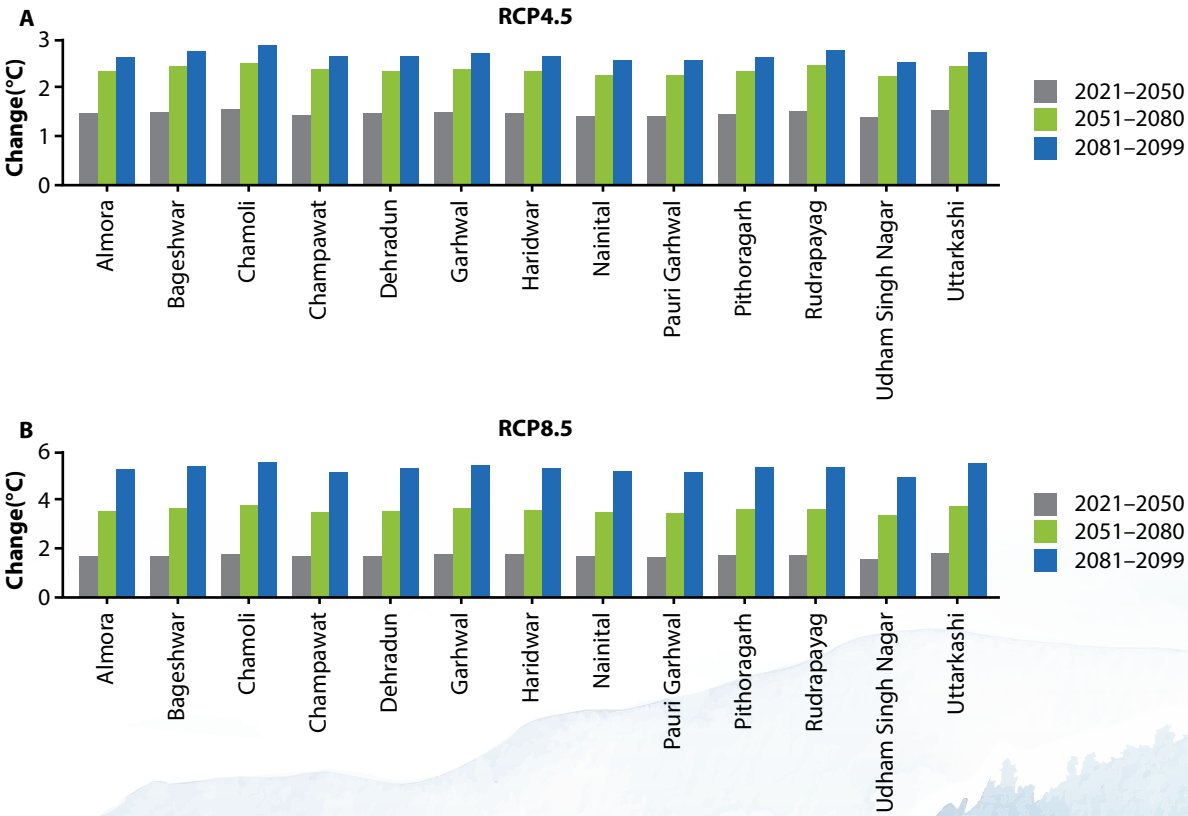

चित्र 26: बेसलाइन के संदर्भ में उत्तराखंड के जिलों में वार्षिक अधिकतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन

आरसीपी 4.5 या आरसीपी 8.5 के अंतर्गत उत्तराखंड के समस्त जिलों में वार्षिक अधिकतम तापमान में समस्त ऋतुओं के दौरान वृद्धि पूर्वानुमानित है (देखें चित्र 25)। आरसीपी4.5 में, औसत वार्षिक अधिकतम तापमान में निकट-भविष्य में 1.6° से., मध्यम-भविष्य में 2.4° से. और सुदूर-भविष्य में 2.7° से. वृद्धि पूर्वानुमानित है; जबकि आरसीपी 8.5 के लिए तापमान क्रमशः 1.9° से., 3.8° से. और 5.3° से. हैं। आरसीपी 4.5 के लिए मानसून पूर्व ऋतु (मार्च-अप्रैल-मई) और शीतकालीन ऋतु (दिसम्बर-जनवरी-फरवरी) के दौरान पूर्वानुमानित परिवर्तन अधिकतम हैं, जबकि आरसीपी8.5 के लिए यह अन्य ऋतुओं की तुलना में पूर्व-मानसून (मार्च-अप्रैल-मई) ऋतु के दौरान पूर्वानुमानित है।

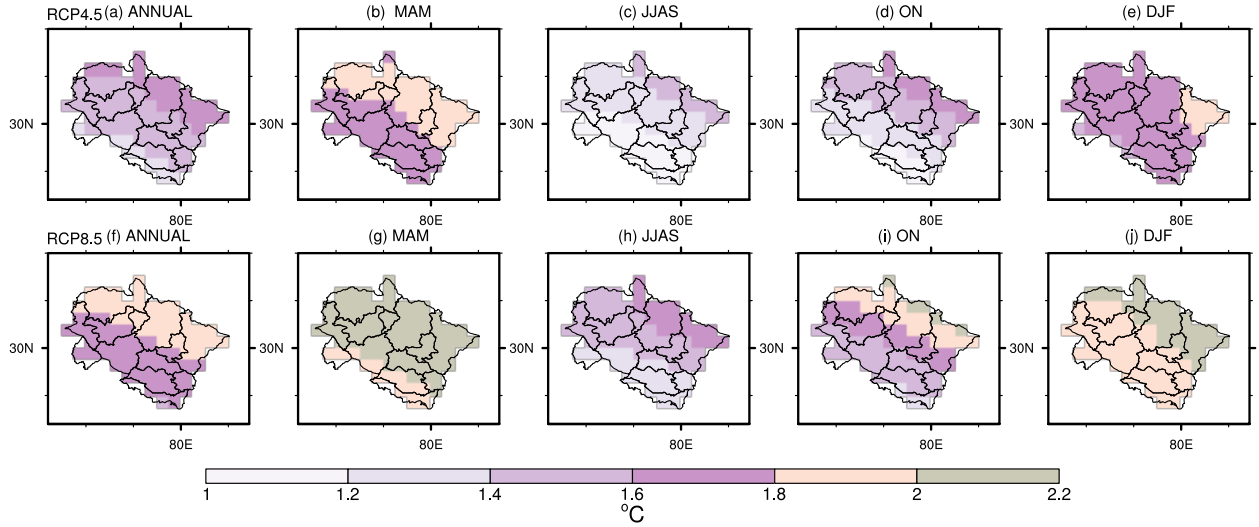

चित्र 27: बेसलाइन 1971–2005 के संदर्भ में उत्तराखंड में 2021–2050 में अधिकतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन

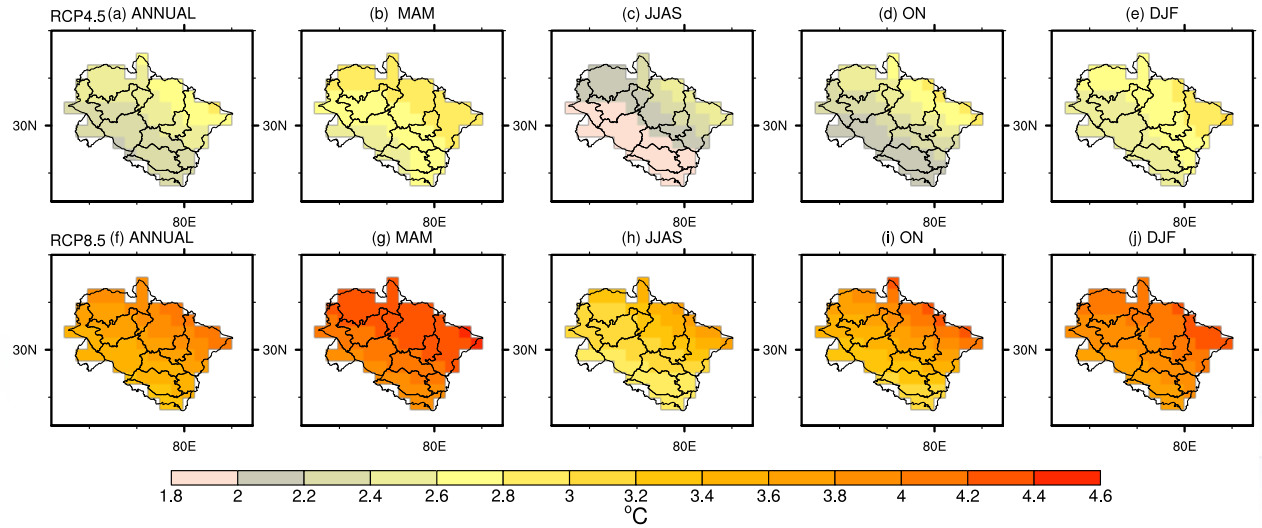

चित्र 28: बेसलाइन 1971–2005 के संदर्भ में उत्तराखंड में 2051-2080 में अधिकतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन

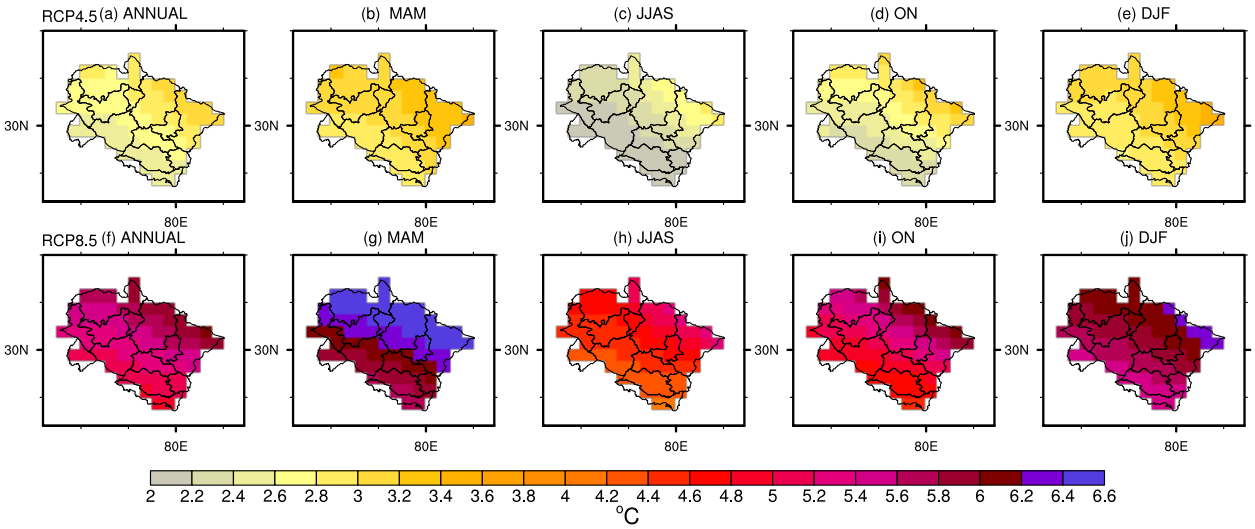

चित्र 29: बेसलाइन 1971–2005 के संदर्भ में उत्तराखंड में 2081-2099 में अधिकतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन

दोनों परिदृश्यों के अंतर्गत, पूरे उत्तराखंड में समस्त ऋतुओं में वार्षिक न्यूनतम तापमान में वृद्धि पूर्वानुमानित है, जैसा कि चित्र 30 में दिखाया गया है। वार्षिक न्यूनतम तापमान में जिला-वार पूर्वानुमानित परिवर्तन चित्र 31 में प्रस्तुत किए गए हैं। उत्तराखंड राज्य के लिए

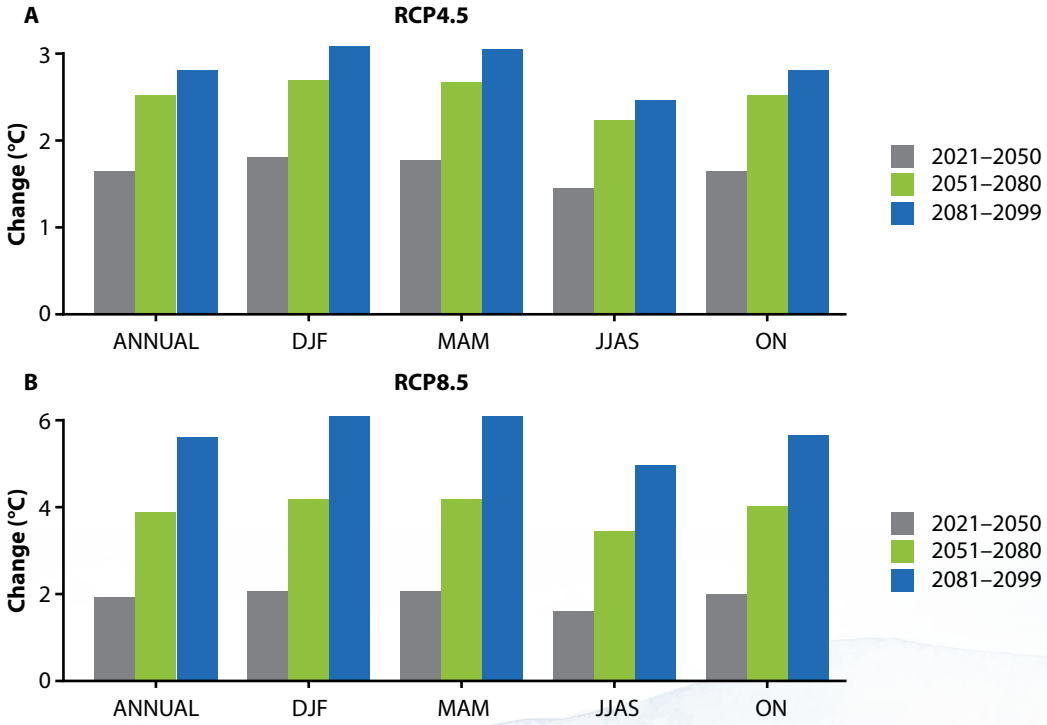

चित्र 30: बेसलाइन अवधि (1971–2005) के संदर्भ में, उत्तराखंड राज्य में वार्षिक और मौसमी न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित निकट-भविष्य (2021–2050), मध्यम-भविष्य (2051–2080) और सुदूर-भविष्य (2081–2099) परिवर्तन

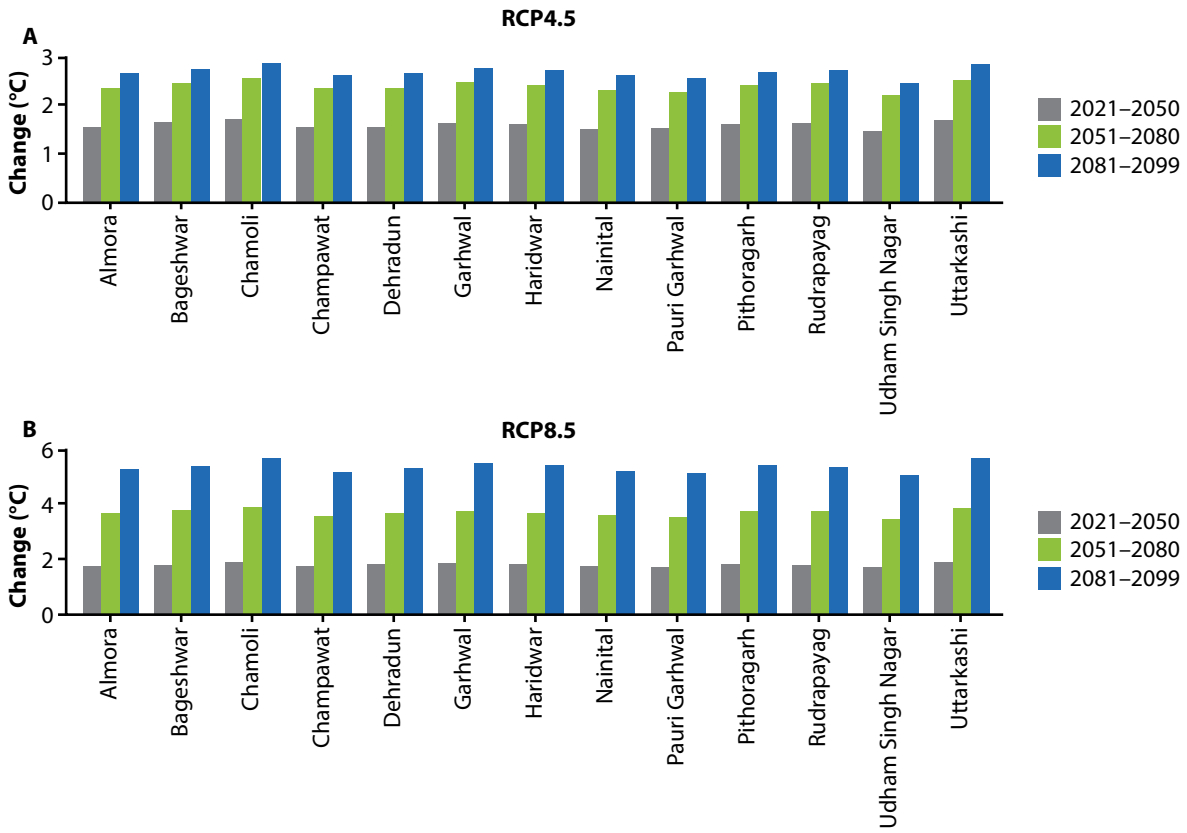

चित्र 31: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में उत्तराखंड के जिलो में वार्षिक न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन

निकट-भविष्य, मध्यम-भविष्य और सुदूर-भविष्य हेतु प्राक्कलित अधिकतम मौसमी और वार्षिक तापमानों में पूर्वानुमानित परिवर्तनों का स्थानिक निरूपण, क्रमशः चित्रों 32, 33 और 34 में दर्शाया गया है। न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन परिशिष्ट 4 में दिए गए हैं।

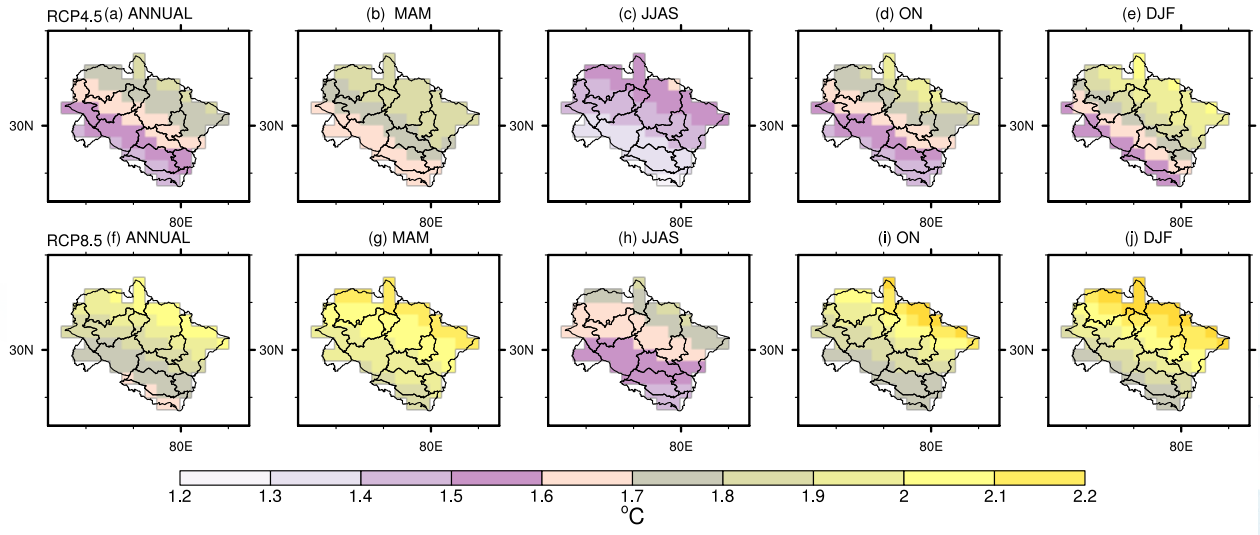

चित्र 32: बेसलाइन 1971–2005 के संदर्भ में उत्तराखंड में 2021–2050 में न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन

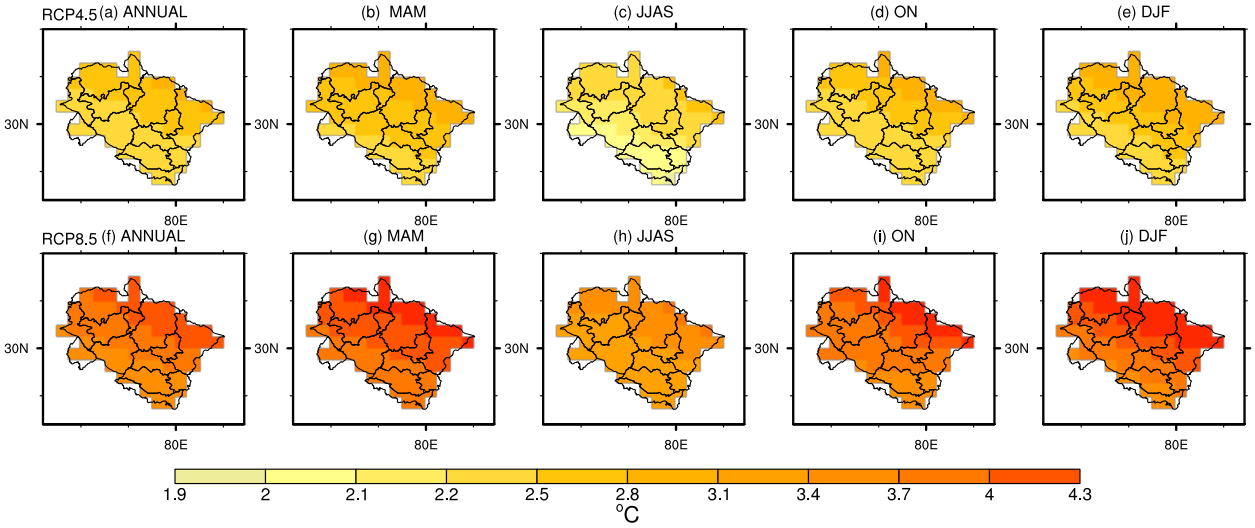

चित्र 33: बेसलाइन 1971–2005 के संदर्भ में उत्तराखंड में 2051-2080 में न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन

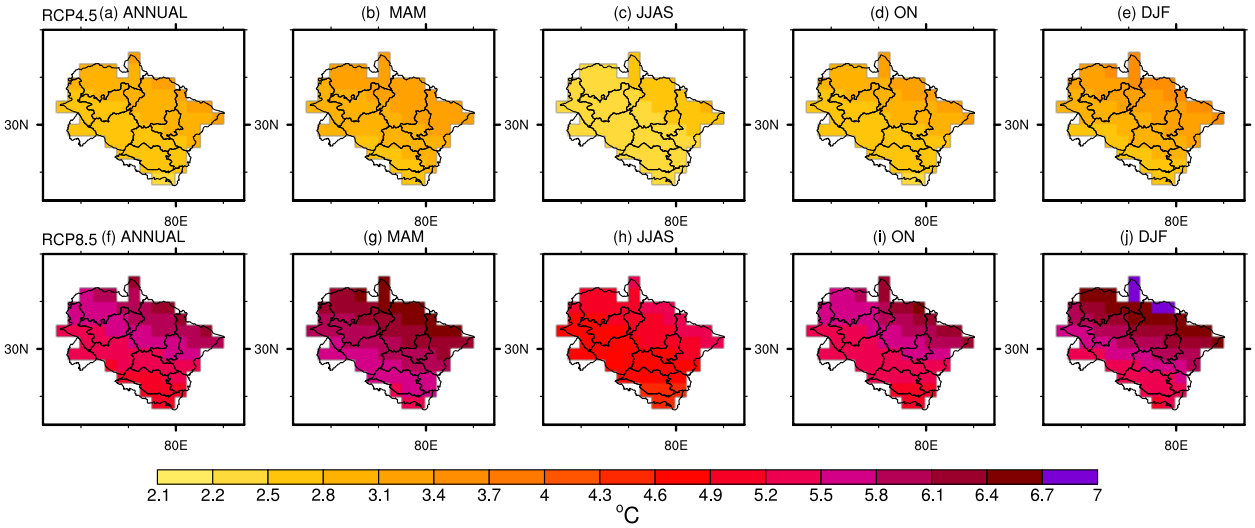

चित्र 34: बेसलाइन 1971–2005 के संदर्भ में उत्तराखंड में 2081-2099 में न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन

आरसीपी4.5 के अंतर्गत उत्तराखंड में औसत वार्षिक न्यूनतम तापमान में निकट-भविष्य में लगभग 1.5° से., मध्यम-भविष्य में लगभग 2.4° से. और सुदूर-भविष्य में लगभग 2.7° से. की वृद्धि पूर्वानुमानित है। तुलनात्मक रूप से, आरसीपी8.5 निकट-भविष्य में लगभग 1.8° से., मध्यम-भविष्य में लगभग 3.7° से. और सुदूर-भविष्य में लगभग 5.2° से. वृद्धि पूर्वानुमानित करता है (देखें चित्र 30)। न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन, दोनों परिदृश्यों के लिए सभी जिलों में अपेक्षाकृत कम विभिन्नता/अंतर दर्शाते हैं (देखें चित्र 31)। हालाँकि, अन्य जिलों की अपेक्षा उत्तरी जिले, न्यूनतम तापमान में अपेक्षाकृत अधिक पूर्वानुमानित परिवर्तन दर्शाते हैं। सर्वाधिक न्यूनतम तापमान वृद्धियां, वसंत और शरद की तुलना में शीतकालीन ऋतु (दिसम्बर से फरवरी) और मानसून ऋतु (जून से सितम्बर) के लिए पूर्वानुमानित हैं।

3.3 मानसून

दो मानसून ऋतुएं, भारतीय जलवायु की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता हैं। मई के महीने में गर्मी के दौरान तीक्ष्ण ऊष्मा, भूभाग को गर्म कर देती है। गर्म भूभाग से उठती गर्म हवा, भारत पर एक निम्न दाब वाला क्षेत्र बनाती है, जो इसे घेरने वाले महासागरों से नम पवनों को आकृष्ट करता है। ये पवनें, दक्षिण-पश्चिम दिशा में चलती हैं जो दक्षिणी-पश्चिमी या भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून (आईएसएम) कहलाती हैं। उपमहाद्वीप में अधिकांश वर्षा, ग्रीष्मकालीन मानसून (जून से सितम्बर) के दौरान होती है, जबकि देश के दक्षिणी-पूर्वी भाग में शीतकालीन मानसून (नवम्बर और दिसम्बर) के दौरान वर्षा होती है। इस दक्षिणी-पश्चिमी प्रवाह के लिए आवश्यक तापमान में अतर केवल सतह पर ही नहीं रहता, बल्कि हिमालय और तिब्बत के पठार में अधिक ऊंचाइयों पर भूपृष्ठीय तापन के कारण क्षोभमंडल में काफी ऊंचाई तक रहता है। ये उन्नत क्षेत्र एक अवरोधक की भांति भी कार्य करते हुए आर्द्र पवनों को उत्तर में आगे बढ़ने से रोक देते हैं, जिससे भारत में मानसून की बारिश होती है। भारत में अधिकांश कृषि गतिविधियां, इन्हीं मानसून बरसातों पर निर्भर हैं। उदाहरण के लिए, दो मानसूनों के आगमन और वापसी, फसल ऋतु को निर्धारित करते हैं। भारत अभी भी प्रमुख रूप से एक कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है और चूंकि अधिकांश क्षेत्रों में यहां की कृषि वर्षा-सिंचित है, इसलिए देश का सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) मानसूनी बरसात पर अत्यधिक निर्भर है। उत्तराखंड में, पहाड़ी कृषि 'अधिकांशतः निर्वाह प्रकार की, वर्षा-सिंचित कृषि है और यह अच्छी उपज के लिए उपयुक्त मौसम पर निर्भर है' (Planning Commission, GU, 2017, p. 51)। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, राज्य की 70% जनसंख्या कृषि और सहायक गतिविधियों पर निर्भर है, (Planning Commission, GU, 2017, p. 51), इसलिए मानसून के दौरान विश्वसनीय वर्षा, सम्पूर्ण खेती आधारित अर्थव्यवस्था के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

ग्रीष्मकालीन मानसून का आगमन और वापसी

मानसून का देर से या जल्दी आगमन और वापसी, मानसून ऋतु के दौरान, वर्ष में सामान्य औसत वार्षिक वर्षा होने के बावजूद कृषि पर विनाशकारी प्रभाव डाल सकती है। उदाहरण के लिए, मानसून के जल्दी आगमन से फसलें, बाढ़ का शिकार हो सकती हैं (Goswami et al., 2010; Wang et al., 2009)। भारत से मानसूनों की वापसी के हाल के रूझानों से, दीर्घकालीन औसत के सापेक्ष विलंब प्रदर्शित होता है। यह खरीफ की फसलों की कटाई स्थगित करा सकता है। जलवायु परिवर्तन, चरम वर्षा वाली घटनाओं की संभावना बढ़ाता है। यदि वापसी के समय ऐसा होता है तो कटाई के लिए तैयार या काटने और उठाने की प्रक्रिया के दौरान फसलों को काफी नुकसान पहुंचने की संभावना रहती है। मानसून से पहले हिमालय-तिब्बत का पठार तेजी से गर्म होता है, जबकि हिंद महासागर अपेक्षाकृत ठंडा बना रहता है। क्षोभमंडल के तापमानों के विश्लेषण से हिमालयी-गंगा क्षेत्र में तापन का पता चलता है, जिससे स्थल-महासागर के तापमान के बीच प्रबल अंतर उत्पन्न हो सकता है। हिमालय की तलहटी में एयरोसोल, स्थल और महासागर के बीच अधिक उल्लेखनीय ताप अंतर उत्पन्न कर सकते हैं, जिससे मानसून का आगमन जल्दी हो सकता है (Turner and Annamalai, 2012)।

उत्तराखंड में मानसूनी वर्षा और इसे प्रभावित करने वाले कारक

उत्तराखंड में समुद्रतल से 175 मी से लेकर 7000 मी तक की उन्नत ऊंचाई सीमा (Banerjee et al., 2019) के परिणामस्वरूप जटिल वर्षा पैटर्न बनते हैं जो भविष्य में वर्षा के रूझानों और विभिन्नता के पूर्वानुमानों में कठिनाई उत्पन्न करते हैं (Palazzi et al., 2013)। विविध अध्ययन रिपोर्टों के अनुसार पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में मौसम केंद्रों की अपर्याप्त संख्या, कम गुणवत्ता वाले डाटा और मान छूट जाने की समस्या को और बढ़ा देती है (Palazzi et al., 2013; Singh et al. 2014, Das and Meher, 2019)। अतएव, स्टेशनों के परिणामों की तुलना वैश्विक पैमाने के सिम्युलेशनों के परिणामों से करते हुए, भावी जलवायु परिदृश्यों के अवलोकित रूझानों और पूर्वानुमानों के लेखांकन की सावधानीपूर्वक पड़ताल की जानी चाहिए। सामान्यतः दक्षिण-पश्चिम मानसून या आईएसएम वार्षिक वर्षा में अधिकांश योगदान करता है जो उत्तराखंड में लगभग 80% वर्षा कराता है (Banerjee et al., 2019)। शीतऋतु के दौरान भूमध्यसागर में उत्पन्न होने वाले पश्चिमी विक्षोभों के कारण भी राज्य में वर्षा होती है। पश्चिमी हिमालय में मानसूनी वर्षा की मात्रा, पश्चिमी तट, मध्य और उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों की तुलना में कम रहती है। उत्तराखंड राज्य में, बनर्जी एट अल. (2019) यह दर्शाता है कि पूर्वी क्षेत्रों में अधिकांश मानसूनी वर्षा होती

है, जिसके बाद देहरादून शहर और अन्य निकटवर्ती क्षेत्रों का स्थान है। उन्होंने यह भी उल्लेखित किया है कि राज्य के पूर्वी भाग में वर्षा की विभिन्नता इसके पश्चिमी और मध्य भागों की अपेक्षा अधिक है। हालाँकि, देहरादून, जो कि पश्चिमी ओर स्थित है, में भी मानसून के दौरान वर्षा में काफी विभिन्नता प्रदर्शित होती है। मानसूनी ऋतु के दौरान तूफानी बारिश और बादल फटने की घटनाएं नियमित रूप से होती हैं (Das and Meher, 2019)। ये घटनाएं भारी वर्षा और बाढ़ों से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं।

पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में वर्षा को प्रभावित करने वाले विविध कारक। सिंह एट अल. (2014) का मत है कि वर्षा विभिन्नता और पातन (वर्षण) की मात्रा, ऊंचाई बढ़ने के साथ कम होती जाती है। हालाँकि, बनर्जी एट अल. (2019) का अवलोकन है कि वर्षा केवल एक निश्चित ऊंचाई (3100 मी) तक घटती है, जिसके पश्चात ऊंचाई के साथ वर्षा में फिर से वृद्धि होने लगती है। उत्तराखंड में प्रायः चरम वर्षा वाली घटनाएं भी होती हैं (Das and Meher, 2019; Das et al., 2006)। हाल के दशकों में तीव्र शहरीकरण और औद्योगीकरण द्वारा उत्पन्न एयरोसोल[24] भी, सतह पर पहुंचने वाले विकिरण और हवा के तापमान में परिवर्तन करते हुए, इस क्षेत्र में मानसूनी वर्षा को प्रभावित करते हैं (Das and Meher, 2019; Turner and Anna malai, 2012)। मानसून के आरंभिक चरण में एयरोसोल के कारण बनने वाले बादलों के परिणामस्वरूप आरंभिक मानसूनी वर्षा होती है, किन्तु मानसून ऋतु के अंत में वर्षा कम भी हो जाती है (Das and Meher, 2019)। हालाँकि, वर्तमान रूझानों और भावी विकास पर एयरोसोल के सटीक प्रभाव अभी अनिश्चित हैं (Turner and Annamalai, 2012)। कुमार और जसवाल (2016) ने पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में मानसूनी वर्षा पर उत्तरी अटलांटिक दोलन (एनएओ) और अल नीनो-दक्षिणी दोलन (ईएनएसओ) का प्रभाव दर्शाया है। उदाहरण के लिए, ईएनएसओ का धनात्मक चरण और एनएओ का ऋणात्मक चरण मानसूनी वर्षा के अनुकूल होते हैं जबकि इनकी विपरीत प्रावस्थाएं, प्रतिकूल सिद्ध होती हैं (Dugam, 2008)।

स्टेशन डाटा से वर्तमान रूझान

सामान्यतः पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र पर मानसूनी पातन (वर्षण) का रूझान घटोत्तरी प्रदर्शित करता है। मेहर एट अल. (2018) ने 1901–2005 की अवधि में पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र पर मानसूनी पातन (वर्षण) का ऋणात्मक रूझान सूचित किया है। कुमार और जसवाल (2016) ने पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र हेतु 1857–2006 की अवधि के लिए मासिक पातन (वर्षण) में कमी प्रदर्शित की है, जिसमें 1957–2006 की अवधि में हुई कमी सर्वाधिक उल्लेखनीय है। विविध लेखकों ने मानसून पातन (वर्षण) के इस घटते रूझान का कारण हिंद महासागर और तिब्बत के पठार के बीच तापीय विपर्यास के कम होने (Duan et al., 2006), एयरोसोल्स के कारण क्षेत्रीय मानसून संचरण के कम होने (Ramanathan et al., 2005) और उत्तरी अटलांटिक दोलन और दक्षिणी दोलन के कमज़ोर प्रभाव (Kumar and Jaswal, 2016) को बताया है। सिंह एट अल. (2014), ने उत्तराखंड में तेरह पृष्ठीय प्रेक्षण केंद्रों (स्टेशनों) से मासिक वर्षा के पाठ्यांकों (आंकड़ों) का उपयोग करके दर्शाया है कि मानसूनी वर्षा के सुसंगत/नियमित स्थानिक पैटर्न नहीं हैं। देहरादून में कम ऊंचाई वाला स्टेशन, 1978 से 2007 के बीच धनात्मक रूझान दर्शाता है, जबकि रूड़की में कम ऊंचाई वाले स्टेशन ने कोई विशेष रूझान दर्ज नहीं किया है। अधिक ऊंचाई वाले स्टेशन भी उल्लेखनीय रूझान नहीं दर्शाते, सिवाय जोशीमठ के, जिसने मानसूनी वर्षा में उल्लेखनीय ऋणात्मक रूझान दर्ज किया है। इसके अलावा, अध्ययनों से पता चला है कि अन्य ऋतुओं के अपेक्षा मानसून ऋतु में सभी स्टेशनों पर वर्षा विभिन्नता कम पाई गई है। बनर्जी एट अल. (2019) ने उत्तराखंड में मानसूनी वर्षा के वर्तमान रूझानों की विवेचना की और मुनस्यारी क्षेत्र को अधिक वर्षा के लिए उच्च असुरक्षित बताया। उन्होंने पूर्व में, पश्चिम के कुछ क्षेत्रों में और मध्य उत्तराखंड में वर्षा का बढ़ता रूझान भी प्रदर्शित किया। हालाँकि, लेखकों ने उत्तरी-मध्य और दक्षिणी-मध्य क्षेत्रों में वर्षा के घटते रूझान अवलोकित किए।

[24] प्रकीर्णित एयरोसोल, सूर्य से आने वाले विकिरण को परावर्तित करके सतह का तापमान कम कर देते हैं। अवशोषक एयरोसोल, विकिरण को अवशोषित करते हैं और वातावरण को गर्म कर देते हैं।

अपेक्षित रूझानों और अवलोकनों के बीच विपर्यास

यद्यपि मानसूनी वर्षा में विगत कुछ दशकों में वृद्धि अनुमानित थी, लेकिन भारत के अनेक क्षेत्रों में वर्षा के अवलोकनों में वर्षा में वृद्धि नहीं पाई गई। वैश्विक तापन के अंतर्गत, स्थलीय-समुद्री तापमान विपर्यास, जो कि मानसून की प्रबलता को निर्धारित करता है, इसमें वृद्धि का अनुमान है और इससे पातन (वर्षण) में बढ़ोत्तरी होगी (Chou, 2003; Sutton et al., 2007)। इसके अलावा, विगत पचास वर्षों के दौरान हिंद-प्रशांत महासागर पहले से ही अपेक्षाकृत अधिक गर्म हुए हैं (Knutson et al., 2006), जिससे उपमहाद्वीप में नमी की मात्रा बढ़ने की अपेक्षा की जा सकती है। हालाँकि, मानसूनी वर्षा में वृद्धि की इस संभावना के बावजूद अवलोकन दिखाते हैं कि पूरी मानसूनी ऋतु के दौरान केवल जून के महीने में पहले से अधिक वर्षा हो रही है। जुलाई, अगस्त और सितम्बर के लिए रूझान वास्तव में वर्षा में गिरावट दर्शाते हैं। यह गिरावट, भारत के बड़े पश्चिमी क्षेत्र में भी स्पष्ट है (Pattanaik, 2007)। 1901–2012 के दौरान भारत के अनेक क्षेत्रों में मानसूनी वर्षा का महत्त्वपूर्ण घटोत्तरी का रूझान रहा है। कई अवलोकित डाटासेटों के उपयोग वाले एक अध्ययन में, इस अवधि के दौरान पश्चिमी घाट के दक्षिण में तथा भारत के मध्य-पूर्व और उत्तरी क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन मानसूनी पातन (वर्षण) में उल्लेखनीय गिरावट का रूझान देखा गया। (Roxy et al., 2015)। लेखक, इस अपेक्षाकृत दुर्बल मानसून का संबंध घटती स्थलीय-सामुद्रिक तापीय प्रवणता से जोड़ते हैं, जहां हिंद महासागर का त्वरित तापन तथा उपमहाद्वीप का अपेक्षाकृत कम तापन, उनके तापमान स्तरों को अधिक निकट लाता है। भारत के तीस मौसमी उपसंभागों से संकलित 1871 से 2005 तक के दीर्घकालीन ग्रीष्मकालीन मानसूनी वर्षा डाटा का जून से सितम्बर तक के महीनों हेतु अध्ययन किया गया। (Naidu et al., 2009)। 1970 से 2005 तक की अवधि के लिए, उनमें वर्षा हेतु एक ऋणात्मक रूझान (पहले की अपेक्षा कम वर्षा) प्रदर्शित हुआ जो प्रमुख रूप से अधिकांश उपसंभागों में, विशेषकर 20° एन के उत्तर में पाया गया, जिसमें पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र शामिल है।

पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र के अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में मानसून के दौरान भारी वर्षा वाली अधिक घटनाएं होती हैं, जिनसे कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों में बाढ़ें आती हैं (Sen, 2009)। इसमें यह भी इंगित किया गया कि ग्रीष्मकालीन महीनों के साक्ष्य के बावजूद क्षेत्र में तापन, शीत ऋतु के दौरान चरम वर्षा की मात्रा में वृद्धि कर सकता है (Meher et al., 2018)। 1957–2007 तक स्टेशन डाटा का उपयोग करते हुए, सिंह एट अल., (2014) ने रिपोर्ट की कि उत्तराखंड में मानसूनी वर्षा में, अधिक ऊंचाई वाले भागों में कमी और निम्न ऊंचाई वाले भागों में वृद्धि हुई है। हालाँकि, ये रूझान सभी स्टेशनों के लिए एकसमान नहीं हैं।

कपल्ड जनरल सर्कुलेशन मॉडलों/युग्मित सामान्य संचरण मॉडलों (सीजीसीएम) के उपयोग वाले अध्ययनों में दक्षिण एशिया में उच्चतर वर्षा प्रदर्शित की गई है लेकिन पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में नहीं प्रदर्शित की गई है (Turner and Annamalai, 2012)। अधिक मानसूनी वर्षा, अधिक उष्ण हिंद महासागर पर उच्चतर वायुमंडलीय नमी की मात्रा का परिणाम है (Douville et al., 2000)। युग्मित मॉडल अंतर तुलना परियोजना/कपल्ड मॉडल इंटर कम्पैरिजन प्रोजेक्ट (सीएमआईपी3) द्वारा विकसित मॉडल कमज़ोर मानसूनी संचरण के बावजूद दक्षिण एशियाई मानसूनी वर्षा में वृद्धि दर्शाते हैं (Ueda et al., 2006)। हालांकि एक बहु मॉडल माध्य अध्ययन में पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में अधिक वर्षा का पूर्वानुमान किया गया है, लेकिन यह रूझान उल्लेखनीय नहीं है (Turner and Annamalai, 2012)।

क्षेत्रीय पैमाने के मॉडल भी विरोधभासी रूझान दर्शाते हैं। हाल के दशकों में तीव्र शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण दक्षिण एशिया में एयरोसोल मात्रा में वृद्धि देखी गई है (Bond et al., 2013; Menon et al., 2002) जिससे सतह पर पहुंचने वाली धूप में कमी आई है। यह इसे स्पष्ट कर सकता है कि वैश्विक तापन के बावजूद पूरे भारत में मौसमी माध्य वर्षा में वृद्धि क्यों नहीं देखी गई है। पश्चिमी हिमालयी जलवायु को प्रभावित करने वाले कारकों की दास और मेहर (2019) द्वारा समीक्षा, पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में मानसूनों पर एयरोसोल के प्रभाव पर वर्तमान बहस दर्शाती है। मेहर का अवलोकन है कि सीएमआईपी3 और सीएमआईपी5 जीसीएम[25] पातन (वर्षण) के अल्पकालीन और दीर्घकालीन रूझानों को दर्शाने में विफल हैं (Meher et al., 2017)। लेखकों ने यह भी सूचित किया है कि अधिकांश जीसीएम, पातन (वर्षण) के दीर्घकालीन पैटर्न प्रस्तुत करने में विफल रहे हैं।

[25] इस अनुभाग में जीसीएम का अर्थ वैश्विक जलवायु मॉडलों से है।

क्षेत्रीय पैमाने वाले मॉडलों के उपयोग द्वारा मानसून के पूर्वानुमान

बनर्जी एट अल. (2019) द्वारा उत्तराखंड में क्षेत्रीय औसत पातन (वर्षण) का विश्लेषण, ऐतिहासिक डाटा के उपयोग द्वारा वर्षा के बढ़ते रूझान दर्शाता है। वे आरसीपी2.6 और आरसीपी4.5 के लिए स्थिर पातन (वर्षण) रूझान दर्शाते हैं। हालाँकि, वे आरसीपी8.5 के लिए वर्षा के उल्लेखनीय घटते रूझानों का पूर्वानुमान करते हैं। कॉर्डेक्स (CORDEX) सिम्युलेशनों से क्षेत्रीय लघुकृत पूर्वानुमानों पर आधारित, उत्तराखंड सरकार की जलवायु परिवर्तन कार्ययोजना (GU, 2014) के अनुसार, मानसून के लिए निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं: 1) मानसून ऋतु के दौरान उत्तराखंड के उत्तरी भागों में दक्षिणी भागों की अपेक्षाकृत कम वर्षा होगी; 2) विभिन्न आरसीपी परिदृश्यों के लिए, ऐतिहासिक बेसलाइन केस की तुलना में मध्य-शताब्दी में उत्तर के कुछ जिलों में वर्षा में वृद्धि जबकि दक्षिणी जिलों में वर्षा में कमी प्रदर्शित होगी; 3) आईपीसीसी एआर5 आरसीपी4.5 परिदृश्य के अंतर्गत मानसून ऋतु के लिए सर्वाधिक वर्षा वृद्धि मध्य-शताब्दी के लिए और शताब्दी के अंत के लिए पूर्वानुमानित है।

कमियां/अंतराल

अवलोकित पातन (वर्षण) के जलवायुवैज्ञानिक पैटर्नों और रूझानों को उत्पन्न करने में अनेक जीसीएम मॉडलों की विफलता, उत्तराखंड में मानसून रूझानों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए क्षेत्रीय पैमाने वाले मॉडलों की आवश्यकता दर्शाती है। पलाजी एट अल. (2015) ने क्षेत्रीय दशाओं जैसे कि उन्नयन के पैटर्नों, पर्वतीय उत्थापन आदि को निरूपित करने में जीसीएम की अक्षमता के बारे में सूचित किया है (Palazzi et al., 2015)। हालाँकि, कम रेजोल्यूशन वाले कुछ विशेष जीसीएम उच्च रेजोल्यूशन वाले मॉडलों से बेहतर प्रदर्शन में सक्षम रहे (मेहर एट अल., 2017)। स्पर्बर एट अल. (2013) ने सूचित किया है कि सीएमआईपी5 मॉडलों ने हिमालय की तलहटी में वर्षा के पैटर्न सिम्युलेट करने के मामले में सीएमआईपी3 मॉडलों की अपेक्षा बेहतर प्रदर्शन किया। ऐसे मॉडलों को उत्तराखंड में पातन (वर्षण) के पैटर्नों और रूझानों पर बड़े पैमाने के बलों (ईएनएसओ, एनएओ, एसओ, आदि) के प्रभावों का विश्लेषण करने के लिए और मॉडलों को लघुकृत करने के लिए उपयोग किया जाना चाहिए। यह समझना भी महत्त्वपूर्ण है कि किस तरह से विभिन्न प्रकार के एयरोसोल, उत्तराखंड में पातन (वर्षण) के पैटर्नों को प्रभावित करते हैं। चूंकि स्टेशन डाटा में ऐतिहासिक रूझानों के लिए स्थायी पैटर्न प्रदर्शित नहीं होते, इसलिए राज्य को अपने मौसमविज्ञान केंद्रों (स्टेशनों) की संख्या और विश्वसनीयता में सुधार करने की आवश्यकता है। बनर्जी एट अल. (2019) ने इंगित किया है कि आईएमडी डाटासेट विश्वसनीय नहीं है क्योंकि इसका स्टेशन इंटरपोलेटेड है। क्षेत्रीय पैमाने वाले मॉडलों से परिणामों का सत्यापन करने के लिए, अधिक अवलोकन अनिवार्य हैं। इसके अतिरिक्त, चूंकि मानसून के दौरान चरम वर्षा वाली घटनाओं में वृद्धि हुई है, इसलिए उत्तराखंड की जटिल स्थलाकृति पर इनके प्रभावों की पड़ताल की जानी चाहिए। विशेषकर पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में मौसमी दशाओं का सूक्ष्म पैमाने पर समग्र अध्ययन नहीं किया गया है, इसलिए इस क्षेत्र में मानसूनी पातन (वर्षण) के रूझानों को अभी पर्याप्त रूप से समझा जाना शेष है (फाउलर और आर्चर, 2006)।

3.4 चरम मौसम घटनाएं

जलवायु-संवेदी क्षेत्रों जैसे कि कृषि, वानिकी और पर्यटन पर उत्तराखंड की सामाजिक-आर्थिक निर्भरता, इसे जलवायु आघातों के प्रति अत्यधिक असुरक्षित बनाती है (GU, 2014; INRM, 2016a)। हिमालय में चरम मौसम वाली घटनाओं – बादल फटने के कारण भारी पातन (वर्षण), तीव्र बाढ़ें और हिमस्खलन – के बढ़ जाने के कारण मानव जीवन और राज्य की अर्थव्यवस्था विपरीत रूप से प्रभावित हो रहे हैं (Kumar et al., 2018)। उत्तराखंड में 1816 से चरम मौसम वाली अनेक घटनाएं हुई हैं, लेकिन 1970 के बाद से ऐसी घटनाओं की तीव्रता और आवृत्ति में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है (Pandey and Mishra, 2015)। ये घटनाएं न केवल गंभीर आर्थिक क्षति पहुंचाती हैं बल्कि इनके कारण हजारों की जनहानि भी होती है।

ऐतिहासिक जलवायु चरम सूचकांक[26]

उत्तराखंड राज्य के लिए हाल के दशकों में विविध जलवायु चरम सूचकांकों का विश्लेषण किया गया है (INRM, 2016b; Ca et al., 2018)। ये सूचकांक दैनिक पातन (वर्षण) योग तथा दैनिक अधिकतम और न्यूनतम तापमानों पर आधारित हैं। ये जोखिमों की निगरानी करने और समय के साथ जलवायु चरम की घटनाओं के होने में बदलावों का जैसे कि सर्वाधिक दैनिक और मासिक वर्षा योग में परिवर्तन या लू चलने की तीव्रता और अवधि में परिवर्तन का मापन करने में मदद करते हैं। इस रिपोर्ट में समीक्षित जलवायु चरम सूचकांकों का विवरण तालिका 6 में दिया गया है।

तालिका 6: समीक्षा किए गए, जलवायु चरम सूचकों के विवरण

विवरणात्मक नाम	परिभाषा	मात्रक
एक दिन में अधिकतम पातन (वर्षण)	एक दिन की अवधि में सर्वाधिक पातन (वर्षण) मात्रा	मिमी
पांच दिन में अधिकतम पातन (वर्षण)	पांच दिन की अवधि में सर्वाधिक पातन (वर्षण) मात्रा	मिमी
क्रमिक शुष्क दिन	एक शुष्क काल की अधिकतम अवधि (1 मिमी से कम पातन (वर्षण) वाले क्रमिक दिन)	दिनों
क्रमिक आर्द्र दिन	क्रमिक आर्द्र दिनों की अधिकतम संख्या	दिनों
भारी पातन (वर्षण) वाले दिन	बेसलाइन के >90 प्रतिशत से अधिक पातन (वर्षण) वाले दिनों की संख्या[27]	दिनों
बहुत अधिक पातन (वर्षण) वाले दिन	बेसलाइन के >99 प्रतिशत से अधिक पातन (वर्षण) वाले दिनों की संख्या[28]	दिनों
उष्ण काल अवधि संकेतक	वर्ष में ऐसे दिनों की संख्या जब कम से कम छह क्रमिक दिनों में अधिकतम तापमान, बेस अवधि अधिकतम तापमान का > 90 प्रतिशत रहा हो	दिनों
उष्ण दिन	ऐसे दिनों का प्रतिशत जब अधिकतम तापमान बेसलाइन के > 90 प्रतिशत रहा हो[29]	दिनों
अधिक उष्ण दिन	ऐसे दिनों का प्रतिशत जब अधिकतम तापमान बेसलाइन के > 95 प्रतिशत रहा हो[30]	दिनों
शीत काल अवधि संकेतक	वर्ष में ऐसे दिनों की संख्या जब कम से कम छह क्रमिक दिनों में न्यूनतम तापमान, बेस अवधि न्यूनकतम तापमान का < 10 प्रतिशत रहा हो	दिनों
दिन के समय अधिकतम तापमान	दिन के समय अधिकतम तापमान का मासिक अधिकतम मान	°से.
रात के समय अधिकतम तापमान	रात के समय अधिकतम तापमान का मासिक अधिकतम मान	°से.
दिन के समय न्यूनतम तापमान	दिन के समय अधिकतम तापमान का मासिक न्यूनतम मान	°से.
रात के समय न्यूनतम तापमान	दिन के समय न्यूनतम तापमान का मासिक न्यूनतम मान	°से.

[26] आईपीसीसी, 'चरम जलवायु या मौसमी घटना' या 'जलवायु चरम' को मौसम या जलवायु में अंतर के मान को चर के अवलोकित मानो की रेंज के ऊपरी (या निचले) सिरों के निकट एक सीमा मान के ऊपर (या नीचे) होने' के रूप में पारिभाषित करती हैं'(Field et al., 2012, p. 116)। इसके अतिरिक्त आईपीसीसी के अनुसार, 'चरम मौसम घटनाओं और चरम जलवायु घटनाओं के बीच विभेद परिशुद्ध नहीं है, बल्कि उनके विशिष्ट समय अवधि वाले पैमानों से संबंधित है: –एक चरम मौसम घटना प्रायः एक दिन से लेकर कुछ सप्ताह तक की समय सीमाओं में बदलते मौसम पैटर्नों से संबंधित होती है। एक चरम जलवायु घटना अपेक्षाकृत लंबी अवधि वाले पैमाने पर होती है। यह अनेक (चरम या गैर-चरम) मौसमी घटनाओं (उदाहरण के लिए, एक ऋतु के दौरान मध्यम निम्न - औसत वर्षायुक्त दिनों का संचय, जिससे संचित वर्षा अपने औसत से उल्लेखनीय रूप से कम रहती है और सूखे जैसी दशाएं होती हैं) का संचय हो सकती है (Field et al., 2012, p. 117)।

[27] 90 प्रतिशत वर्षा की घटना, ऐसी घटना होती है जिसमें पातन (वर्षण) की मात्रा, विश्लेषित अवधि हेतु समस्त वर्षा घटना मात्रा से कभी भी 90% से अधिक नहीं होती।

[28] 99 प्रतिशत वर्षा की घटना, ऐसी घटना होती है जिसमें पातन (वर्षण) की मात्रा, विश्लेषित अवधि हेतु समस्त वर्षा घटना मात्रा से कभी भी 99% से अधिक नहीं होती।

[29] 90 प्रतिशत तापमान की घटना, ऐसी घटना होती है जिसमें दैनिक तापमान, रिकॉर्ड की अवधि हेतु कभी भी 90 प्रतिशत से अधिक नहीं होता।

[30] 95 प्रतिशत तापमान की घटना, ऐसी घटना होती है जिसमें दैनिक तापमान, रिकॉर्ड की अवधि हेतु कभी भी 95 प्रतिशत से अधिक नहीं होता।

विवरणात्मक नाम	परिभाषा	मात्रक
ठंडी रातें	बेस अवधि से <10 प्रतिशत न्यूनतम तापमान वाले दिनों का वार्षिक प्रतिशत	%
ठंडे दिन	ऐसे दिनों का वार्षिक प्रतिशत जब अधिकतम तापमान बेस अवधि के < 10 प्रतिशत रहा हो	%

1951 से 2013 तक, उत्तरकाशी जिले में अधिकतम एक-दिन और पांच-दिन का अधिकतम पातन (वर्षण) एक महत्त्वपूर्ण धनात्मक रूझान दर्शाता है, जबकि देहरादून जिले में पांच दिन के अधिकतम पातन (वर्षण) में उल्लेखनीय गिरावट देखी गई है। अधिकांश जिलों में क्रमिक शुष्क दिनों की संख्या गैर-उल्लेखनीय रूप से बढ़ रही है और सभी जिलों में आर्द्र दिनों की संख्या उल्लेखनीय रूप से कम हो रही है (INRM, 2016a)। 10 मिमी या 20 मिमी से अधिक पातन (वर्षण) वाले दिनों की संख्या के मामले में भी उत्तराखंड के सभी जिलों में गिरावट का रूझान देखा गया है। चमोली और रूद्रप्रयाग आदि जिलों के लिए आर्द्र दिनों में औसत पातन (वर्षण) का उल्लेखनीय वृद्धिशील रूझान यह इंगित करता है कि वर्षा की तीव्रता, में अध्ययन अवधि के दौरान वृद्धि हुई है और इसी समय अवधि के लिए पौड़ी गढ़वाल और देहरादून आदि जिलों के लिए उल्लेखनीय कमी का रूझान अवलोकित किया गया है। इसके अलावा, पौड़ी गढ़वाल और नैनीताल जिले, मध्यम सूखों के प्रति सर्वाधिक असुरक्षित हैं, जबकि ऊधम सिंह नगर और बागेश्वर गंभीर सूखों के प्रति सर्वाधिक असुरक्षित हैं। ऊधम सिंह नगर और चम्पावत मध्यम बाढ़ों के प्रति सर्वाधिक असुरक्षित हैं (INRM, 2016b)।

उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों में अक्टूबर और जनवरी के दौरान चरम वर्षा दर्ज की गई जबकि मैदानी क्षेत्रों में जून से सितम्बर के मानसूनी महीनों के दौरान चरम वर्षा दर्ज की गई। 14–18 जून 2013 में बाढ़ की प्रमुख घटना जिस दौरान लगभग 6000 लोग मारे गए, गुमशुदा हो गए या मृत मान लिए गए, का मुख्य कारण बादल फटने की घटना तथा चौराबारी झील में ग्लेशियरों का तेज़ी से पिघलना था। चार दिन की चरम वर्षा के दौरान देहरादून में 370 मिमी/प्रतिदिन दर्ज की गई, जो सामान्य वार्षिक वर्षा का लगभग 27% थी (Nandargi et al., 2016)। जून में पहली बार इतनी भारी वर्षा की ऐसी घटना हुई थी।

भावी चरम घटनाओं के पूर्वानुमान

वर्षा

चूंकि वैश्विक जलवायु परिवर्तनों का क्षेत्रीय और स्थानीय स्तरों पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है, इसलिए एक सशक्त अनुकूलन रणनीति विकसित करने के लिए भावी जलवायु चरम घटनाओं का आकलन कणिकीय स्तर पर ही किया जाना चाहिए। **उत्तराखंड के सभी जिलों में भारी वर्षा की घटनाएं बढ़नी पूर्वानुमानित हैं,** जैसा कि चित्र 35 में दिखाया गया है। यद्यपि सर्वाधिक परिवर्तन सुदूर-भविष्य अवधि में पूर्वानुमानित किया गया है, लेकिन भारी वर्षा वाले दिनों की संख्या, आरसीपी4.5 की अपेक्षा आरसीपी8.5 में अधिक रहने का अनुमान है। रूद्रप्रयाग जिले में निकट-भविष्य, मध्यम-भविष्य और सुदूर-भविष्य परिदृश्यों के लिए क्रमशः 13%, 16% और 17% की वृद्धि के साथ भारी वर्षा वाले दिनो में सबसे बड़ी वृद्धि पूर्वानुमानित है। गढ़वाल जिले में बेसलाइन के 90 प्रतिशत से अधिक वर्षा वाले दिनों की संख्या में सबसे कम परिवर्तन पूर्वानुमानित हैं। उत्तराखंड के लिए भारी वर्षा वाली घटनाओं में पूर्वानुमानित वृद्धि चरम मौसम वाली घटनाओं की आवृत्ति में वैश्विक पूर्वानुमानित वृद्धि के समानांतर है। भारी वर्षा वाली घटनाओं में ऐसी वृद्धि तीव्र बाढ़ों का जोखिम बढ़ाती है (Trenberth, 2008), जिनके परिणामस्वरूप जन-धन की हानि होती है।

उत्तराखंड राज्य में सभी जिलों के लिए क्रमिक आर्द्र दिन भी अनुमानित हैं और यह विभिन्न जिलों के लिए मिश्रित व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। कुछ जिलों के लिए, यह दर्शाता है कि भविष्य में इसमें वृद्धि होगी जबकि कुछ जिलों में घटोत्तरी प्रदर्शित है, जैसा कि चित्र 36 में दिया गया है जो बेसलाइन अवधि 1971–2005 के संदर्भ में निकट-भविष्य, मध्यम-भविष्य और सुदूर-भविष्य अवधियों में क्रमिक आर्द्र दिनों की अधिकतम संख्या में परिवर्तन दर्शाता है। आर्द्र दिनों को 1 मिमी से अधिक वर्षा वाले दिनों की संख्या के रूप में पारिभाषित किया गया है। सभी जिलों में इसमें विभिन्नता है, जहां आरसीपी 4.5 के अंतर्गत सभी समय अवधियों में अल्मोड़ा, चम्पावत, गढ़वाल, हरिद्वार, नैनीताल और रूद्रप्रयाग वृद्धि दर्शाते हैं; वहीं चम्पावत, नैनीताल और रूद्रप्रयाग केवल आरसीपी8.5 के लिए सभी समय अवधियों में वृद्धि दर्शाते हैं।

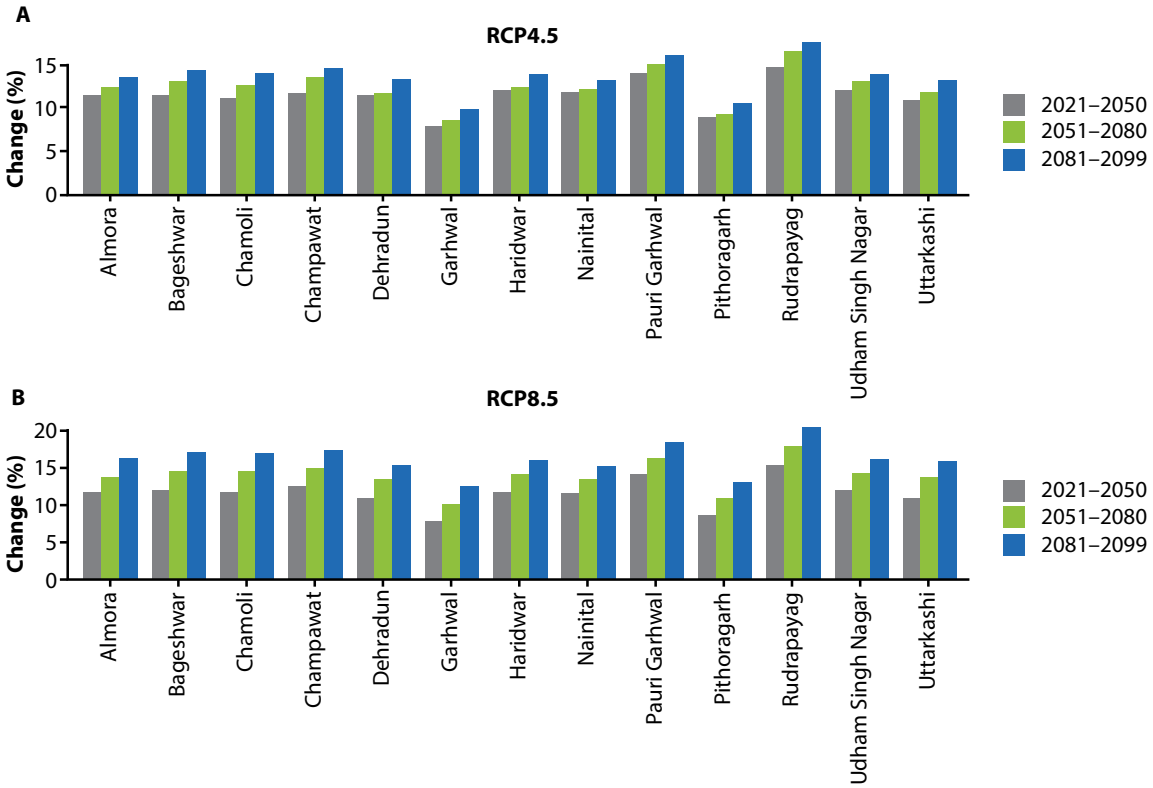

चित्र 35: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में भारी पातन (वर्षण) वाले दिनों (वर्षा >90 प्रतिशत) में पूर्वानुमानित परिवर्तन।

एक आईएनआरएम मूल्यांकन भी यह दर्शाता है कि बेसलाइन (1981–2010) की तुलना में निकट-भविष्य और सुदूर-भविष्य के दौरान क्रमिक शुष्क दिनों में वृद्धि पूर्वानुमानित है (INRM, 2016a)।

सीए एट अल. (2018) द्वारा चरम वर्षा घटनाओं के भावी पूर्वानुमान 1961–1990 के सापेक्ष 2021–2050 के दौरान उत्तरकाशी, देहरादून, टिहरी गढ़वाल और रूद्रप्रयाग; जिलों में 99 प्रतिशत वर्षा में 15% की संभावित वृद्धि इंगित करते हैं और ऊधम सिंह नगर, नैनीताल और चम्पावत में मामूली कमी प्रदर्शित करते हैं। दक्षिणी जिलों में, एक एकल घटना के रूप में अधिकतम वर्षा में भी आंशिक वृद्धि पूर्वानुमानित है। आईएनआरएम (2016a) द्वारा पूर्वानुमानित किए गए अनुसार पातन (वर्षण) चरम सूचकांक अधिकांश जिलों के लिए आरसीपी8.5 परिदृश्य हेतु निकट-भविष्य में एक उल्लेखनीय वृद्धिशील रूझान प्रदर्शित करते हैं। अल्मोड़ा, बागेश्वर, चम्पावत, नैनीताल और ऊधम सिंह नगर आदि जिलों में निकट-भविष्य के दौरान वार्षिक वर्षा में और बहुत भारी पातन (वर्षण) के दिनों में उल्लेखनीय वृद्धि पूर्वानुमानित है। आरसीपी8.5 के लिए निकट-भविष्य के दौरान सभी जिलों के लिए वर्षा तीव्रता और क्रमिक आर्द्र दिनों की संख्या में वृद्धि पूर्वानुमानित है। वर्षा में पूर्वानुमानित वृद्धि, सूखे के प्रति असुरखा में कमी में परिलक्षित है और उत्तरकाशी, चमोली, बागेश्वर और पिथौरागढ़ के सिवाय अधिकांश जिलों में घटोत्तरी पूर्वानुमानित है।

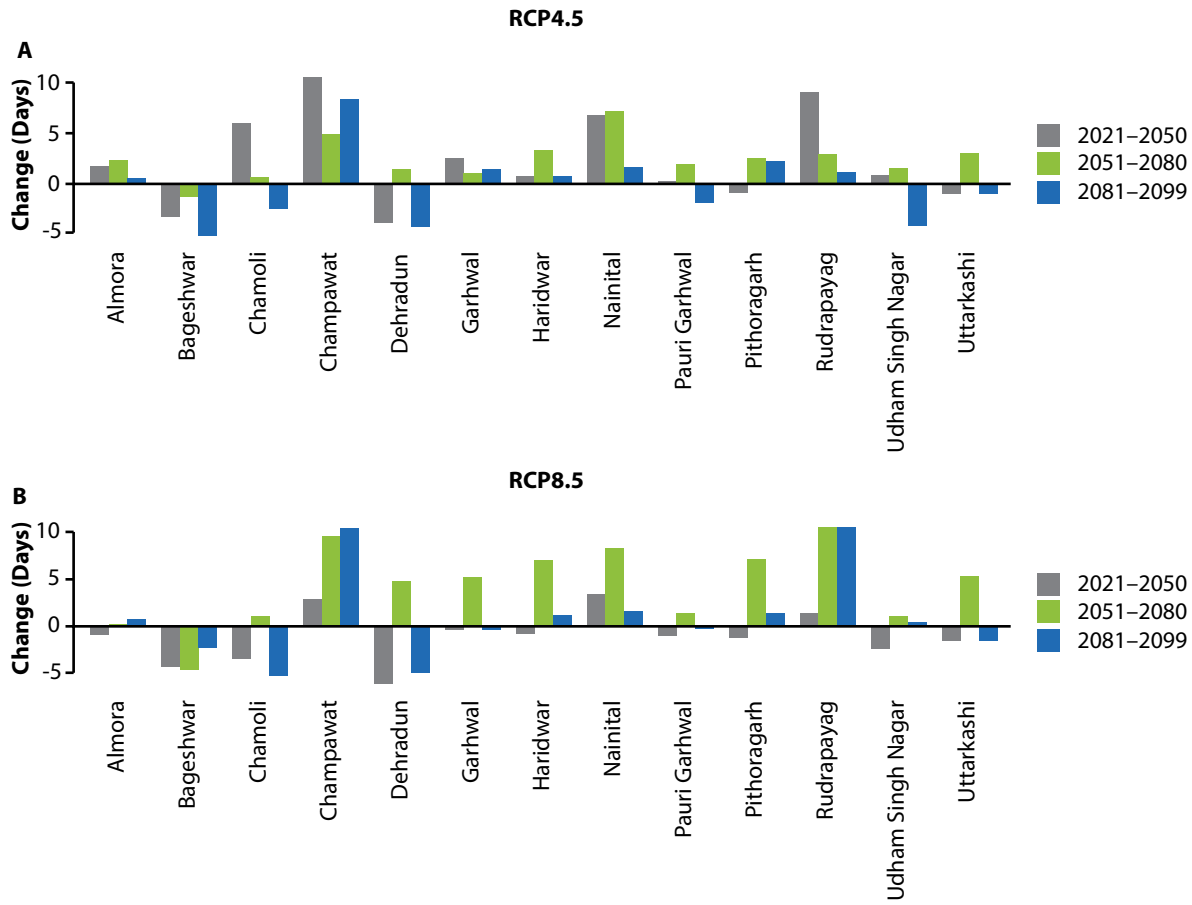

चित्र 36: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में उत्तराखंड के जिलों में वर्षा वाले क्रमिक दिनों में पूर्वानुमानित परिवर्तन

किसी विशेष क्षेत्र में बाढ़ों और सूखों का सामना किए जाने पर बदलती जलवायु के उल्लेखनीय प्रभाव इस प्रकार होते हैं कि यद्यपि कुल वर्षा समान बनी रहती है, किन्तु चरम वर्षायुक्त दिनों में वृद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप शुष्क दिनों की संख्या में भी वृद्धि होती है। वर्षा का इस प्रकार का व्यवहार, न केवल बाढ़ की घटनाओं, बल्कि इसके साथ ही सूखे की घटनाओं के रूप में परिणाम देता है। अध्ययनों में यह देखा गया है कि उत्तराखंड के सभी जिलों में न्यूनतम चौदह दिनों की शुष्क अवधि वाले कालखंडों में कमी आना पूर्वानुमानित है, सिवाय चम्पावत के, जहां वृद्धि होना पूर्वानुमानित है (Ca et al., 2018)।

तापमान

चरम तापमान, भावी परिवर्तनों का आकलन करने के लिए, गर्म और बहुत गर्म दिनों का विश्लेषण किया गया जो बेसलाइन के क्रमशः 90 और 95 प्रतिशत से अधिक, अधिकतम तापमान वाले दिनों के प्रतिशत के संगत था। आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 इन दोनों परिदृश्यों के लिए उत्तराखंड के सभी जिलों में गर्म और बहुत गर्म दिनों में वृद्धि पूर्वानुमानित है, जैसा कि चित्रों 37 और 38 में दिखाया गया है। दोनों परिदृश्यों के लिए सबसे बड़े परिवर्तन सुदूर-भविष्य अवधि (2081–2099) में अवलोकित हैं।

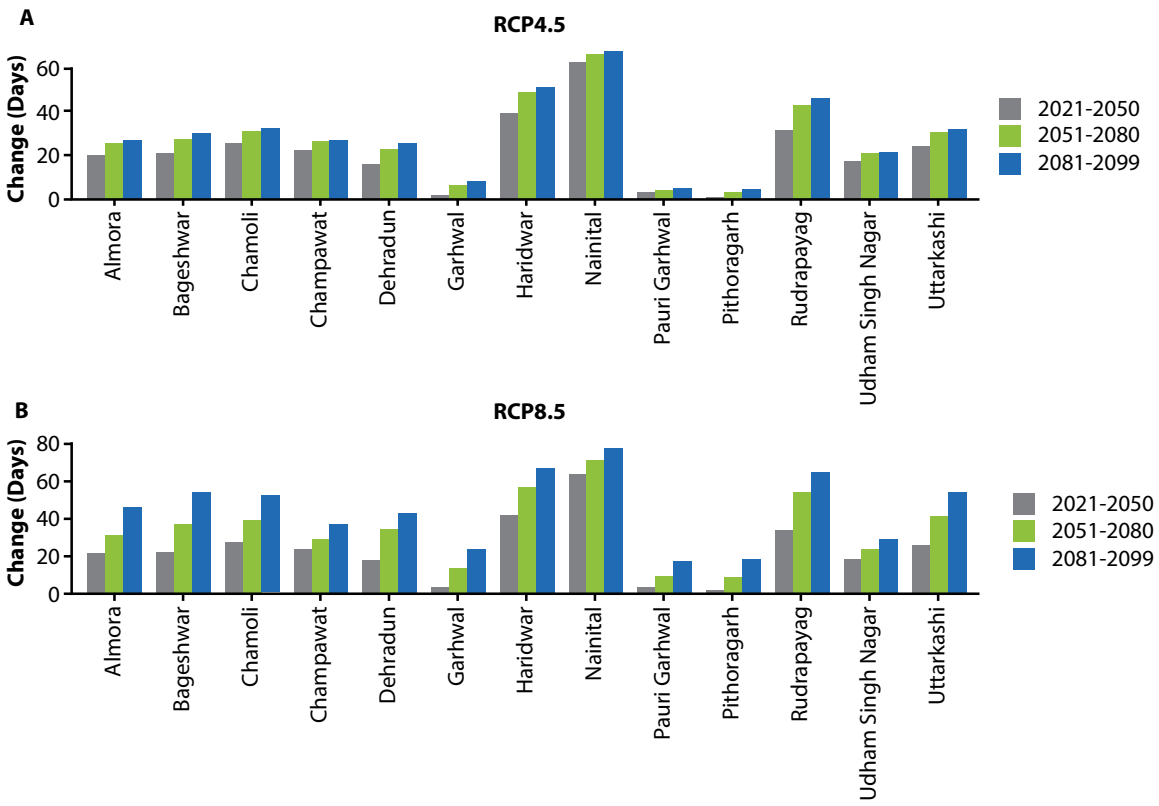

चित्र 37: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में अधिकतम तापमान >90 प्रतिशत वाले दिनों की संख्या में पूर्वानुमानित परिवर्तन

दोनों परिदृश्यों के अंतर्गत सभी समय अवधियों के लिए नैनीताल जिले में सबसे प्रबल परिवर्तन पूर्वानुमानित हैं। भविष्य के लिए पूर्वानुमान, चरम तापमान घटनाओं में उल्लेखनीय परिवर्तन दर्शाते हैं (Ca et al. 2018; INRM 2016a)। **अधिक गर्म दिनों की आवृत्ति में, चमोली और पिथौरागढ़ के सिवाय सभी जिलों में वृद्धि पूर्वानुमानित है।** असाधारण ठंडे दिनों की संख्या में, टिहरी गढ़वाल के सिवाय पूरे राज्य में कमी होना पूर्वानुमानित है (Ca et al., 2018)। 0° से. से कम तक तापमान गिरावट वाले दिनों की संख्या में, चमोली और पिथौरागढ़ के सिवाय सभी जिलों में कमी पूर्वानुमानित है (Ca et al., 2018)। जैसा कि तालिका 6 में दिया गया है, दिन/रात के समय अधिकतम तापमान, गर्म रातें, गर्म दिन और गर्म कालखंड अवधि संकेतकों में आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 परिदृश्यों के लिए निकट-भविष्य और सुदूर-भविष्य हेतु उल्लेखनीय रूप से वृद्धि पूर्वानुमानित है, जबकि ठंडी रातें, ठंडे दिन और ठंडे कालखंडों में कमी आने का अनुमान है (INRM, 2016a)। संकेतक यह भी दर्शाते हैं कि बेसलाइन (1981–2010) की तुलना में, मध्यम-भविष्य की अपेक्षा सुदूर-भविष्य के दौरान अधिक उच्चतर तापन अवलोकित किया गया है (INRM, 2016a)।

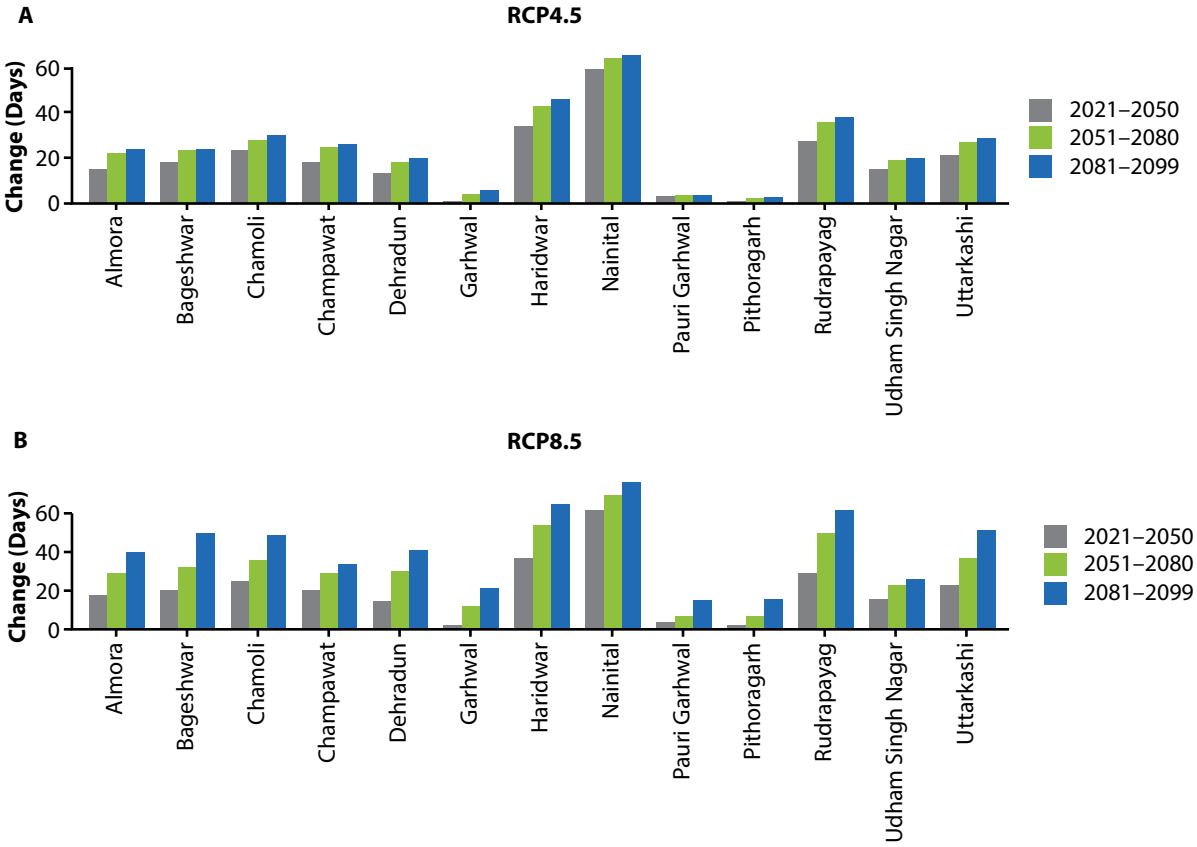

चित्र 38: बेसलाइन (1971–2005) के संदर्भ में अधिकतम तापमान >95 प्रतिशत वाले दिनों की संख्या में पूर्वानुमानित परिवर्तन

3.5 उत्तराखंड के जिलों का जलवायु परिवर्तन असुरक्षा प्रोफाइल

इस अध्याय की शुरुआत में, पर्वतीय क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के मूल्यांकन से संबंधित चुनौतियों पर चर्चा की गई है, जिनमें जलवायु चरों की प्राकृतिक अंतः और अंतर-वार्षिक परिवर्तनशीलता या डाटा का अभाव होना शामिल हैं। इन चुनौतियों पर विचार करते हुए, सूचित निर्णय सृजन के लिए वैज्ञानिक साक्ष्य आधार अपेक्षाकृत पर्वतीय क्षेत्रों में प्रायः कम हैं, विशेषकर सरकार के निचले स्तरों पर। उत्तराखंड में, हालाँकि, राज्य जलवायु परिवर्तन केंद्र (एससीसीसी)[31] जैसी कार्यरत संस्थाओं ने जलवायु-संबंधित परिवर्तनों और चुनौतियों का आकलन करने के लिए जिला और प्रखंड स्तरों पर एक साक्ष्य आधार स्थापित करने में मदद की है (देखें जलवायु परिवर्तन पर उत्तराखंड राज्य कार्य योजना (GU, 2014); और जिला और प्रखंड स्तर पर जलवायु परिवर्तन असुरक्षा मूल्यांकन (INRM, 2016b)। इस अनुभाग में, उत्तराखंड में जिला स्तर पर असुरक्षा के नज़रिए से ऐसे मूल्यांकनों की समीक्षा की गई है (जलवायु प्रभाव अनुसंधान में 'असुरक्षा' के एक संक्षिप्त सामान्य परिचय के लिए बॉक्स 3 देखें)। पर्वतीय पारितंत्रों और पर्वतीय जनजीवन की जलवायु-संबंधित असुरक्षाओं को छोटे पैमाने पर समझे बिना, उन पर प्रतिक्रिया के लिए किए गए उपाय अप्रभावी या विपरीत रूप से गंभीर, प्रतिकूल परिणाम देने वाले हो सकते हैं। जहां अपनी आजीविकाओं के लिए अधिकांश लोग प्रायः निर्वाह-आधारित और वर्षा-सिंचित कृषि पर निर्भर हैं, वहां कृषि क्षेत्र के लिए असुरक्षा मूल्यांकन विशेष रूप से प्रासंगिक हैं। उदाहरण के लिए, कृषि उत्पादन में जलवायु प्रेरित कमी, जनसंख्या के बड़े भाग की असुरक्षा

[31] जलवायु परिवर्तन पर राज्य की कार्ययोजना (एसएपीसीसी) या असुरक्षा और जोखिम मूल्यांकनों सहित राज्य की जलवायु कार्यवाहियां सुदृढ़ बनाने और समन्वय करने के लिए 2016 में राज्य जलवायु परिवर्तन केंद्र (एससीसीसी), उत्तराखंड को स्थापित किया गया। अन्य के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) ने एससीसीसी के वित्तपोषण में सहायता की। स्रोत: http://sccc-uk.org/.

को बढ़ा सकती है। अतएव इस अनुभाग में राज्य के लिए जिला-वार जलवायु परिवर्तन असुरक्षा प्रोफाइल प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन संबंधित असुरक्षाओं पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित किया गया है। उत्तराखंड में जलवायु–पलायन के बीच संबंध को समझने के लिए कृषि में गतिशीलता को समझना अनिवार्य है (अनुभाग 5.2 में विस्तार से चर्चा की गई है)।

बॉक्स 3: जलवायु में असुरक्षित स्थितियों का प्रभाव अनुसंधान

सभी अकादमिक विषयों में, असुरक्षा अनुसंधान का ध्येय उन कारकों को समझना है जो किसी विशिष्ट प्रणाली, किसी इकाई या किसी व्यक्ति को नुकसान के प्रति भेद्य बनाते हैं। जलवायु प्रभाव अनुसंधान में असुरक्षा मूल्यांकन, जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों द्वारा उत्पन्न परिणामों या विश्वस्तर पर सभी क्षेत्रों और समाजों पर उत्पन्न हो सकने वाले परिणामों की व्यापक रेंज को समझने के लिए टूल्स होते हैं। वे समाज के ऐसे क्षेत्रों, सेक्टरों या अनुभागों की पहचान करने में सहायक होते हैं जो वर्तमान और पूर्वानुमानित जलवायु परिवर्तन के कारण विशेष रूप से जोखिम में होते हैं और तद्नुरूप उपयों व वित्तपोषण की प्राथमिकताएं निर्धारित करने में मदद करते हैं। आईपीसीसी की *पांचवीं मूल्यांकन रिपोर्ट* (एआर5), में असुरक्षा को 'प्रतिकूल प्रभावित होने की प्रवृत्ति या पूर्वानुकूलता' के रूप में पारिभाषित किया गया है (Mach et al., 2014)। अन्य कारकों के अलावा, इसमें 'सामना करने तथा अनुकूलनकरने की क्षमता का अभाव' शामिल है (Mach et al., 2014)। जलवायु परिवर्तन के साहित्य में असुरक्षा की विभिन्न अवधारणाओं तथा तद्नुसार मानव-परिवेश की अंतक्रियाओं का विश्लेषण करने से संबंधित जटिलताओं को दृष्टिगत रखते हुए, इस 'पूर्वानुकूलता' को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण एक चुनौतीपूर्ण कार्य हो सकता है। भौतिक संपर्क और अन्य कारक जैसे कि सामाजिक-आर्थिक चर, अंतर्क्रिया करते हैं। संकेतक चुनने की कोई 'सबके लिए एकसमान उपयुक्त' विधि नहीं है, असुरक्षा मूल्यांकन स्थान और संदर्भ के अनुसार विशिष्ट होते हैं। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, डाटा का अभाव, असुरक्षा मूल्यांकनों के तरीके सीमित का सकता है।

इस अनुभाग में प्रस्तुत साहित्य में प्रायः असुरक्षा को आईपीसीसी की *चौथी मूल्यांकन रिपोर्ट* (एआर4) में दी गई परिभाषा के आधार पर वाह्यसंपर्क (एक्सपोज़र), संवेदनशीलता और अनुकूलन क्षमता के संयोजन के रूप में अवधारित किया गया है[32]। तब से आईपीसीसी की असुरक्षा की परिभाषा बदल गई[33] और इसके अलावा यह मान्यता स्वीकार की गई कि 'असुरक्षा में विविध अवधारणाएं सम्मिलित हैं' (Mach et al., 2014)।[34] अतएव, जलवायु असुरक्षा मूल्यांकनों में असुरक्षा की उनकी अंतर्निहित समझ और अवधारणा पर चर्चा करनी चाहिए।

जिला-वार वर्तमान असुरक्षा प्रोफाइल

उत्तराखंड के कुछ जिले, जलवायु परिवर्तन के प्रति पहले से ही उच्चस्तर पर असुरक्षा का अनुभव कर रहे हैं। एकीकृत प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन सलाहकार (आईएनआरएम कंसल्टैंट्स) द्वारा भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर (आईआईएससी बंगलौर) और जियो क्लाइमेट रिस्क सॉल्युशन के सहयोग से तैयार एक रिपोर्ट में चम्पावत और टिहरी गढ़वाल नामक पहाड़ी जिले, जलवायु परिवर्तन के वर्तमान स्तरों के प्रति सर्वाधिक असुरक्षित पाए गए (INRM, 2016b)। रिपोर्ट में, जिला और प्रखंड स्तरों पर विशिष्ट क्षेत्रों के लिए वर्तमान और पूर्वानुमानित जलवायु परिवर्तनों के सापेक्ष उत्तराखंड की असुरक्षा का विश्लेषण किया गया (INRM, 2016b)। प्रत्येक जिले के लिए, चयनित क्षेत्रों से अनेक संकेतकों का मूल्यांकन किया गया (for list of indicators, see INRM, 2016b, pp. 48–52)। यह रिपोर्ट क्षेत्र-विशिष्ट असुरक्षा रैंकिंग तथा समग्र असुरक्षा रैंकिंग प्रदान करती है जो एक एकीकृत कम्पोजिट असुरक्षा सूचकांक पर आधारित है[35]। इन रैंकिंगों के आधार पर, जिलों

---

[32] एआर4 में, असुरक्षा को 'जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों जिसमें जलवायु विभिन्नता और चरम घटनाएं शामिल हैं, के प्रति किसी प्रणाली की भेद्यता तथा सामना करने में असमर्थता के स्तर के रूप में पारिभाषित किया गया है। असुरक्षा, जलवायु परिवर्तन की विशेषता, परिमाण और दर तथा भिन्नता, जिसके संपर्क में कोई प्रणाली होती है, की संवेदनशीलता और इसकी अनुकूलन क्षमता का फलन होती है।'

[33] समय (अवधि) के साथ असुरक्षा की आईपीसीसी की अवधारणा का सम्यक अवलोकन, जलवायु परिवर्तन से अनुकूलन पर जर्मन संघीय सरकार के अंतरमंत्रालयी कार्य दल के एक प्रकाशन में देखा जा सकता है (Buth et al., 2017) या जलवायु जोखिम की आईपीसीसी एआर5 अवधारणा के अनुरूप असुरक्षा की अवधारणा प्रयोग करने के बारे में एक अवलोकन के लिए यहां देखें (GIZ and EURAC, 2017)।

[34] एआर5 में असुरक्षा की पूरी परिभाषा निम्नानुसार है: "प्रतिकूल प्रभावित होने की प्रवृत्ति या पूर्वानुकूलता। असुरक्षा में, 'नुकसान के प्रति संवेदनशीलता या भेद्यता तथा सामना करने तथा अनुकूलन करने की क्षमता का अभाव' सहित विविध अवधारणाएं और तत्व शामिल हैं" (Mach et al., 2014)।

[35] वर्तमान में यह रिपोर्ट, उत्तराखंड में जिला और प्रखंड स्तरों पर जलवायु परिवर्तन असुरक्षा का मूल्यांकन करने के लिए एक सबसे समग्र प्रयास है। वर्तमान असुरक्षा प्रोफाइल के मामले में मूल्यांकन 28 सामाजिक-आर्थिक संकेतकों – इसमें लिंगानुपात, उस क्षेत्र में परिवार कल्याण या स्वास्थ्यसेवा ढांचे के आंकड़े शामिल हैं, - और चयनित क्षेत्रों में 50 पर्यावरणीय संकेतकों [जल, वानिकी, कृषि और पशुपालन, स्वास्थ्य तथा अवसंरचना के बाढ़ और भूस्खलन संबंधी जोखिम; पर आधारित हैं, आईएनआरएम रिपोर्ट के परिशिष्ट में तालिका ए-1 में सभी संकेतक सूचीबद्ध किए गए हैं देखें (INRM, 2016b, pp. 48–52)]। एक मिश्रित सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा सूचकांक और एक मिश्रित पर्यावरणीय सूचकांक निर्मित किए गए हैं जो प्रत्येक जिले के लिए एक एकीकृत मिश्रित असुरक्षा सूचकांक में योगदान करते हैं। रिपोर्ट में प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन किया गया है। अन्य के अतिरिक्त इसमें संकेतक मानों की तुलना के लिए उनका सामान्यीकरण शामिल है क्योंकि संकेतकों की विस्तृत रेंज उपलब्ध है और/या विविध सांख्यिकीय इकाइयों में संकलित है। उनके भार निर्धारित किए गए हैं और फिर संकलित किए गए हैं।

को छह विभिन्न असुरक्षा श्रेणियों में समूहीकृत किया गया है (बहुत कम, कम, मध्यम, अधिक, बहुत अधिक और अत्यन्त अधिक)। जहां उत्तराखंड का कोई भी जिला, वर्तमान जलवायु परिवर्तन के प्रति समग्र असुरक्षा के 'अत्यन्त अधिक' स्तर वाले के रूप में वर्गीकृत नहीं है, वहीं पहाड़ी जिले चम्पावत और टिहरी गढ़वाल का समग्र असुरक्षा का 'बहुत अधिक' वाला स्तर है। लेखकों ने इन दोनों पहाड़ी जिलों की असुरक्षा का कारण 'अन्य जिलों के सापेक्ष इनकी कम अनुकूलन क्षमता, अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशीलता और संपर्क/एक्सपोज़र' को बताया है (INRM, 2016b)।[36]

जलवायु परिवर्तन संबंधित असुरक्षा, पहाड़ी जिलों के कृषि क्षेत्र में बढ़ने की संभावना है। केवल कृषि क्षेत्र पर विचार करते हुए, चार पहाड़ी जिलों – टिहरी गढ़वाल, अल्मोड़ा, चम्पावत और पौड़ी गढ़वाल – को वर्तमान जलवायु परिवर्तन के सापेक्ष 'बहुत अधिक' असुरक्षित के रूप में वर्गीकृत किया गया है (INRM, 2016b)। कृषि क्षेत्र का असुरक्षा मूल्यांकन तेरह संकेतकों पर आधारित है, जिनमें फसल उपज, जलापूर्ति प्रणालियां या छोटी जोतों (एक हेक्टेयर से कम) का प्रतिशत आदि चीज़ों को विचारणीय माना जाता है। वर्तमान जलवायु परिवर्तन के प्रति 'बहुत अधिक' असुरक्षित स्तर के रूप में वर्गीकृत, उत्तराखंड के सोलह प्रखंडों में से तेरह इन चार पहाड़ी जिलों में से किसी न किसी में स्थित हैं। अंतर्राष्ट्रीय एकीकृत पर्वत विकास केंद्र (आईसीआईएमओडी) द्वारा पहाड़ी जिलों अल्मोड़ा, बागेश्वर और टिहरी गढ़वाल में 2010 में किया गया एक अन्य असुरक्षा मूल्यांकन यह दर्शाता है कि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति असुरक्षित समुदाय, अपने द्वारा विचारित परिवर्तनों से अनुकूलन करने के लिए अनेक रणनीतियां अपनाते हैं[37] (Macchi, 2011)। वर्षा (कमी) और मानसून के आगमन (अपूर्वानुमेयता) में विचारित परिवर्तनों के मामले में, इनमें 'चावल के स्थान पर रागी से प्रतिस्थापन; चावल खरीदना; वस्तु-विनिमय करना; नई (नकदी) फसलों के साथ सुधार करना; विलम्ब से बुवाई करना' आदि शामिल हैं (Macchi, 2011)।

जलचक्र में परिवर्तन, उत्तराखंड में कृषि के लिए जल संसाधनों की उपलब्धता को पहले से ही प्रभावित कर रहे हैं, जिसके कारण अनेक जिलों में फसल-जल तनाव उत्पन्न होता है। जैसा कि इस अध्याय के प्रारंभ में चर्चा की गई है, अध्ययनों में उत्तराखंड में जल की उपलब्धता पर जलवायु-संबंधी परिवर्तनों का प्रभाव दर्शाया गया है। आईएनआरएम के विश्लेषण के अनुसार, पौड़ी गढ़वाल, जो कि एक पहाड़ी जिला है और देहरादून, जो कि एक मैदानी जिला है, ये जल संसाधनों की घटती उपलब्धता के प्रति सर्वाधिक असुरक्षित हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि यहां प्रति व्यक्ति जल की मौसमी उपलब्धता कम है और शीत ऋतु में फसल-जल तनाव का इनका स्तर अधिक है (INRM, 2016b)। केंद्रीय शुष्कभूमि कृषि अनुसंधान संस्थान (सीआरआईडीए) द्वारा प्रकाशित *जलवायु परिवर्तन के प्रति भारतीय कृषि की असुरक्षा की मानचित्रावली (एटलस)* के अनुसार उत्तराखंड में मृदा की जलधारण क्षमता अपेक्षाकृत कम (60 मिमी से कम) है (Rama Rao et al., 2013)। उत्तराखंड में कृषि में जहां 80% से अधिक जल उपयोग का अनुमान है (Kelkar et al., 2008a) और मोटे तौर पर 70% जनसंख्या कृषि और संबंधित गतिविधियों पर आश्रित है (Planning Commission, GU, 2017, p. 51), वहीं उत्तराखंड के जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, अनेक आजीविकाओं को संभावित रूप से संकट में डाल सकते हैं। कुछ लोगों को पलायन के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं सूझ सकता है (देखें अनुभाग 5.2 जिसमें जलवायु परिवर्तन, कृषि और पलायन के बीच संबंधों पर चर्चा की गई है)। हालाँकि, समुदाय अनुकूलन कर रहे हैं। अल्मोड़ा, बागेश्वर और टिहरी गढ़वाल में किसान, अपेक्षाकृत अधिक लंबे शुष्क कालखंडों और सूखे जैसी दशाओं पर ऐसी सिंचाई प्रणालियों के साथ प्रतिक्रिया कर रहे हैं जो चक्रानुक्रम आधार पर साझा करते हुए खोली जाती हैं (Macchi, 2011)। अल्मोड़ा में, पारंपरिक जल-साझेदारी प्रणाली से इन प्रभावों का सामना करने में मदद मिलती है (Macchi, 2011)।

---

[36] जहां टिहरी गढ़वाल के मामले में पर्यावरणीय कारक, जिले में (रात के समय तापमान में वृद्धि, बाढ़ों तथा भूस्खलनों सहित) जलवायु परिवर्तन के प्रति कुल असुरक्षा के 'बहुत अधिक' स्तर में प्रमुख रूप से योगदान करते हैं वहीं सामाजिक-आर्थिक संकेतक जैसे कि उच्चतर आयु निर्भरता अनुपात या साक्षरता दर में लैंगिक अंतर, चम्पावत के इस वर्गीकरण में योगदान करते हैं। केवल सामाजिक-आर्थिक संकेतकों पर विचार करते हुए भी चम्पावत का पहला स्थान है, जिसके बाद बागेश्वर का स्थान है, जो ऐसा एकमात्र अन्य जिला है जिसे इस श्रेणी में वर्तमान जलवायु परिवर्तन के प्रति 'बहुत अधिक' असुरक्षित के रूप में वर्गीकृत किया गया है। केवल पर्यावरणीय असुरक्षा संकेतकों का मूल्यांकन किए जाने पर टिहरी गढ़वाल सबसे असुरक्षित जिला है, जिसके बाद पौड़ी गढ़वाल और चम्पावत का स्थान आता है।

[37] जैसा कि इस रिपोर्ट में अन्यत्र चर्चा की गई है, स्टेशनों की कम संख्या तथा डाटा की खराब गुणवत्ता के कारण पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में विश्वसनीय और दीर्घकालीन मौसमी अवलोकन प्रायः बहुत कम हैं (Das and Meher 2019)। उदाहरण के लिए, आईसीआईएमओडी अध्ययन के लेखक टिहरी गढ़वाल जिले में समुदायों के अवगमी (माने गए) जलवायु परिवर्तनों को सत्यापित नहीं कर सके, क्योंकि उनके पास केवल एक मौसम स्टेशन का डाटा था और रिकॉर्ड भी केवल कुछ ही वर्षों के थे (Macchi, 2011)।

जिला-वार पूर्वानुमानित असुरक्षा प्रोफाइल

आरसीपी4.5 के अंतर्गत, उत्तराखंड के सभी तेरह जिलों में, शताब्दी के मध्य तक जलवायु परिवर्तन के प्रति पर्यावरणीय असुरक्षा बढ़नी पूर्वानुमानित है (INRM, 2016b)। जलवायु परिवर्तनों के प्रति उत्तराखंड के जिलों का असुरक्षा मूल्यांकन, आईआरएनएम की तकनीकी रिपोर्ट में पूर्वानुमानित किया गया है जो 30 पर्यावरणीय संकेतों के सबसेट पर आधारित है।[38] आईपीपीसी की *पांचवीं मूल्यांकन रिपोर्ट* से दो भिन्न परिदृश्यों (आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5) का उपयोग करते हुए इसे वर्ष 2050 और 2100 के लिए मॉडल किया गया है। अल्मोड़ा, चम्पावत, हरिद्वार, पौड़ी गढ़वाल और टिहरी गढ़वाल इन पांच जिलों में शताब्दी के मध्य तक आरसीपी4.5 परिदृश्य के अंतर्गत जलवायु परिवर्तन के प्रति 'अत्यन्त अधिक' असुरक्षा पूर्वानुमानित है। लेखक इस वृद्धिशील असुरक्षा का कारण अन्य बातों के साथ-साथ तापमान में वृद्धि और पातन (वर्षण) के पैटर्नों में परिवर्तनों को भी मानते हैं[39]। शताब्दी के अंत तक उक्त पांच जिले 'अत्यन्त अधिक' वाली श्रेणी में बने रहेंगे, दो जिलों (चमोली और देहरादून) का जलवायु परिवर्तन की 'बहुत अधिक' पर्यावरणीय असुरक्षा श्रेणी में होना और तीन जिलों (नैनीताल, रूद्रप्रयाग, उत्तरकाशी) का 'अधिक' असुरक्षा वाली श्रेणी में होना पूर्वानुमानित है। शताब्दी के अंत तक आरसीपी4.5 परिदृश्य के अंतर्गत केवल दो जिलों बागेश्वर और पिथौरागढ़ का पर्यावरणीय असुरक्षा की 'मध्यम' श्रेणी में होना पूर्वानुमानित है (INRM, 2016b)।

आरसीपी8.5 के अंतर्गत उत्तराखंड के तेरह में से दस जिलों में जलवायु परिवर्तन के प्रति 'बहुत अधिक' या 'अत्यन्त अधिक' पर्यावरणीय असुरक्षा श्रेणी पूर्वानुमानित है (INRM, 2016b)। बेसलाइन के रूप में जलवायु परिवर्तन के प्रति वर्तमान पर्यावरणीय असुरक्षा के मूल्यांकन वाले आईएनआरएम अध्ययन में यह पूर्वानुमान किया गया है कि 2050 तक उत्तराखंड के सभी तेरह जिले अधिक असुरक्षित हो जाएंगे। शताब्दी के अंत तक, उत्तराखंड के तेरह में से दस जिले जलवायु परिवर्तन के प्रति 'बहुत अधिक' या 'अत्यन्त अधिक' असुरक्षा की श्रेणी में होंगे।[40] अतएव, आरसीपी8.5 के अंतर्गत उत्तराखंड के दस में से सात पहाड़ी जिलों की 'बहुत अधिक' या 'अत्यन्त अधिक' पर्यावरणीय असुरक्षा श्रेणी होगी। चूंकि सभी मैदानी जिले इन श्रेणियों में आते हैं, इसलिए वे पहाड़ी जिलों से पलायन करने वालों के लिए स्वागतपूर्ण स्थान नहीं हो सकते हैं।

जल संबंधित तनावकारक, अनेक पहाड़ी जिलों की असुरक्षा में योगदान करने वाले सबसे महत्त्वपूर्ण कारकों में शामिल हैं (Rama Rao et al., 2013)[41]। सीआरआईडीए की 'जलवायु परिवर्तन के प्रति भारतीय कृषि की असुरक्षा की मानचित्रावली (एटलस)' में, सूखे वाले वर्षों की संख्या में पूर्वानुमानित वृद्धि को, पहाड़ी जिलों बागेश्वर, चमोली और पिथौरागढ़ में असुरक्षा के उच्च स्तरों में सर्वाधिक योगदान करने वाले कारकों के रूप में दर्ज किया गया है। चम्पावत में, जुलाई माह में वर्षा में पूर्वानुमानित कमी, असुरक्षा में योगदान करने वाला एक महत्त्वपूर्ण कारक है। यह रोचक है कि आईएनआरएम के पूर्वानुमान में आरसीपी4.5 के अंतर्गत जल संसाधनों की असुरक्षा में 2050 तक मामूली वृद्धि दर्शाई गई है जबकि शताब्दी के समापन तक कमी प्रदर्शित की गई है (INRM, 2016b)। आरसीपी8.5 के अंतर्गत असुरक्षा 2050 और 2100 तक घटनी पूर्वानुमानित है। आईसीआईएमओडी के अध्ययन में अपेक्षाकृत लंबे शुष्क कालखंडों तथा सूखे जैसी दशाओं के संभावित भावी जोखिमों को स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न करने वाले तथा महिलाओं और बच्चों पर कार्यभार बढ़ाने वाले कारण के रूप में दर्ज किया गया है, जिससे बच्चों की स्कूली पढ़ाई छूट जाती है (माची, 2011)।

कुछ जिलों में, जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि क्षेत्र पर सकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं। एससीसीसी और उत्तराखंड वन विभाग द्वारा हाल ही में किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि जलवायु परिवर्तन से कुछ जिलों में फसल उपज में वृद्धि हो सकती है (एससीसीसी,

---

[38] जिला-वार वर्तमान असुरक्षा प्रोफाइल के विपरीत, पूर्वानुमानित असुरक्षा के विश्लेषणों में सामाजिक-आर्थिक संकेतक शामिल नहीं हैं। लेखकों ने पद्धतिशास्त्रीय चुनौतियों ('सामाजिक-आर्थिक संकेतकों के लिए किन्हीं विश्वसनीय पूर्वानुमानों की अनुपस्थिति') का उल्लेख किया है। अतएव, पउत्तराखंड के जिलों के लिए पूर्वानुमानित असुरक्षा मूल्यांकन में केवल 'पर्यावरणीय असुरक्षा' का आकलन किया गया है। पर्यावरणीय संकेतकों की एक सूची, अध्ययन (INRM, 2016) के परिशिष्ट में तालिका ए-13 में पाई जा सकती है।

[39] आईएनआरएम की रिपोर्ट में पूर्वानुमानित असुरक्षा प्रोफाइल के लिए, सामाजिक-आर्थिक संकेतकों पर विचार नहीं किया गया है।

[40] 'बहुत अधिक': चमोली, नैनीताल, ऊधम सिंह नगर और उत्तरकाशी; 'अत्यन्त अधिक': अल्मोड़ा, चम्पावत, देहरादून, हरिद्वार, पौड़ी गढ़वाल, टिहरी गढ़वाल।

[41] सीआरआईडीए रिपोर्ट का विश्लेषण एसआरईएस ए1बी पर आधारित है, जो कि 2000 में प्रकाशित, उत्सर्जन परिदृश्य पर आईपीसीसी की विशेष रिपोर्ट (एसआरईएस) का एक परिदृश्य है। यह परिदृश्य 'बहुत तीव्र आर्थिक वृद्धि, शताब्दी के मध्य में वैश्विक जनसंख्या की सर्वाधिक अधिकता और उसके पश्चात गिरावट और नई और अधिक कार्यक्षम तकनीकों का तीव्र प्रादुर्भाव वाले भावी विश्व' का वर्णन करता है, जिसमें ऊर्जा के स्रोत जीवाश्म और गैर-जीवाश्म स्रोतों के बीच संतुलित हैं (IPCC, 2000)।

एन.डी.)। उदाहरण के लिए 'उच्चतर तापमान से शीतल और पर्वतीय क्षेत्रों में फसलों में पौधों की मौसमी वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक होगी, जहां वर्ष के अधिकांश समय में तापमान कम बना रहता है' (एससीसीसी, एन.डी.)। हालाँकि, चमोली, पौड़ी गढ़वाल, पिथौरागढ़ और उत्तरकाशी में (आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 के अंतर्गत) चावल और गेहूँ की उपज में कमी संभावित है। आईएनआरएम की रिपोर्ट में, आरसीपी4.5 के अंतर्गत शताब्दी के मध्य और अंत तक उत्तराखंड के जिलों में कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन-संबंधी असुरक्षा में 'आंशिक कमी' अपेक्षित है (INRM, 2016b)। हालाँकि यह अनुमान अपूर्ण है क्योंकि उत्तरी पहाड़ी जिलों चमोली, पिथौरागढ़ और उत्तरकाशी को मूल्यांकन में शामिल नहीं किया गया है[42]।

जिला-वार असुरक्षा, कृषि और पलायन का संबंध जोड़ना

उत्तराखंड के जलवायु परिवर्तन असुरक्षा मूल्यांकन यह दर्शाते हैं कि पहाड़ी जिलों से जलवायु-प्रेरित बहिर्प्रवासन को समझने के लिए एक एकीकृत तरीका आवश्यक है। अधिकांश जिले वर्तमान और पूर्वानुमानित जलवायु परिवर्तन से गंभीर चुनौतियों का सामना करेंगे, जिनके कारण पलायन पर गंभीर प्रभाव हो सकते हैं। हालाँकि, जहां जलवायु परिवर्तन और पलायन दोनों ही उत्तराखंड के नीतिनिर्माताओं के लिए महत्त्वपूर्ण विषय रहे हैं, वहीं उनको प्रायः पृथक-पृथक मानते हुए व्यवहार किया गया है, जैसा कि शुरुआती अध्याय में चर्चा की गई है। जलवायु परिवर्तन संबंधी असुरक्षा के बढ़ते स्तर, अधिक लोगों को पहाड़ी जिलों से मैदानों में औद्योगिक केंद्रों में पलायन करने के लिए विवश कर सकते हैं। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, सभी तीन मैदानी जिले भी जलवायु परिवर्तन के प्रति असुरक्षा के बढ़ते स्तरों का सामना कर रहे हैं – आईएनआरएम अध्ययन में उनको आरसीपी8.5 के अंतर्गत शताब्दी के अंत तक 'बहुत अधिक' या 'अत्यन्त अधिक' पर्यावरणीय असुरक्षा श्रेणी प्रदान की गई है – इसलिए पलायन करने वाले यहां भी अपना जीवन उन्हीं दशाओं में पा सकते हैं, जहां वे जलवायु परिवर्तन के विविध प्रतिकूल प्रभावों के प्रति पहले की भांति समान रूप से संपर्क में होंगे।

पहाड़ी जिलों में, कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के प्रति असुरक्षा के बढ़ते स्तर, जलवायु परिवर्तन के प्रति समग्र असुरक्षा के उच्च स्तरों में योगदान करते हैं। उदाहरण के लिए, आईएनआरएम अध्ययन के अनुसार पहाड़ी जिलों चम्पावत और टिहरी गढ़वाल में कृषि क्षेत्र में, वर्तमान जलवायु परिवर्तन के प्रति 'बहुत अधिक' असुरक्षा श्रेणी है और इसके अलावा सभी क्षेत्रों का विश्लेषण करने पर जिलों को सर्वाधिक असुरक्षित पाया गया है (INRM, 2016c)। अतएव उत्तराखंड अनेक मोर्चों पर चुनौतियों का सामना कर रहा है और आय उपार्जन के नए अवसरों में निवेश के लिए निधियों का अभाव हो सकता है। केवल कृषि संकेतकों का मूल्यांकन करते हुए अन्य दो जिलों अल्मोड़ा और पौड़ी गढ़वाल को 'बहुत अधिक' असुरक्षा के रूप में वर्गीकृत किया गया है जहां 2001 और 2011 के बीच ऋणात्मक जनसंख्या वृद्धि दर दर्ज की गई है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, पहाड़ी जिलों में लोग जल तनाव के कारण भी अधिक असुरक्षा का सामना करते हैं। कृषि पर प्रभाव, पहाड़ी जिलों की कृषि पर आश्रित जनसंख्या का बहिर्प्रवासन प्रेरित कर सकते हैं। निष्कर्ष निकालने के लिए अधिक डाटा और अनुसंधान की आवश्यकता है।

कृषि में लगे परिवारों की असुरक्षा की बेहतर समझ, किसानों के लिए नीतियों को सूचित बना सकती है। कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन-संबंधित असुरक्षा का जिलास्तरीय मूल्यांकन करने से उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन के सर्वाधिक जोखिम वाले क्षेत्रों की पहचान करने में मदद मिलेगी। हालाँकि, व्यापक, तुलनात्मक जलवायु असुरक्षा मूल्यांकन, प्रायः अपेक्षाकृत तकनीकी होते हैं और लोगों के दृष्टिकोणों का समाधान करने में विफल रहते हैं या व्यक्तियों या परिवारों की पहले से ही मौजूद प्रतिक्रिया प्रणालियों का वर्णन करते हैं। घरेलू स्तर पर मूल्यांकनों से यह कमी दूर करने में मदद मिल सकती है। उदाहरण के लिए, हाल के एक अध्ययन में उत्तराखंड में जलवायु प्रेरित कृषि परिवर्तनों के प्रति किसानों की अलग तरह की अनुकूलन रणनीतियों पर चर्चा की गई (Shukla et al., 2019)। दस गाँवों में घरेलू सर्वेक्षणों के आधार पर लेखकों ने इसे समझने के लिए प्रारूप रचना का उपयोग किया कि कृषि गतिविधियों में लगे परिवार अपनी आजीविकाएं सुरक्षित करने के लिए विविध अनुकूलन विकल्प क्यों चुनते हैं। उन्होंने संक्षेपित किया कि 'कम संसाधनों वाले किसानों ने बताया कि वे

[42] इन जिलों में, आईएनआरएम रिपोर्ट में आरसीपी8.5 परिदृश्य के अंतर्गत कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन संबंधित असुरक्षा का मूल्यांकन भी नहीं किया गया है, इसलिए इसे यहां शामिल नहीं किया गया है (INRM, 2016b)।

आजीविका के एक विकल्प के रूप में खेती से धीरे-धीरे विमुख होते जा रहे हैं' (Shukla et al., 2019)। अपने निष्कर्षों के आधार पर लेखकों ने सुझाव दिया कि 'हिमालयी क्षेत्र में प्रभावी अनुकूलन नीतियों के पैरोकारों को कृषक परिवारों की विविध और बहुल अनुकूलन ज़रूरतों तथा रूकावटों को समझने के लिए कृषक समुदायों में सूक्ष्म बारीकियों पर ध्यान देना होगा' (Shukla et al., 2019)।

चित्र 39 में अनुभाग 3 का संक्षिप्त सारांश दिया गया है।

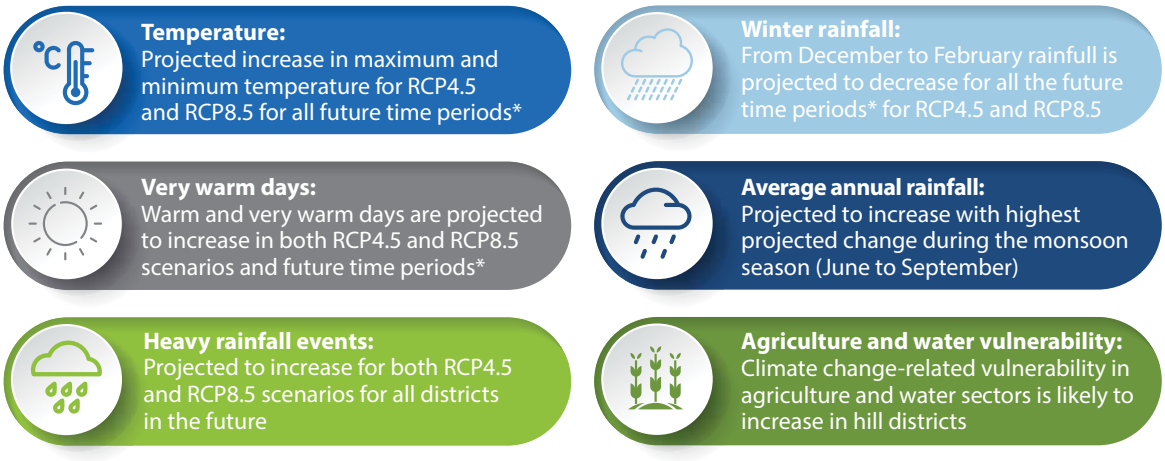

चित्र 39: अनुभाग 3 का सारांश; * निकट-भविष्य (2021–2050), मध्यम-भविष्य (2050–2080) और सुदूर-भविष्य (2081–2099) वाले परिदृश्यों के संदर्भ में भावी समय अवधियां

चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके

पलायन

अल्मोड़ा, उत्तराखंड, भारत में निर्जन और रिक्त घर।

© शटरस्टॉक/लियो पहाड़ी

4 पलायन

पलायन, उत्तराखंड के विकास को समझने की कुंजी है। ऐतिहासिक रूप से, पलायन ने पहाड़ी क्षेत्रों को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित किया है क्योंकि उनके पर्वतीय समुदायों ने पलायन को आजीविका के एक वैकल्पिक स्रोत और जोखिम-विविधीकरण रणनीति की तरह उपयोग किया है (Gautam and Andersen, 2016; Kassie et al., 2017; Mamgain and Reddy, 2016; Rural Development and Migration Commission, 2018)। निम्न अनुभागों में उत्तराखंड में पलायन संबंधी साहित्य संश्लेषित किया गया है।

4.1 पलायन और ऊंचाई

उत्तराखंड में पलायन, ऊंचाई से सह-संबंधित है। बहिर्पलायन करने वालों के प्रतिशत (data from Rural Development and Migration Commission, 2018 and 2011 Census) और प्रखंड विकास स्तर पर ग्रामीण जनसंख्या (data from Census 2011) को प्रत्येक प्रखंड की औसत ऊंचाई (डिजिटल ऊंचाई मॉडल के रूप में जीटीओपीओ30 के उपयोग द्वारा आगणित[43]) से सह-संबंधित करने से बहिर्प्रवासन के दो विशिष्ट रूझान प्रकट होते हैं। पहले, ऊंचाई में वृद्धि होने के साथ बहिर्प्रवासन में वृद्धि होती है, विशेषकर मैदानों से पर्वतों की ओर, लेकिन उसके बाद अधिक ऊंचाई पर इसमें कमी होती है (देखें चित्र 40)। रूझान में यह अंतर, पर्वतीय वर्गों के लिए यूएनईपी

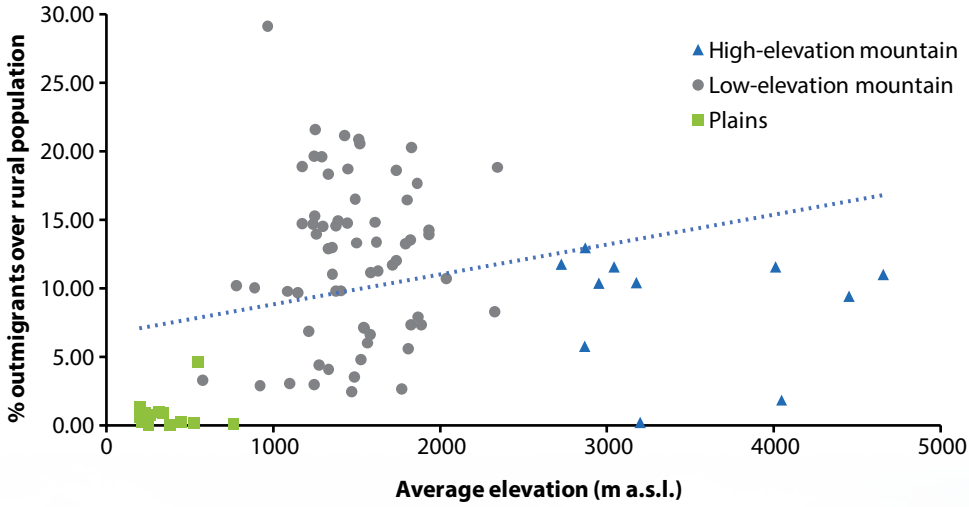

चित्र 40: ग्रामीण जनसंख्या में पलायन करने वालों के प्रतिशत और यूएनईपी के पर्वतों के वर्गीकरण के अनुसार मैदानों, कम ऊंचाई वाले पर्वतों और अधिक ऊंचाई वाले पर्वतों के रूप में वर्गीकृत उत्तराखंड राज्य में सभी विकास खंडों की औसत ऊंचाई में सहसंबंध
चित्र साभार: रिकार्डो बिएला, पीआईके

[43] जीटीओपीओ30, 30 आर्क सेकेंड (लगभग 1 किलोमीटर) के क्षैतिजिक ग्रिड अंतराल वाला एक वैश्विक उन्नयन मॉडल (डीईएम) है। जीटीओपीओ30, जिसे 1996 के अंत में पूरा किया गया था, को अमेरिकी भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण के पृथ्वी संसाधन प्रेक्षण एवं विज्ञान केंद्र (ईआरओएस) के कर्मचारियों द्वारा एक सामूहिक प्रयास के अंतर्गत तीन वर्षों की अवधि के दौरान विकसित किया गया था।

वर्गीकरण का उपयोग करते हुए रेखांकित किया जा सकता है जो पर्वतों, निम्न पर्वतों और उच्च पर्वतों के मध्य अंतर स्पष्ट करने में सहायता करता है। अधिक ऊंचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों में 2500 मी से अधिक ऊंचाई, कम ऊंचाई वाले पर्वतों में 300 मी से 2500 मी के बीच ऊंचाई की विशेषता होती है, जबकि मैदानों में ऊंचाई नहीं होती (Kapos et al., 2000)। 2500 मी से कम ऊंचाई पर बहिर्प्रवासन में ऊंचाई बढ़ने के साथ वृद्धि होती है। मैदानों के प्रखंडों और अधिक ऊंचाई वाले पर्वतों वाले प्रखंडों की अपेक्षा कम ऊंचाई वाले पर्वतों वाले प्रखंड उल्लेखनीय रूप से अधिक बहिर्प्रवासन दर्शाते हैं हालांकि यह द्वितीय अंतर उतना उल्लेखनीय नहीं है। चित्र 40 ग्रामीण जनसंख्या और औसत प्रखंड ऊंचाई पर बहिर्प्रवासन के प्रतिशत (%) के बीच सहसंबंध दर्शाता है।

4.2 एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उत्तराखंड में पलायन

उत्तराखंड में, पलायन की शुरुआत ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों से देखी जा सकती है, जब भारत के विभिन्न भागों के लोगों ने उत्तराखंड की पहाड़ियों की ओर जाना शुरू किया था। पहाड़ी जंगहों को आवासीय भूमि में रूपांतरित कर दिया गया (Planning Commission, GU, 2017)। बड़े पैमाने पर बहिर्प्रवासन 1860 के दशक में ही शुरू हुआ, जब बड़ी संख्या में पुरुषों ने अंग्रेजी भारतीय सेना में भर्ती होने के लिए अपने गृहकस्बों से प्रस्थान करना शुरू किया[44] (Pathak et al., 2017, p. 4)। इस तरह से, सेना में पदों पर शामिल होने वाले पुरुषों के पलायन की एक लंबी परंपरा की शुरुआत हुई[45] (Jain and Nagarwalla, 2004; Pathak et al., 2017; Sati, 2016)। पलायन के प्रवाह में 1890 के दशक में तब और वृद्धि हुई जब पूरे कुमाऊं क्षेत्र में रेलवे ने बेहतर आवागमन सुविधा उपलब्ध कराई (Pathak et al., 2017)। उत्तराखंड में पलायन के पैटर्न काफी पुराने हैं और अब भी आजीविकाओं के स्थायित्व के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। 2000 में उत्तराखंड के राज्य बनने के बाद ये पैटर्न और भी मज़बूत बनते गए। 2011 तक के अनुसार, राज्य में पलायन करने वालों की कुल संख्या 4,317,454 थी, जिसमें पुरुष पलायन करने वालों 1,481,307 से महिला पलायन करने वालों की संख्या अधिक 2,836,147 थी। (Census, 2011d)।

राज्य बनने से पहले, अधिकांश पलायन करने वाले पुरुष थे, जो प्रायः अपने घरों से चले जाते थे और कुछ वर्ष पश्चात फिर अपने गाँव वापस लौट आते थे (Jain, 2010; Mamgain, 2004, p. 198; Pathak et al., 2017, p. 16)। हालाँकि लगभग 2000 के बाद से पूरे परिवारों ने, पहाड़ों में अपने घरों और जमीनों को हमेशा के लिए त्यागकर स्थायी रूप से प्रवास करना शुरू कर दिया (Planning Commission, GU, 2017)। जैसा कि देशिंगकर और अक्तर ने स्पष्ट किया है, उन्नत संचार सुविधाओं और परिवहन नेटवर्कों और मैदानों में नए आर्थिक अवसरों के कारण अभूतपूर्व स्तर पर आवागमन का परिणाम सामने आया (Deshingkar and Akter, 2009)। इसके परिणामस्वरूप, वहां क्रमिक निर्जनीकरण होता गया, क्योंकि घरों में 'स्थायी तौर पर ताले लगा दिए गए' और खेत परती छोड़ दिए गए (चित्र 41 और 49 देखें)। निर्जनीकरण मायने रखता है क्योंकि यह पहाड़ी क्षेत्रों में आजीविकाओं में कमी और गंभीर होती जलवायु दशाओं का प्रत्यक्ष परिणाम है और इसके साथ ही यह पहाड़ों-मैदानों के बीच विभाजन में भी योगदान करता है जो उत्तराखंड में अनेक सामाजिक-आर्थिक विकास उपेक्षित करता है। बहिर्प्रवासन की तीव्रता और परिमाण को देखते हुए उत्तराखंड सरकार ने एक ग्रामीण विकास और पलायन आयोग गठित किया (यहां से आगे पलायन आयोग कहा गया है)। राज्य में पलायन को बेहतर समझने, ग्रामीण विकास के लिए एक दूरदर्शी नज़रिया विकसित करने और राज्य सरकार को बहु-क्षेत्रीय विकास के बारे में परामर्श देने के लिए अगस्त 2017 में यह पलायन आयोग गठित किया गया था (Rural Development and Migration Commission, 2018)।

[44] प्रथम विश्व युद्ध (1914–1918) के कारण पुरुषों का बहिर्प्रवासन तीव्र हुआ, जब अनेक युवा, सेना में भर्ती किए गए थे और यूरोप, एशिया और अफ्रीका के युद्ध के मैदानों में भेजे गए थे Pathak et al., 2017, p. 4)।

[45] जब उत्तराखंड उत्तर प्रदेश का भाग था, तब संयुक्त रूप से यहां सैन्य छावनी क्षेत्रों की संख्या, देश में सर्वाधिक थी। सेना में नौकरियां आसान थीं और पहाड़ी क्षेत्र में लोगों को इनसे रोजगार मिला, जहां अन्यथा नौकरियों के अवसर बहुत सीमित थे। वर्तमान में उत्तराखंड में छावनी क्षेत्रों की संख्या, देश में दूसरी सर्वाधिक है।

चित्र 41: उत्तराखंड में पौड़ी गढ़वाल जिले में (बायीं ओर) और अल्मोड़ा जिले में परित्यक्त कृषि भूमि (दायीं ओर)
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके, अक्टूबर 2019 में लिया गया

4.3 पलायन के कारण

उत्तराखंड में पलायन के प्रमुख कारणों में, कृषि क्षेत्र में सीमित आय-उपार्जन के अवसर तथा पहाड़ियों में आजीविकाएं विविधीकृत करने की सामान्य अक्षमता, शामिल हैं। (Hoffmann et al., 2019; Jain, 2010; Mamgain and Reddy, 2016; Rural Development and Migration Commission, 2018; Tiwari and Joshi, 2016)। उदाहरण के लिए, पलायन आयोग द्वारा संकलित किए गए डाटा के अनुसार पलायन, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अपर्याप्त अवसरों से संबंधित है (देखें चित्र 42) (Rural Development and Migration Commission, 2018)। 2010 में आईसीआईएमओडी द्वारा पलायन के प्रेरकों पर किए गए एक अध्ययन में भी आजीविकाओं के अभाव (90% उत्तरदाता) तथा कृषि में घटती रूचि (43%) को पलायन के मुख्य कारणों के रूप में चिन्हित किया गया है (Jain, 2010)। कम कृषि उत्पादकता भी एक महत्त्वपूर्ण प्रेरक कारक के रूप में प्रकट होती है। कृषि उत्पादकता और फसल उपजों में कमी, राज्य में पलायन में सीधे योगदान करती है। यह जलवायु प्रभावों, आजीविकाओं और पलायन के बीच संबंध को रेखांकित करता है। तिवारी और जोशी द्वारा 4,000 उत्तरदाताओं पर किया गया एक क्षेत्रीय सर्वेक्षण इसकी पुष्टि करता है। उन्होंने पाया कि पलायन न केवल सीमित आजीविकाओं (27% उत्तरदाता) और घटती कृषि उत्पादकता (21%) से, बल्कि चरम मौसम घटनाओं और प्राकृतिक आपदाओं (11%) (Tiwari and Joshi, 2016)।

उत्तराखंड में पलायन के अन्य कारण भी हैं। चित्र 42 यह दिखाता है कि शिक्षा (15.12%), स्वास्थ्य (8.83%) और अवसंरचनात्मक (3.74%) सुविधाओं का महंगा हो जाना, राज्य में लगभग एक-चौथाई पलायन के लिए उत्तरदायी है (Rural Development and Migration Commission, 2018)। जंगली भालुओं और बंदरों द्वारा फसलें उजाड़े जाने का सीधा असर खेती से आय और स्थायित्व पर पड़ता है और ये कारण पलायन हेतु उत्तरदायी (5.61%) है। भूमि की उत्पादकता में और अधिक कमी और फसल उपजों में गिरावट भी राज्य में बहिर्प्रवासन में योगदान करती (5.44%) हैं। अंत में, कुछ लोग परिवार के अन्य सदस्यों की देखादेखी प्रवास कर जाते हैं (2.52%) (ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018)।

पर्वतों की भौगोलिक बाधाएं, पलायन में हस्तक्षेप करने वाले कारक रही हैं। जोधा (1992) ने इन बाधाओं को 'पर्वतीय विशिष्टताएं' बताया है जो पर्वतीय क्षेत्रों की लाक्षणिक दशाएं हैं। ये विशेषताएं 'अनभिगम्यता', भंगुरता और सीमांतता' हैं (Jodha, 1992, p. 44)। ढाल, ऊंचाई, भूभाग और आवधिक मौसमी खतरों के कारण अनभिगम्यता है। यह पृथक्करण, बिखरी हुई बस्तियों, बाहरी दुनिया से सीमित संपर्कों तथा कमज़ोर संवाद के रूप में परिलक्षित होती है। (Jodha, 1992, p. 44), जो जनसंख्या की गतिविधियों और आजीविका पैटर्नों को प्रभावित करते हैं। भंगुरता का अर्थ 'सीमित स्तर के व्यवधान को सहन करने' में पर्वतीय क्षेत्रों की सीमित सामर्थ्य से है (Jodha, 1992, p. 45), जो पर्वतीय संसाधनों, पर्यावरण और आजीविकाओं पर क्रमिक प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। अनभिगम्यता और भंगुरता दोनों के परिणामस्वरूप सीमांतता या 'मुख्यधारा की गतिविधियों के पैटर्न' में भाग लेने से अपवर्जन का परिणाम उत्पन्न होता है (Jodha, 1992, p. 45), जिससे ऐसे स्थानों पर व्यापार की शर्तें प्रतिकूल हो जाती हैं। इन विशिष्ट भौगोलिक और क्षेत्रीय विशेषताओं के कारण निम्न आर्थिक अवसर, पर्यावरणीय निम्नीकरण और आजीविका असुरक्षा, उत्पन्न हो सकते हैं, जो सभी पलायन का कारण बन सकते हैं (GU, 2018)।

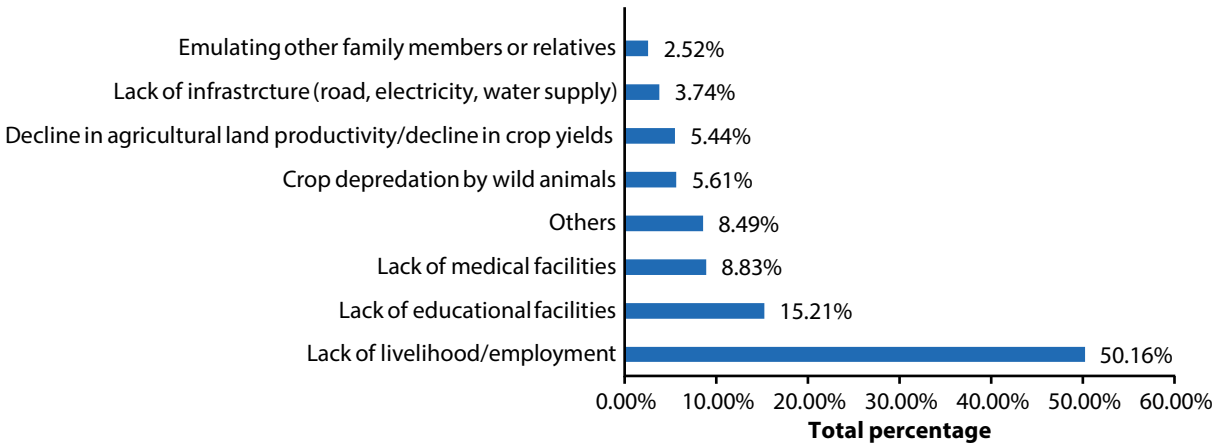

चित्र 42: पलायन के कारण
डेटा स्रोत: ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके

4.4 पलायन करने वालों के गंतव्य स्थल: जिलों के बीच बनाम राज्यों के बीच आवागमन

उत्तराखंड में बड़े पैमाने पर पलायन छोटी दूरियों का होता है, जहां लगभग 70% पलायन करने वाले, राज्य के अंदर ही आवागमन करते हैं (Rural Development and Migration Commission, 2018) (देखें चित्र 43)। पलायन आयोग के अनुसार, उत्तराखंड में लोग निम्न गंतव्य स्थलों के लिए प्रवास करते हैं (देखें तालिका 7):

- अंतर्जिला (एक जिले से दूसरे में): 35.69%
- अंतः जिला (एक ही जिले में)
  - नजदीकी कस्बों को: 19.46%
  - जिला मुख्यालयों को: 15.18%
- अंतरराज्यीय पलायन: 28.72%
- अंतर्राष्ट्रीय पलायन: 0.96%

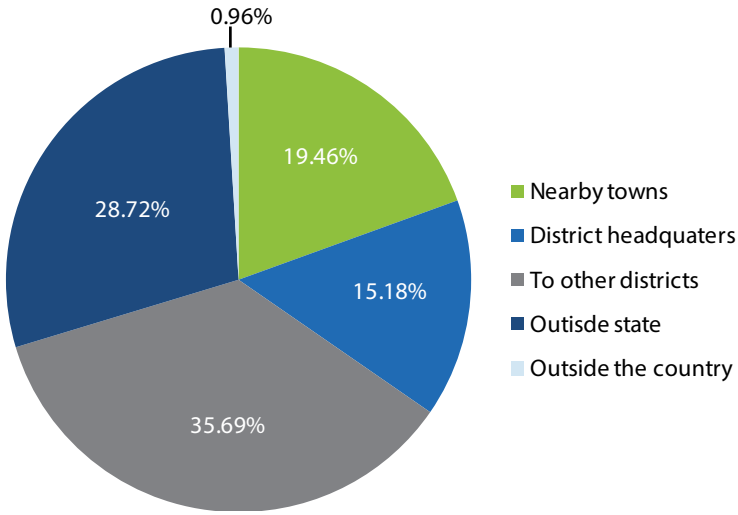

चित्र 43: पलायन के कारण
डेटा स्रोत: ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके

शहरी केंद्र, पलायन करने वालों के महत्त्वपूर्ण गंतव्य स्थल हैं। देहरादून, हरिद्वार और नैनीताल जिलों में आर्थिक वृद्धि और शहरीकरण का उच्च स्तर है और यह पलायन करने वालों के सर्वाधिक प्रतिशत भाग को आकर्षित करते हैं (Rural Development and Migration Commission, 2018)। उत्तरकाशी जिला, यद्यपि शहरीकृत नहीं है, लेकिन यह लगभग 39% पलायन करने वालों का गंतव्य स्थल है।

तालिका 7: जिला-वार पलायन के गंतव्य स्थल (%)

जिला	निकटवर्ती कस्बों को (%)	जिला मुख्यालयों को (%)	अन्य जिलों को (%)	राज्य के बाहर (%)	देश के बाहर (%)
उत्तरकाशी	39.14	20.27	22.37	17.34	0.89
चमोली	19.79	13.34	50.48	15.88	0.51
रूद्रप्रयाग	19.34	12.66	40.51	25.69	1.8
टिहरी गढ़वाल	17.73	9.42	40.78	28.98	3.09
देहरादून	57.12	23.67	8.08	10.46	0.67
पौड़ी गढ़वाल	19.61	9.55	36.15	34.15	0.54
पिथौरागढ़	15.7	33.07	34.33	16.67	0.23
बागेश्वर	15.45	22	37.19	25.18	0.19
अल्मोड़ा	7.13	13	32.37	47.08	0.43
चम्पावत	14	16.86	36.24	32.59	0.3
नैनीताल	35.49	17.93	21.47	24.64	0.47
ऊधम सिंह नगर	27.48	8.48	28.04	31.11	4.89
हरिद्वार	44.27	18.29	16.1	20.85	0.49

स्रोत: ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018

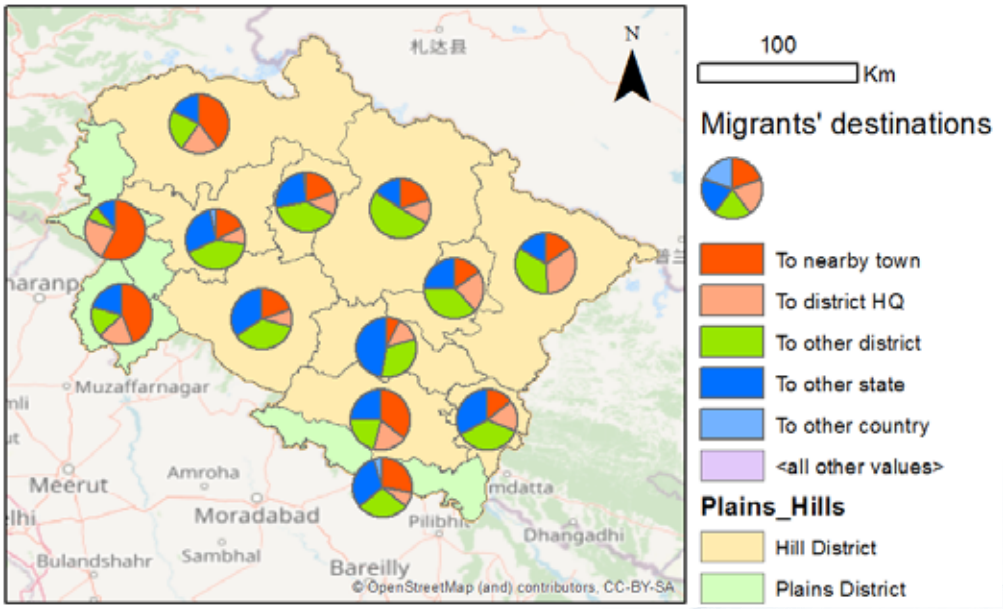

चित्र 44: जिले के आधार पर पलायन करने वालों के गंतव्य स्थल
डेटा स्रोत: ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018
चित्र साभार: रिकार्डो बिएला, पीआईके

4.5 पलायन करने वालों का आयु प्रोफाइल

आयु में कमी के साथ प्रसार की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है। मध्यम आयु या वृद्ध आयु के लोगों की तुलना में युवाओं में प्रवास की आवृत्ति अधिक होती है (Boneva and Frieze, 2001; Frieze et al., 2006)। ऐसा कदाचित इसलिए है क्योंकि अपेक्षित लाभ, आयु से व्युत्क्रम रूप से सहसंबंधित होते हैं: पलायन से अधिक प्रतिफल की आशा करने वाले व्यक्ति यथासंभव शीघ्र ही प्रवास कर जाते हैं (Becker and Morrison, 1997)। उत्तराखंड का पलायन डाटा दर्शाता है कि 42% पलायन करने वालों की आयु 26 और 35 वर्ष के बीच है, 29% की आयु 35 वर्ष से अधिक है और अन्य 29% की आयु 25 वर्ष या इससे कम है (देखें चित्र 45)। जिला-वार प्रसार के लिए, देखें चित्र 46.

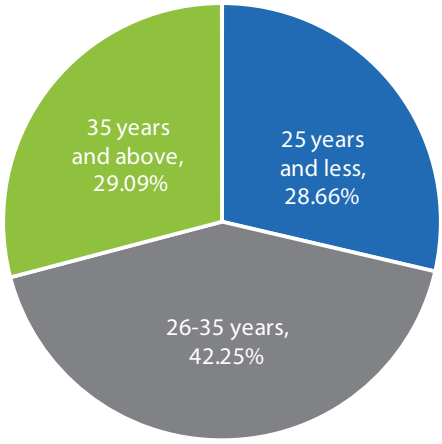

चित्र 45: उत्तराखंड के आयु-वार पलायन विवरण
डेटा स्रोत: ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके

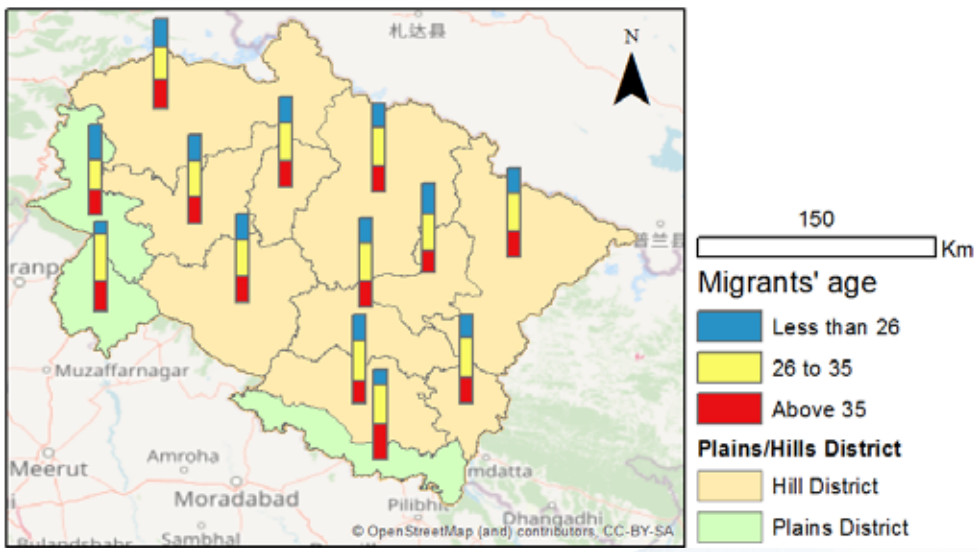

चित्र 46: जिले के आधार पर पलायन करने वालों की आयु
डेटा स्रोत: ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018
चित्र साभार: रिकार्डो बिएला, पीआईके

4.6 उजाड़ गाँव और निर्जनीकरण

पलायन के कारण उत्तराखंड में बड़ी संख्या में गाँव उजाड़ होते जा रहे हैं। 2011 की जनगणना और पलायन आयोग के 2018 के सर्वेक्षण से इस परिघटना को अभिलिखित करने में मदद मिलती है। जनसंख्या की जनगणना के अनुसार, 2011 में उत्तराखंड में 16,793 में से 1,048 गाँव उजाड़ हो गए थे (Census, 2011a)। ये उजाड़ गाँव कुल राजस्व गाँवों का 6.24% प्रतिशत हैं[46]। पलायन आयोग द्वारा निर्जनीकरण गणना, 2011 की जनगणना से अक्षुण्ण रही है: पलायन आयोग द्वारा 2018 में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार राज्य में 2011 से 734 गाँव उजाड़ हो गए हैं (Rural Development and Migration Commission, 2018, p. 52)। ये गाँव सभी जिलों में विस्तृत हैं (देखें चित्र 47) (Rural Development and Migration Commission, 2018) और प्रायः 'भुतहे गाँव' कहे जाते हैं (Press Trust of India, 2018; Upadhyay, 2018; Venkatesh, 2016)।

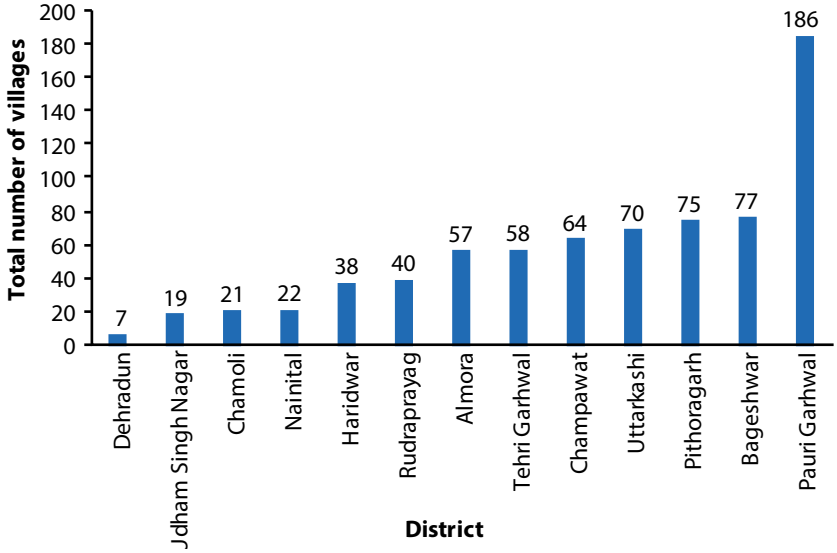

चित्र 47: आवासित गाँवों की जिला-वार संख्या (2011 के बाद निर्जनीकृत हुए)
डेटा स्रोत: ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018

हालाँकि निर्जनीकरण उत्तराखंड के सभी जिलों में हुआ है, लेकिन यह मैदानी की अपेक्षा पहाड़ी जिलों में अधिक स्पष्ट दिखता है (देखें चित्र 48 जो जिले की जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में बहिर्प्रवासन का वितरण दर्शाता है, जैसा कि पलायन की स्थिति पर अंतरिम रिपोर्ट में सूचित किया गया है) (Rural Development and Migration Commission, 2018, pp. 28–33)।

[46] राजस्व ग्राम की अवधारणा, अंग्रेजी भारतीय प्रशासन के दौरान लागू की गई। इसे लगान वसूल करने की प्रक्रिया के लिए डिज़ाइन किया गया था, यह और ग्राम नियोजन और विकास के लिए नहीं थी। ग्रामीण क्षेत्रों में सबसे छोटा आवासित क्षेत्र अर्थात गाँव, सामान्यतः राजस्व ग्राम की सीमाओं का अनुसरण करता है। एक राजस्व ग्राम में कई मजरे/पुरवे हो सकते हैं। पूरा राजस्व ग्राम एक इकाई होगा। प्रत्येक राजस्व ग्राम की एक निश्चित सर्वेक्षित सीमा होती है और प्रत्येक गाँव, पृथक ग्राम खातों के साथ एक पृथक प्रशासनिक इकाई होता है। (Source: Census, 2011e; Ramachandraiah, 1995)।

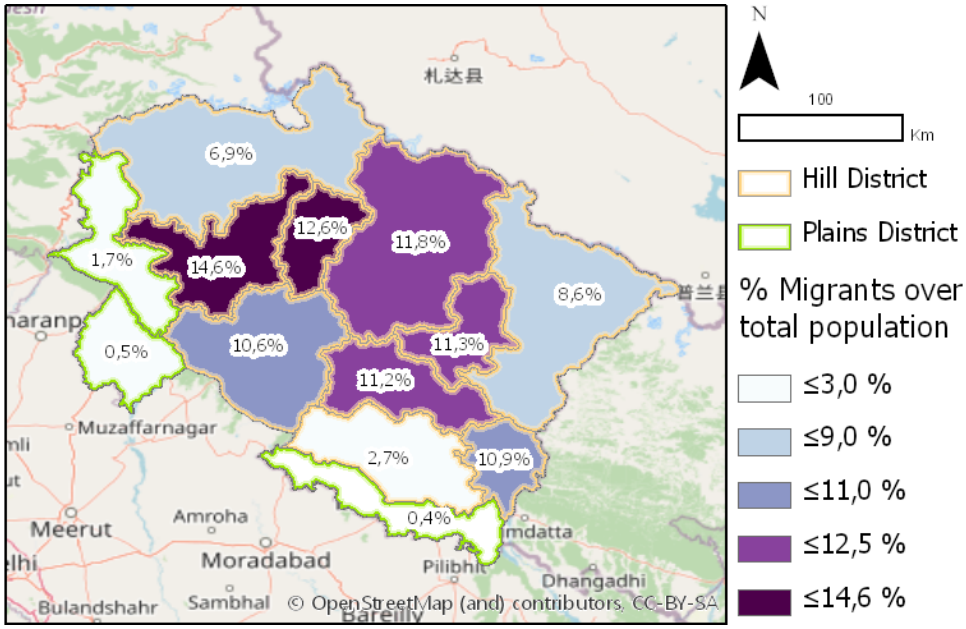

चित्र 48: कुल जनसंख्या में बहिर्पलायन करने वालों का जिलावार प्रतिशत
डेटा स्रोत: ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018; जनगणना 2011
चित्र साभार: रिकॉर्डो, बिएला, पीआईके

पलायन आयोग ने पाया कि उजाड़ गाँवों में निम्न में से एक या अधिक सुविधाओं का अभाव है: 1) सड़क संपर्क, 2) विद्युत शक्ति पारेषण, 3) 1 किमी के दायरे में पेयजल सुविधा तक पहुँच और 4) प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की उपलब्धता (तालिका 8)। सरल रूप में, निर्जनीकरण पहाड़ी जिलों में अनिवार्य अवसंरचना तथा सेवाओं के अभाव से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। 2011 से उजाड़ हुए 734 गाँवों में से 660 में

चित्र 49: पौड़ी गढ़वाल जिले, उत्तराखंड में परित्यक्त घर
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके, अक्टूबर 2019 में लिया गया

प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र का अभाव था; 482 में कोई सड़क संपर्क सुविधा नहीं थी; 399 में 1 किमी के दायरे में पेयजल सुविधा तक पहुँच नहीं थी और 358 विद्युतीकृत नहीं थे। चित्र 49 पौड़ी गढ़वाल जिले में परित्यक्त घरों को दिखाता है। पलायन आयोग द्वारा संकलित डाटा के अनुसार, तालिका 8 में 2011 के बाद निर्जनीकृत हुए गाँवों की कुछ विशेषताएं दर्ज हैं।

तालिका 8: 2011 के बाद निर्जनीकृत हुए राजस्व गाँव/पुरवा/मोहल्ले और उनकी विशेषताएं

जिला	उजाड़ गाँव/ मज़रे/पुरवे (2011 के बाद)	सड़क संपर्क सुविधा से रहित गाँव/मज़रे/पुरवे	विद्युतीकरण से रहित गाँव/ मज़रे/पुरवे	1 किमी. के दायरे में पेयजल सुविधा से रहित गाँव/मज़रे/ पुरवे	प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र से रहित गाँव/ मज़रे/पुरवे
उत्तरकाशी	70	38	17	30	56
चमोली	41	33	35	26	41
रूद्रप्रयाग	20	14	5	7	17
टिहरी गढ़वाल	58	44	33	33	58
देहरादून	7	3	5	5	7
पौड़ी गढ़वाल	186	126	84	97	164
पिथौरागढ़	75	44	53	45	74
बागेश्वर	77	39	27	49	62
अल्मोड़ा	57	42	21	30	53
चम्पावत	64	56	43	32	61
नैनीताल	22	15	10	10	20
ऊधम सिंह नगर	19	13	5	15	19
हरिद्वार	38	15	20	20	28
उत्तराखंड	734	482	358	399	660

कुछ जिलों में, जनसंख्या लगभग 50% तक कम हो गई है (देखें चित्र 50)। अधिक विशिष्ट रूप में, पलायन आयोग के डाटा के अनुसार, 565 गाँवों में 2011 के बाद से जनसंख्या आधी रह गई है।

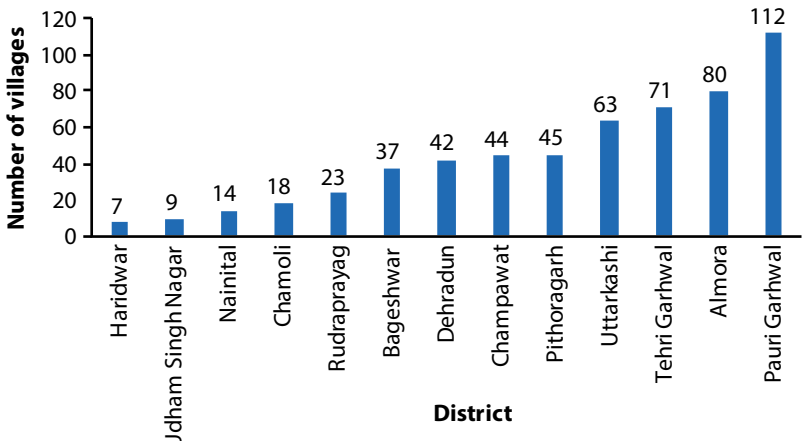

चित्र 50: ऐसे गाँवों की जिला-वार संख्या जहां जनसंख्या में 2011 के बाद 50% से अधिक कमी आई है
डेटा स्रोत: ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके

4.7 पलायन के परिणाम

लैंगिक प्रभाव

बीते वर्षों में, महिलाओं के पलायन में वृद्धि हुई है। बीते वर्षों में, महिलाओं के पलायन में वृद्धि हुई है। 2011 की जनगणना, महिला पलायन करने वाले कामगारों की बढ़ती संख्या पर प्रकाश डालती है। उत्तराखंड में पलायन करने वालों की संख्या लगभग 4.3 मिलियन थी जिसमें पुरुष पलायन करने वालों (1.5 मिलियन लगभग) के सापेक्ष महिला पलायन करने वालों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक (2.8 मिलियन लगभग) पाई गई (Census, 2011)।

हालाँकि पुरुषों के प्रवास कर जाने के बाद पहाड़ों में घरों में रह जाने वाली महिलाओं के लिए अधिक अवसर तथा उसके साथ अधिक जिम्मेदारियां भी उपस्थित होती हैं। एक ओर तो नियमित दैनिक घरेलू कार्यों जिसमें वनों से जलाने की लकड़ी लाना, मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन, पशुओं के लिए चारा, पानी लाना, खाना पकाना, साफ-सफाई और बुजुर्गों व बच्चों की देखभाल आदि शामिल हैं, के अलावा महिलाएं कृषि का अतिरिक्त कार्य भी करती हैं ('कृषि का महिलाकरण') (देखें चित्र 51) (Agarwal, 2010; Maithani, 1996)। और जलवायु परिवर्तन के कारण संसाधनों के अपक्षय से महिलाओं पर कार्यभार और अधिक बढ़ गया है, जिससे उनको जोखिमों और संसाधनों का प्रबंधन करने में अधिक समय लगता है (Bhandari and Reddy, 2015; GU, 2014; Sherpa, 2007)।

चित्र 51: महिलाएं चारा लेकर जाती हुई (बायीं ओर) और महिलाएं फसल कटाई के बाद के कार्य करती हुई (दायीं ओर), अल्मोड़ा जिला, उत्तराखंड
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके, नवम्बर 2019 में लिया गया

इन दशाओं में महिलाएं, 'प्रमुख संसाधन विकासकर्ता' बन जाती हैं (Tiwari and Joshi, 2016, p. 331)। उत्तराखंड में पुरुष पलायन के कारण न केवल धनप्रेषण के माध्यम से ग्रामीण अर्थव्यवस्था लाभान्वित होती है, बल्कि यह महिलाओं के लिए शिक्षा, विकास के अवसरों, नेतृत्व, निर्णय-सृजन शक्ति और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन तक पहुँच में सुधार के द्वारा उनके सशक्तिकरण में भी अप्रत्यक्ष योगदान करता है।

महिलाओं की सामना करने की प्रणालियां, कृषि पर जलवायु की वृद्धिशील दशाओं के प्रभावों के अनुसार समायोजित करनी होती हैं। ऊपरी कोसी कैचमेन्ट में तिवारी और जोशी द्वारा आयोजित, दस गाँवों के एक सर्वेक्षण में यह पाया गया कि घटती कुल वर्षा और वर्षायुक्त दिनों की घटती संख्या के बावजूद महिलाओं ने कृषि उत्पादकता का न्यूनतम स्तर बनाए रखने के लिए अनेक अनुकूलन उपाय[47] विकसित किए हैं (Tiwari and Joshi, 2016)। पुरुषों के पलायन के कारण महिलाओं पर सकारात्मक परिणाम, पहाड़ी जिलों में उच्चतर जेंडर विकास सूचकांक (जीडीआई) को स्पष्ट करने में सहायक हैं, जैसा कि अनुभाग 2.2 में चर्चा की गई है। हालाँकि, इस गतिशीलता को बेहतर समझने के लिए अभी और अधिक अनुसंधान किए जाने की ज़रूरत है।

खेत से अन्य गतिविधियों की दिशा में बदलाव

जनसंख्या का खेत से अन्य व्यवसायों की दिशा में बदलाव, पलायन का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम है। पलायन के पहले और बाद में व्यवसाय की तुलना करने वाले एक अध्ययन में यह उल्लेख किया गया है कि पलायन से पहले अधिकांश पलायन करने वाले प्राथमिक क्षेत्र (कृषि और सहायक गतिविधियां) में कार्यरत थे। पलायन के बाद, अधिकांश तृतीयक क्षेत्र (होटलों, सरकारी नौकरियों, दुकानों आदि) में कार्यरत थे। (Hoffmann et al., 2019)। इसी प्रकार, उत्तराखंड के छह जिलों में 951 घरों से संकलित डाटा, ग्रामीण पर्वतीय समुदायों में, छोटे पैमाने के निर्वाह स्तर के किसानों से, खेत के बजाय अन्य पलायन करने वाले कामगारों के रूप में सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता में परिवर्तन के साक्ष्य प्रदान करता है (Naudiyal et al., 2019)। पलायन के कारण जनसंख्या के व्यवसायों में महत्त्वपूर्ण रूपांतरण होता है। कृषि श्रमिकों की कमी और तृतीयक क्षेत्र में परिणामी वृद्धि एक सामाजिक-आर्थिक चक्र का अंग हैं, जिसमें राज्य के वर्तमान और संभावित भावी विकास की रूपरेखा छिपी हुई है।

धन प्रेषण

उत्तराखंड के सामाजिक-आर्थिक विकास में धनप्रेषण की अभिन्न भूमिका है। इस राज्य को इसकी 'मनी आर्डर अर्थव्यवस्था' के लिए जाना जाता है, जहां पलायन करने वालों द्वारा डाक मनी आर्डरों के माध्यम से अपने मूल घरों को पैसा भेजा जाता है (Dhyani, 1994)। निर्वाह कृषि में गिरावट ने पहाड़ी समुदायों को आय के स्रोत विविधीकृत करने और नकदी-आधारित अर्थव्यवस्थाओं पर निर्भरता बढ़ाने के लिए विवश किया है (Mehta, 2014)। एचडीआर 2018 सर्वेक्षण[48] में यह प्रकट हुआ कि 75.5% पलायन करने वालों ने प्रायः मासिक आधार पर (42%) – अपने मूल स्थान को पैसे भेजे (GU, 2018)। पहाड़ी जिलों चम्पावत, चमोली और रूद्रप्रयाग में तथा मैदानी जिलों देहरादून और हरिद्वार में यह अनुपात और भी अधिक, लगभग 80% या इससे भी अधिक था। कहने की आवश्यकता नहीं कि स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं पर धनप्रेषण के प्रभाव निर्विवाद रहे हैं। प्रेषित अधिकांश धन का उपयोग दैनिक घरेलू उपभोग की आवश्यकताएं जैसे कि भोजन और कपड़े के लिए किया जाता है, जिसके बाद शिक्षा और स्वास्थ्य पर खर्चों का स्थान आता है और कुछ धनराशि का उपयोग कृषि मजदूरी का भुगतान करने और कृषि से संबंधित अन्य खर्चों को पूरा करने के लिए किया जाता है (Jain, 2010; Mamgain and Reddy, 2016)। और अतएव

[47] इस अध्ययन में, ग्रामीण महिलाओं द्वारा उपयोग किए जा रहे अनुकूलन के उपायों का वर्णन है: '27% महिलाओं ने जल संरक्षण वानिकी और बागवानी विधियों का प्रयोग करते हुए अपने जल स्रोतों का पुनर्भरण किया; इसी प्रकार 19% घरों की महिलाओं ने ऐसी फसलों की खेती की जो सूखा प्रतिरोधी या कम जल सघनता वाली थीं; 25% महिला किसानों ने पारंपरिक जल संसाधन प्रबंधन प्रणालियों पर आधारित, स्थानीय स्तर पर प्रभावी वर्षा जल संग्रहण प्रणालियों को विकसित तथा प्रयोग करते हुए, घटते जल संसाधनों का धारणीय प्रबंधन किया; 21% महिला मुखिया वाले परिवारों ने पारंपरिक फसल पैटर्नों में बदलाव किए और फसल चक्र को समायोजित किया; वर्षा की अनिश्चितता वाली दशाओं में खाद्य उत्पादन में वृद्धि करने के लिए, महिलाओं वाले परिवारों (11%) ने परती छोड़ी गई कृषि भूमि पर खेती की' (Tiwari and Joshi, 2016, p. 343)।

[48] सर्वेक्षण में 8450 परिवारों को शामिल किया गया। नमूने के लिए कुल जनसंख्या 2,482,333 थी।

एक नियमित मौद्रिक प्रवाह के बावजूद, धनप्रेषण से गाँव की स्थानीय अर्थव्यवस्था पर क्रमिक प्रभाव नहीं उत्पन्न हुआ जैसा कि अन्य राज्यों जैसे कि केरल और बिहार में देखा गया है (Deshingkar and Farrington, 2009)। ऐसा प्रतीत होता है कि धनप्रेषण से न तो उच्चतर पूँजी निर्माण हुआ, न ही कृषि में इसे निवेश किया गया। अतएव उत्तराखंड के संदर्भ में उनकी सीमित रूप से दृष्टिगोचर प्रभावशीलता को समझने के लिए, कृषि पर धनप्रेषण के प्रभावों के बारे में अधिक अनुसंधान आवश्यक हैं।

उत्तराखंड में पलायन पर प्रकाशित साहित्य, राज्य के सामाजिक-आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों का एक जटिल चित्र उपस्थित करता है। बदलती जलवायु दशाएं, जैसे कि अनियमित तापमान, बदलती फसल ऋतुओं और परिणामस्वरूप उत्पादकता में हानि, शहरी केंद्रों की ओर पलायन करने वालों के नियमित प्रवाह की आंशिक रूप से व्याख्या करती हैं। इसके परिणामस्वरूप, कृषि से तृतीयक क्षेत्र में रोजगार की ओर क्रमिक बदलाव ने पहाड़ों-मैदानों के बीच विभाजन को और तीव्र बना दिया है। जहां मुख्य शहरी केंद्रो में अर्थव्यवस्था वृद्धि कर रही है और विविधीकृत हो रही है, वहीं संसाधनों और सेवाओं तक पहुँच के संदर्भ में पहाड़ी जिले पिछड़ेपन का सामना कर रहे हैं। बढ़ते पृथक्करण और, पहाड़ी जनसंख्या द्वारा अनुभव की जाने वाली असहायता के इस वृत्तांत में जलवायु परिवर्तन से संबंधित अनेक कठिनाइयों के उदाहरण परिलक्षित होते हैं। उन्नत लैंगिक संकेतक तथा धनप्रेषण, इन रूपांतरणों के संभावित सकारात्मक पहलुओं को रेखांकित करते हैं; लेकिन बदलती जलवायु और अन्य सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कारकों के प्रतिकूल सामाजिक-आर्थिक प्रभाव निर्विवाद होने के साथ दूरगामी भी हैं। जलवायु परिवर्तन और पलायन के बीच संबंध के बारे में अगले अनुभाग में अधिक विस्तार से चर्चा की गई है। इस अनुभाग में चर्चा किए गए मुख्य बिंदुओं का सारांश चित्र 52 में दिया गया है।

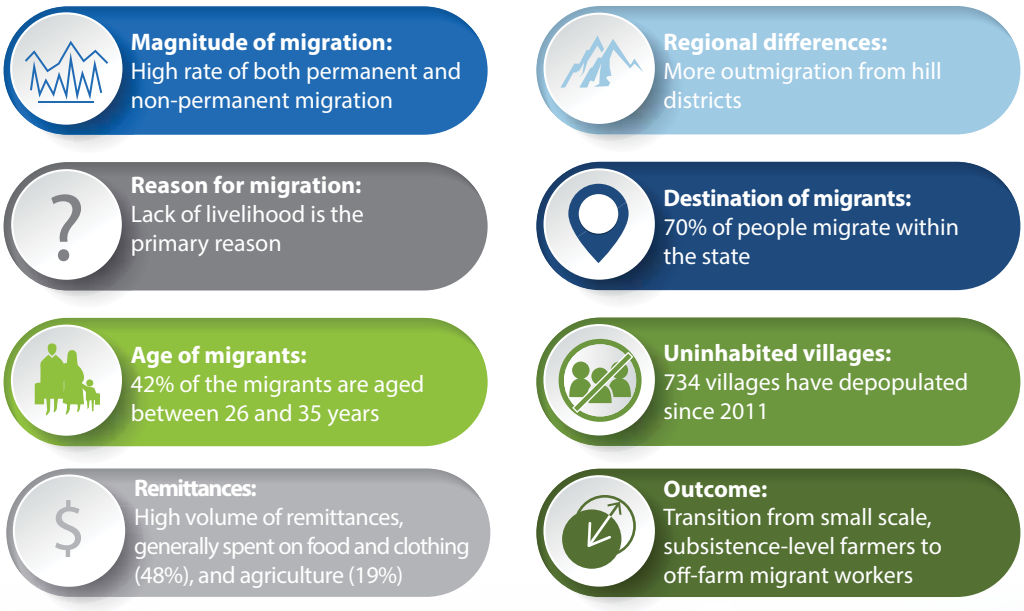

चित्र 52: उत्तराखंड में पलायन का अवलोकन
डेटा स्रोत: जनगणना, 2011; ग्रामीण विकास और पलायन आयोग, 2018; जैन 2010
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके

जलवायु परिवर्तन और पलायन

उत्तराखंड भारत में आदमी अपना खेत जोतते हुए।

© शटरस्टॉक/डेनियल प्रूडेक

5 जलवायु परिवर्तन और पलायन

जलवायु परिवर्तन और पलायन के बीच संबंध जटिल हैं (White, 2011), लेकिन उनको समझना, विज्ञान नीति और समाज के लिए काफी उपयोगी होगा (Piguet, 2010; Warner et al., 2010)। इस बारे में नीतिगत या अनुसंधान संबंधी सहमति कम है कि अनेक लोग किस तरह से जलवायु परिवर्तन के कारण प्रवास करने के लिए विवश होंगे, लेकिन इस बारे में सामान्य सहमति है कि यह पलायन के मौजूदा पैटर्नों को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित करेगा और यह कि विकासशील देश इससे सर्वाधिक प्रभावित होंगे (ADB, 2009; Foresight, 2011a; Rigaud et al., 2018)। जलवायु परिवर्तन प्रभाव अनुसंधान में, पलायन को पहले 1990 में आईपीसीसी द्वारा उल्लेखित किया गया था जिसने जोर दिया था कि 'जलवायु परिवर्तन के सबसे गंभीर प्रभाव मानवीय पलायन के रूप में हो सकते हैं क्योंकि तटरेखाओं के अपरदन, तटवर्ती बाढ़ों तथा गंभीर सूखे के कारण लाखों लोगों को विस्थापित होना पड़ा है' (IPCC, 1990:103)। आईपीसीसी ने आगे कहा है कि 'निम्न में से किसी एक मामले में लोग प्रवास करने का निर्णय ले सकते हैं: आवास का नुकसान [...],जीवनयापन के संसाधनों का नुकसान [...], सामाजिक और सांस्कृतिक संसाधनों का नुकसान [...]' (IPCC, 1990b, p. 5–9)। 2011 से इस विषय ने अकादमिक अनुसंधानों में महत्त्व हासिल किया, जब फोरसाइट की रिपोर्ट[49] ने जलवायु परिवर्तन और पलायन के बीच संबंधों के मौजूदा साक्ष्यों का एक समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत किया। रिपोर्ट में उल्लेख किया गया कि जलवायु परिवर्तन मौजूदा पलायन प्रक्रियाओं को प्रभावित करेंगे और यह कि पर्वतीय क्षेत्रों सहित कुछ प्रमुख पारिस्थितिक क्षेत्रों के लिए पलायन और पर्यावरणीय परिवर्तनों के बीच संबंधों को समझना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है (Foresight, 2011b, p. 11)। दिसम्बर 2018 में – सुरक्षित, क्रमबद्ध और नियमित पलायन के लिए वैश्विक समझौता (जीसीएम) भारत सहित 152 देशों द्वारा अपनाया गया। पलायन पर इस अंतर्राष्ट्रीय रूप से सहमति प्राप्त दस्तावेज़ में इसे मान्यता दी गई कि 'पलायन के आवागमन, जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों के परिणाम हो सकते हैं' (United Nations, 2018, p. 10/36)।

जलवायु परिवर्तन पहले से मौजूदा जनसंख्या के आवागमन को प्रभावित कर सकता है। जलवायु परिवर्तन मंद और क्रमिक परिवर्तनों, जैसे कि बढ़ते तापमान, वर्षा के बदलते पैटर्न, सूखा, समुद्र स्तर में बढ़ोत्तरी और तटवर्ती अपरदन आदि के रूप में परिलक्षित हो सकता है। प्रभाव अचानक और विध्वंसकारी हो सकते हैं, जैसे कि बाढ़, चक्रवात और नदी अपरदन आदि। दोनों प्रकार के परिवर्तन, पलायन को विभिन्न तरीकों से प्रभावित कर सकते हैं। अचानक, चरम परिवर्तन प्रभावित जनसंख्या को कम से कम अस्थायी रूप से उनके घर छोड़ने पर विवश कर सकते हैं, जिससे बड़े पैमाने पर आवागमन होते हैं, लेकिन उनमें वापसी प्रायः व्यावहारिक होती है। इसके विपरीत रूप से, क्रमिक परिवर्तनों के कारण पर्यावरणीय, सामाजिक-आर्थिक और सामाजिक-सांस्कृतिक दशाओं का क्षरण हो सकता है जिससे – इन प्रक्रियाओं के अनुत्क्रमणीय (न बदले जा सकने वाले) प्रभावों को देखते हुए – अधिक स्थायी पलायन हो सकता है। बदलती जलवायु दशाओं के अंतर्गत लोग कब, क्यों और कैसे प्रवास करते हैं, ये जटिल प्रश्न हैं। ऐसे मामलों में भी, जहां पलायन का मुख्य प्रेरक पर्यावरण हो, इसके साथ प्रायः सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और अन्य कारक जुड़े रहते हैं (Black et al., 2011; Foresight, 2011a; Siddiqui et al., 2019)। चित्र 53 में जटिल संदर्भगत प्रेरक दर्शाए गए हैं, जिनके कारण पलायन हो सकता है। उदाहरण के लिए, जलवायु परिवर्तन कृषि - आधारित आजीविकाओं, ग्रामीण मज़दूरियों, कृषि कीमतों, खतरों के प्रति संपर्क तथा पारितंत्र सेवाओं पर असर डालते हुए इसे प्रभावित

[49] यू.के. के सरकारी विज्ञान कार्यालय द्वारा आयोजित की गई इस रिपोर्ट में, मूल क्षेत्रों और गंतव्य क्षेत्रों में पलायन करने वालों, जनता तथा नीतिनिर्माताओं के लिए विविध चुनौतियों और अवसरों पर ध्यान केंद्रित करने के साथ, वर्तमान और 2060 के बीच विश्व भर में मानवीय जनसंख्या के आवागमन, वैश्विक पर्यावरणीय परिवर्तनों से किस तरह प्रभावित हो सकते हैं, इस बारे में एक दूरदर्शी नज़रिया विकसित करने के लिए सर्वोत्तम उपलब्ध विज्ञान और साक्ष्यों का मूल्यांकन करने का ध्येय रखा गया

कर सकता है। लेकिन पलायन के इन प्रेरकों की उपस्थिति का यह अर्थ नहीं है कि पलायन अनिवार्य रूप से होगा: यह निजी और पारिवारिक विशिष्टताओं के साथ आपस में गुंथे अनेक कारकों पर निर्भर करता है। रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया है कि 'जलवायु परिवर्तन द्वारा पलायन की रोकथाम करने की भी उसी प्रकार संभावना होती है, जिस प्रकार से यह पलायन का कारण बनता है' (Foresight, 2011b, p. 12)। जैसे कि, जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादकता पर विनाशकारी प्रभाव पड़ सकता है तथापि यह महत्त्वपूर्ण परिसंपत्तियों को

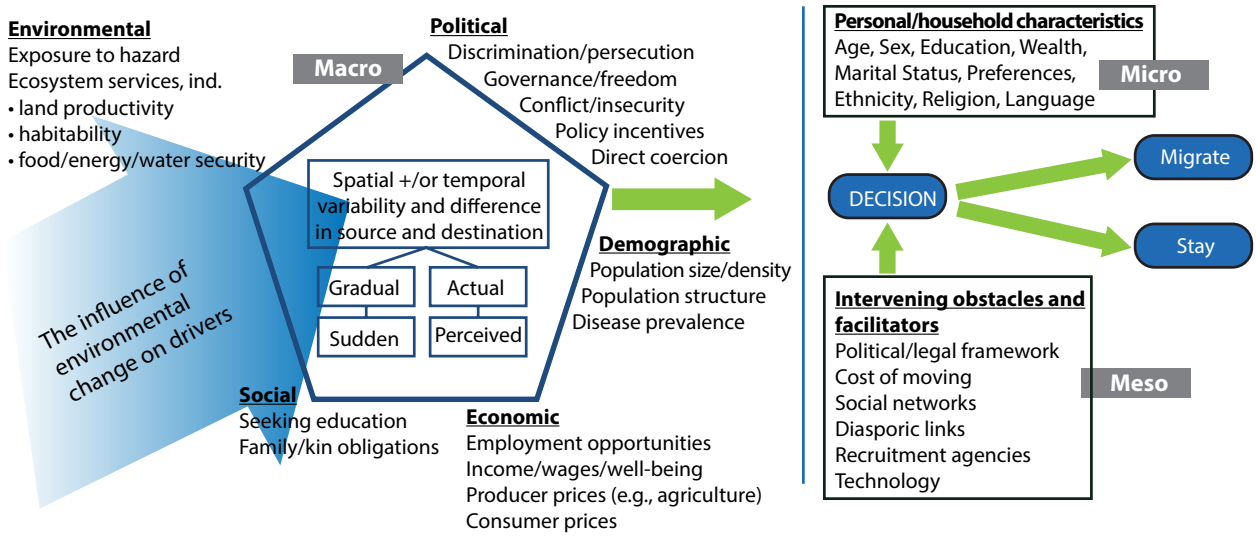

चित्र 53: अवधारणात्मक रूपरेखा, पलायन के प्रेरक और पर्यावरणीय परिवर्तन का प्रभाव दर्शाती है
डेटा स्रोत: फोरसाइट रिपोर्ट 2011

नष्ट करके प्रभावित परिवारों की पलायन लागत वहन करने की क्षमताएं प्रभावित करते हुए कम कर सकता है, जिससे वे और भी अधिक असुरक्षित बन जाते हैं।

पलायन, जलवायु परिवर्तन के प्रति अपनी असुरक्षा दूर करने के लिए ग्रामीण परिवारों की एक रणनीति है (McLeman and Smit, 2006)। हालाँकि, पलायन के अपने जोखिम और लागतें हैं, जैसे कि, लोगों के ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में आने पर भी उनकी असुरक्षा कम नहीं हो सकती है (Jacobson et al., 2018)। उदाहरण के लिए, जलवायु परिवर्तन के खतरों के कारण लोग, ग्रामीण क्षेत्रों से आकर शहरी मैदानी क्षेत्रों में बस सकते हैं, जहां रहन-सहन या काम की दशाएं खराब होने, बुनियादी सुविधाओं तक पहुँच के अभाव, भेदभाव, पहचान खोने और मनोसामाजिक तनाव व अन्य कारणों से उनकी असुरक्षा और भी अधिक हो सकती है (Banerjee et al., 2018)। इसी प्रकार, पलायन करने वाले समुदाय जिन लोगों को अपने मूल घरों में पीछे छोड़ जाते हैं, वे लोग भी अनिश्चित धनप्रेषण पर निर्भरता तथा घटती श्रम आपूर्ति के कारणों से अधिक असुरक्षित हो सकते हैं (Wise and Covarrubias, 2009)। उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन और इसके प्रभावों की जिला-वार असुरक्षा के बारे में अनुभाग 3.5 देखें।

5.1 जलवायु परिवर्तन के क्रमसंचयी प्रभाव

उत्तराखंड राज्य में जलवायु परिवर्तन, पलायन को किस तरह प्रभावित करता है? ऐसे राज्य में जहां 71% जनसंख्या वर्षा-सिंचित कृषि पर निर्भर है, वहां जल की उपलब्धता और कृषि उत्पादकता पर जलवायु परिवर्तन के क्रमसंचयी प्रभाव स्थानीय आजीविकाओं पर क्रमिक प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं, जिनके कारण आगे चलकर पलायन हो सकता है (देखें चित्र 54)। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि पातन (वर्षण) और तापमान में परिवर्तन, उत्तराखंड में जल की मात्रा, निस्सारण (डिस्चार्ज) और उपलब्धता को प्रभावित कर सकते हैं

(Bandyopadhyay and Perveen, 2003; Kumar et al., 2006; Negi et al., 2012; Viviroli et al., 2007, 2003) (देखें अध्याय 3)। ग्लेशियरों का पिघलना और हिम आवरण में परिवर्तनों ने कृषि उपजों में स्थानीय कमी में योगदान किया है और हिमालय के उच्चतर पर्वतीय क्षेत्रों में जल उपलब्धता को प्रभावित किया है (IPCC, 2019; Rasul et al., 2019)। बदलती जलवायु दशाओं के कारण सूखों की अधिक आवृत्तियां, उच्च सघनता वाली वर्षा की अधिक घटनाएं, शुष्क दिनों की संख्या में वृद्धि और बाढ़ों की अधिक आवृत्तियां भी हो सकती हैं (GU, 2014; Krishnan et al., 2019; Tewari et al., 2017)। इस रिपोर्ट के अनुभाग 3 में इस बारे में चर्चा की गई है कि किस तरह से अधिकतम और न्यूनतम तापमानों में वृद्धि पूर्वानुमानित है जबकि वर्षा में वृद्धि और कमी दोनों पूर्वानुमानित हैं: वार्षिक वर्षा और भारी वर्षा वाली घटनाओं की अधिकतता तथा जाड़ों की (शीतकालीन) वर्षा में कमी। आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 के लिए चरम घटनाओं जैसे कि गर्म और बहुत गर्म दिनों में भी वृद्धि पूर्वानुमानित है (जैसा कि अनुभाग 3 में चर्चा की गई है)। ये सभी पलायन को प्रभावित करते हैं (IPCC, 2019)।

चित्र 54 में जलवायु परिवर्तन के विविध पहलुओं के बीच संबंध, कृषि और जल संसाधनों पर इसके प्रत्यक्ष प्रभाव और इन घटनाओं के प्रभाव दर्शाए गए हैं, जिनमें बहिर्प्रवासन भी शामिल है। हालाँकि जलवायु और गैर-जलवायु प्रेरकों के बीच अंतर स्पष्ट करना कठिन हो सकता है, क्योंकि वे अंतर्क्रिया करते हुए, गतिशीलता के विभिन्न परिणाम उत्पन्न करते हैं। इन कारकों के बीच निकट संबंध के बावजूद पलायन के पैटर्नों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों की अन्य कारकों से पृथक विशिष्ट पहचान करना चुनौतीपूर्ण है (Black et al., 2011, 2008; Boas et al., 2019, p. 902; Foresight, 2011b; Kniveton et al., 2008)।

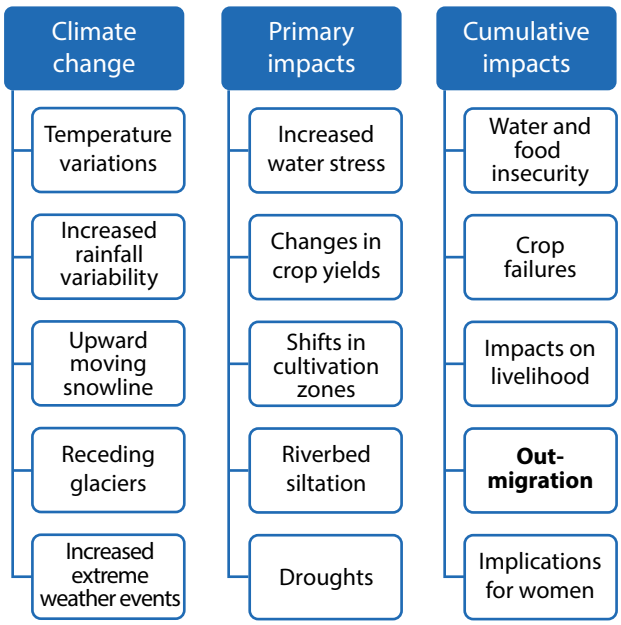

चित्र 54: उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन और पलायन का संबंध
चित्र साभार: हिमानी उपाध्याय, पीआईके

5.2 जलवायु परिवर्तन, कृषि और पलायन

उत्तरखंड में कृषि, जलवायु परिवर्तन और पलायन के बीच की कड़ी है। विकासशील देशों में, जलवायु-संवेदी गतिविधियों जैसे कि कृषि पर अधिक निर्भरता, बदलती जलवायु दशाएं और जलवायु संबंधी चरम घटनाएं, पलायन को तीव्र कर सकती हैं (McLeman and Hunter, 2010)। 108 देशों के डाटा का उपयोग करते हुए फाल्को ने दर्शाया है कि किस तरह से कृषि, जलवायु परिवर्तन और पलायन के

बीच मुख्य कड़ी है (Falco et al., 2019)। भारत के लिए ऐसे ही एक अध्ययन में यह दिखाया गया है कि किस तरह से मौसमी विभिन्नता, कृषि टनल के माध्यम से पलायन को प्रभावित कर सकती है (Kavi Kumar and Viswanathan, 2013, p. 8)। उत्तराखंड के अध्ययनों में भी घटती कृषि उत्पादकता को राज्य में पलायन के एक मुख्य कारण के रूप में दर्ज किया गया है (Hoermann et al., 2010; Joshi, 2018; Mamgain and Reddy, 2016; Tiwari and Joshi, 2016, 2015)।

कृषि उत्पादकता में अनेक कारणों से कमी हो रही है। वर्षा-सिंचित निर्वाह कृषि उत्तराखंड के पहाड़ी समुदायों में अधिक प्रचलित है, जो उनको भूमि, वन और मानसूनी वर्षा आदि प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक आश्रित बनाती है। खाद्य उत्पादन के मामले में ये समुदाय आत्मनिर्भर रहे हैं, किन्तु हाल के वर्षों में कृषि उत्पादकता में गिरावट आई है और अनेक परिवार अपनी भोजन संबंधी ज़रूरतें पूरी कर पाने में असमर्थ हो गए हैं (Naudiyal et al., 2019)। प्रति व्यक्ति भूस्वामित्व में कमी, अनियमित वर्षा, जल तनाव, सिंचाई की सुविधाओं का अभाव, जंगली भालुओं, बंदरों आदि के द्वारा फसलें उजाड़ना तथा खेती के प्रति युवाओं की घटती रूचि, इसके कारणों में शामिल हैं। (Bhandari and Reddy, 2015; Jain, 2010; Mamgain and Reddy, 2016; Rural Development and Migration Commission, 2018; Shukla et al., 2018)।

उत्तराखंड का भूगोल, भूमि उपलब्धता और कृषि को प्रभावित करता है। राज्य का केवल 14% कृष्य भूमि है (GU, 2019)। हिमालयों में धारणीय कृषि करने के लिए प्रति व्यक्ति न्यूनतम 0.2 हेक्टेयर भूमि होना अनिवार्य है (Tiwari and Joshi, 2015)। हालाँकि, उत्तराखंड के पर्वतीय भागों में, कृषि भूमि की औसत उपलब्धता मात्र 0.16 हेक्टेयर/प्रतिव्यक्ति है। लगभग 87% परिवारों के पास 1 हेक्टेयर से कम भूमि है। पहाड़ों में यह छोटी जमीनें, उत्पादकता तथा खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से अव्यावहारिक हैं (Kuniyal, 2003; Sati, 2005)। इसके विपरीत हरिद्वार, देहरादून, ऊधम सिंह नगर और नैनीताल जिलों में कृषि उत्पादकता, पहाड़ी जिलों की अपेक्षा अधिक है (एससीसीसी, एन.डी.)। मैदानों में मिट्टी की बेहतर दशाएं तथा पहाड़ी क्षेत्रों में उन्नत तकनीकों जैसे कि मशीनरी, बीज गुणवत्ता तथा कृषि विस्तार सेवाओं का अभाव इसके आंशिक कारण हैं। (एससीसीसी, एन.डी., पृष्ठ 2)। छोटी जमीनों के अलावा, सिंचाई की उपलब्धता भी पहाड़ी जिलों में एक समस्या है। राज्य के 13 जिलों में से केवल 4 में निवल बोवाई क्षेत्र का 50% सिंचाई सुविधा से युक्त है (Planning Commission, GU, 2017)। पहाड़ी जिलों में वर्तमान में कुल कृषि क्षेत्रफल का केवल 10% सिंचित है। स्थापना और अनुरक्षण महंगा होने के बावजूद लिफ्ट सिंचाई प्रणालियां, पर्वतों में दशाओं में सुधार कर सकती हैं जैसा कि पड़ोसी राज्य हिमाचल प्रदेश में देखा गया है (Government of Himachal Pradesh, 2002, p. 32)। अनेक क्षेत्रों में, पर्वतीय झरने ही एकमात्र जल स्रोत बने हुए हैं, लेकिन वे अब जलवायु परिवर्तन के कारण सूखते जा रहे हैं (Agarwal et al., 2012; Tambe et al., 2012)।

इन दबावों को कृषि क्षेत्र में गिरावट के रूप में समझा जा सकता है। राज्य के अर्थ एवं संख्या निदेशालय द्वारा 2017 में कराए गए आर्थिक सर्वेक्षण में यह सूचित किया गया कि उत्तराखंड की जीडीपी में प्राथमिक क्षेत्र (कृषि और सहायक सेवाएं) का योगदान जो वित्तीय वर्ष 2011–12 में 14% था वह 2017–18 तक कम होकर लगभग 10% रह गया। (Rural Development and Migration Commission, 2018)। आंकड़ों से पता चलता है कि खाद्यान्नों की खेती का क्षेत्रफल जो 2005–06 में 970.14 हजार हेक्टेयर था, वह 2014–15 में 883.93 हजार हेक्टेयर रह गया (Planning Commission, GU, 2017)।

पहले से गिरावट का शिकार हो रहे कृषि क्षेत्र के लिए जलवायु परिवर्तन कई तनाव उत्पन्न करता है। उत्तराखंड में निर्वाह अर्थव्यवस्था की लंबी परंपरा रही है, जहां लगभग 70% जनसंख्या द्वारा फसलों की खेती के साथ पशुपालन का कार्य मिश्रित रूप से किया जाता रहा है। (Maikhuri et al., 2013, 2001, 1997; Semwal et al., 2004)। यद्यपि पहाड़ी कृषि कभी भी अत्यधिक उत्पादक नहीं रही है, (Naudiyal et al., 2019; Shukla et al., 2018; Sunderesan et al., 2014) लेकिन यह पहाड़ी जनजीवन का अभिन्न अंग है। हालाँकि पिछले दो दशकों में कृषि उत्पादकता में और अधिक गिरावट – जिसके लिए जलवायु दशाओं में परिवर्तन एक प्रमुख कारण के रूप में उभरा है – ने पहाड़ी किसानों के लिए खेती संबंधी तनाव बढ़ा दिया है और बहिर्प्रवासन में योगदान किया है (Wester et al., 2019)। आइजैक और आइजैक ने उत्तराखंड में कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का आकलन करते हुए दिखाया है कि 2004 से 2009 तक, कम वर्षा और असमान स्थानिक वितरण के कारण गेहूँ की उपज में कमी हुई है। एक ओर तो रोपाई के समय अपर्याप्त वर्षा और दूसरी ओर वर्षा की

मात्रा और तीव्रता में बढ़ोत्तरी के कारण ऊपरी उत्पादक मिट्टी के अधिक क्षरण के कारणों से, इसी अवधि के दौरान धान की फसल में भी कमी देखी गई है (Isaac and Isaac, 2017)। उन्होंने यह भी वर्णन किया है कि किस तरह से असमान स्थानिक वर्षा और इसमें अस्थायी विभिन्नता के कारण उत्तराखंड के विभिन्न जिलों में अक्सर पड़ने वाले सूखे तथा कम फसल उत्पादन के परिणाम देखे गए हैं। जैसा कि अनुभाग 3.3 (मानसून पर) में चर्चा की गई है, कि यद्यपि मानसून ऋतु के दौरान वर्षा में कमी नहीं हुई है, लेकिन वर्षायुक्त दिनों की संख्या यह दिखाती है कि वर्षा की तीव्रता में वृद्धि हो गई है। अधिक तीव्रता वाली वर्षा वाली ऐसी घटनाएं फसल हानि का कारण बन सकती हैं, क्योंकि कटाई के लिए तैयार खड़ी फसल नष्ट हो सकती है। इस अनुभाग में यह भी रेखांकित किया गया है कि मैदानों की अपेक्षा अधिक ऊंचाई (पहाड़ी जिलों) पर कुल उत्पादन में अधिक कमी देखी गई है।

इसी प्रकार से, चावल-गेहूँ फसल प्रणाली के लिए जलवायु घटकों के प्रभावों पर एक अध्ययन में यह दिखाया गया है कि पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में शीतकालीन ऋतु के दौरान माध्य, अधिकतम और न्यूनतम तापमान अपेक्षाकृत अधिक रहने से गेहूँ की उपज कमज़ोर हो जाती है, जबकि माध्य, अधिकतम और न्यूनतम तापमान अपेक्षाकृत कम रहने से चावल की उपज कमज़ोर हो जाती है (BAIF, 2011)। जलवायु परिवर्तन मूल्यांकन पर भारत सरकार के भारतीय नेटवर्क की एक रिपोर्ट[50] (INCCA, 2010) में चर्चा की गई है कि किस तरह से तापमान बढ़ने के साथ भारतीय हिमालयी क्षेत्र (आईएचआर) में कृषि रेखा, अपेक्षाकृत अधिक ऊंचाई की ओर स्थानांतरित हो सकती है। ऐसा होने पर पशुचारण के लिए उपलब्ध चरागाह वाले क्षेत्र कम हो जाएंगे, क्योंकि चरागाहों की भूमि, कृषि भूमि में परिवर्तित हो जाएंगी। इससे पालतू पशुओं के लिए चारे की उपलब्धता कम हो जाएगी (INCCA, 2010)। अन्य अध्ययनों में भी पौधों में फूल और फल आने के समय में परिवर्तन, कीटों के प्रकोप, सेब और अन्य फसलों की खेती के परिक्षेत्रों में बदलाव, तीव्र बाढ़ों की सघनता और आवृत्तियों में बढ़ोत्तरी, बारहमासी जलधाराओं का सूखना तथा जानवरों के हमले आदि के साक्ष्यों के बारे में सूचित किया गया है (Bhatt et al., 2000; Hasnain, 2002; Kuniyal, 2002)। तापमान बढ़ने के कारण कीटों के प्रकोप में वृद्धि, मृदा की घटती नमी और बढ़ते CO_2 स्तरों को भी उत्तराखंड में अवलोकित किया गया है (Rautela and Karki, 2015, p. 402)।

इसी प्रकार बागवानी के क्षेत्र में, हिमपात में कमी पहले से ही सेब जैसी फसलों को प्रभावित कर रही है, जिसके उत्पादन और कृषि क्षेत्रफल में कमी देखी जा रही है (DST, 2019a)। जलवायु परिवर्तन ने पहले से कमजोर पहाड़ी पारितंत्र को और अधिक असुरक्षित बना दिया है (Sharma, 2015)। जलवायु परिवर्तन के प्रत्यक्ष प्रभावों के अलावा, अन्य प्रभावों जैसे कि मुख्यतः सामाजिक-आर्थिक ढांचों में परिवर्तन, भूमि उपयोग तथा पर्यावरण और आनुवंशिक संसाधनों के बीच अंतर्क्रिया अर्थात कृषिजैवविविधता [51] में बदलावों के कारण क्षेत्र की पारंपरिक कृषि प्रणालियों में गिरावट आई है (Ravera et al., 2016)। जलवायु में परिवर्तन, कृषिजैवविविधता में अपरदन की दर और बढ़ा सकते हैं और क्षेत्र में पारंपरिक कृषि प्रणालियों की उपज की गुणवत्ता और मात्रा को भी प्रभावित कर सकते हैं (Maikhuri, 2012)। बढ़ते तापमान, वर्षा, अपवाह (रनऑफ) और शहरीकरण के संयुक्त प्रभावों ने कृषि के पैटर्नों और निर्वाह अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया है। हालाँकि किसान, कम जल -सघन फसलों को अपनाकर और अपने आजीविका स्रोतों को विविधीकृत करते हुए, वर्षा में परिवर्तन के अनुसार प्रतिक्रिया कर रहे हैं (Kelkar et al., 2008b), लेकिन बदलावों की तीव्रता और गति इतनी ज़्यादा है कि ये प्रयास निष्प्रभावी हो गए हैं, क्योंकि वे बदलाव की गति का सामना नहीं कर सकते। हालाँकि उत्तराखंड में समुदाय, फसलों को प्रतिस्थापित करके और अपेक्षाकृत छोटे पशुपालन को अपनाते हुए सक्रिय रूप से अनुकूलन कर रहे हैं, लेकिन खाद्य और आजीविका में असुरक्षा बढ़ने का भावी जोखिम है (Macchi, 2011; Macchi et al., 2015)।

---

[50] जलवायु परिवर्तन मूल्यांकन हेतु भारतीय नेटवर्क (आईएनसीसीए) पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय का एक नेटवर्क आधारित कार्यक्रम है जिसमें देश भर के 120 से अधिक संस्थान और 250 से अधिक वैज्ञानिक शामिल हैं। यह रिपोर्ट भारत के चार जलवायु संवेदी क्षेत्रों- हिमालयी क्षेत्र, पश्चिमी घाट, तटवर्ती क्षेत्र और पूर्वोत्तर क्षेत्रों में, 2030 के दशक में चार मुख्य क्षेत्रों, कृषि, जल, प्राकृतिक पारितंत्रों व जैवविविधता तथा स्वास्थ्य पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का मूल्यांकन करती है।

[51] कृषि जैवविविधता, पर्यावरण, आनुवंशिक संसाधनों और सांस्कृतिक विविधतापूर्ण लोगों द्वारा प्रयुक्त प्रबंधन प्रणालियों और विधियों के बीच अंतर्क्रिया का परिणाम होती है और अतएव उत्पादन के लिए भूमि और जल संसाधनों का उपयोग विभिन्न प्रकार से किया जाता है।
स्रोत: http://www.fao.org/3/y5609e/y5609e01.htm.

समुदाय, कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का अवलोकन कर रहे हैं और अनुभव कर रहे हैं। जैन द्वारा किए गए एक क्षेत्रीय सर्वेक्षण (2010) में यह रेखांकित किया गया कि समुदाय न केवल वर्षायुक्त ऋतु के दौरान चरम पातन (वर्षण) की घटनाओं (जिनको सामान्यतया बादल फटना कहा जाता है) बल्कि वर्षायुक्त दिनों की कुल संख्या में कमी का भी अनुभव कर रहे हैं (Jain, 2010)। शीत ऋतु में, वर्षा में गिरावट देखी गई है। शीतकालीन वर्षा में परिवर्तन का रबी की फसलों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार से, माची (2011) द्वारा, जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में असुरक्षा और सामर्थ्य विश्लेषण (वीसीए) यह दिखाता है कि समुदाय पहले से ही कई प्रकार के परिवर्तनों, जैसे कि वर्षा में कमी, मानसून का अप्रत्याशित आगमन, सूखे जैसी दशाओं के साथ शुष्क कालखंडों का अधिक लंबा होना, घटती जल उपलबधता के साथ उच्चतर तापमान और कम हिमपात के साथ अपेक्षाकृत गर्म होती शीतऋतु आदि का सामना कर रहे हैं (Macchi, 2011)। इन सभी परिवर्तनों का कृषि प्रणालियों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है, जैसे कि कृषि उत्पादकता में कमी, जलधाराओं का सूख जाना, भूमि का कम उत्पादक रह जाना और कीटों तथा रोगों के प्रकोप में बढ़ोत्तरी। उत्तराखंड में कुमाऊं पहाड़ियों में ऊपरी कोसी कैचमेन्ट में किए गए एक अध्ययन में पता चला है कि पिछले 30 वर्षों (1980–2010) के दौरान वार्षिक कृषि उत्पादकता लगभग 125 किग्रा प्रति हेक्टेयर (25%) कम हो गई है। इससे 1883 टन (65%) की वार्षिक खाद्य कमी हो गई है जो प्रति व्यक्ति खाद्य उत्पादन में बड़ी गिरावट है और इसके साथ ही ग्रामीण कृषि क्षेत्र में गैर-कृषि के अवसर भी कम हो गए हैं। अन्य के अतिरिक्त प्राकृतिक संसाधनों का अपक्षय और बदलती जलवायु दशाएं, घटती कृषि उत्पादकता के मुख्य कारणों में शामिल हैं (Tiwari and Joshi, 2012)। अध्ययन में आगे विश्लेषण किया गया है कि वर्षा की मात्रा तथा वर्षायुक्त दिनों की संख्या में क्रमशः 52% और 34% की गिरावट आई है और अधिक-तीव्र वर्षा और सूखों की घटनाओं में 1995–2010 के दौरान वृद्धि हुई है (Tiwari and Joshi, 2012)। इन परिवर्तनों ने क्षेत्र में स्थानीय आजीविका प्रणालियों, खाद्य सुरक्षा और जल सुरक्षा को अत्यधिक प्रभावित किया है। बहिर्प्रवासन, इन प्रभावों के कारण उत्पन्न एक प्रभाव है।

जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि के लिए भावी जोखिम हैं। उत्तराखंड के एससीसीसी द्वारा किए गए एक असुरक्षा और जोखिम मूल्यांकन (वीआरए) में, जलवायु परिवर्तन के कारण भविष्य में कृषि पर तीन विशिष्ट संभावित प्रभाव चिन्हित किए गए हैं (एससीसीसी, एन.डी.)। इनमें शामिल हैं:

1. **कृषि जल तनाव में वृद्धि**[52]: अधिक चरम तापमान, वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन में वृद्धि कर सकते हैं, जिससे जल तनाव उत्पन्न हो सकता है जो फसलों की वृद्धि और उपजों को प्रभावित करेगा, कीटों और रोगों के प्रति फसलों की भेद्यता में वृद्धि करेगा और सिंचाई की आवश्यकताओं में वृद्धि करेगा। अल्मोड़ा, चम्पावत, पौड़ी गढ़वाल और टिहरी गढ़वाल जिलों में जल तनाव का अनुभव किए जाने की संभावनाएं अधिक हैं।
2. **बाढ़ों के अधिक जोखिम**: तीव्र वर्षा वाली घटनाओं में बढ़ोत्तरी के कारण बाढ़ें आ सकती हैं, फसलों को नुकसान हो सकता है, परिवहन में बाधाएं उत्पन्न हो सकती हैं और कृषि उत्पादन बेचने के लिए बाज़ार तक पहुँच बाधित हो सकती है।
3. **फसल उपज में परिवर्तन**: तापमान और वर्षा में परिवर्तन, फसल में जल की माँग, उत्पादकता और इस तरह से उपज को प्रभावित कर सकते हैं (एससीसीसी, एन.डी., पृष्ठ 4)। वीआरए के अनुसार, आरसीपी4.5 (मध्यम) और आरसीपी8.5 (उच्च) उत्सर्जन परिदृश्यों के अंतर्गत पहाड़ी जिलों उत्तरकाशी, चमोली, रूद्रप्रयाग और पौड़ी गढ़वाल में गेहूँ और चावल की उपजों में कमी संभावित है।

कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, बहिर्प्रवासन से संबंधित हैं। कृषि उत्पादकता कम करने वाले उपरोक्त कारकों के साथ पारंपरिक क्षेत्रों में आजीविका के अवसरों में कमी, अन्य पारिस्थितिक सीमाओं तथा कमज़ोर अवसंरचना ने उत्तराखंड के पहाड़ी जिलों से बहिर्प्रवासन प्रेरित करने में योगदान किया है (Hoermann et al., 2010; Jain, 2010; Joshi, 2018; Wester et al., 2019)। जलवायु परिवर्तन और कृषि, आजीविकाओं से इसके संबंधों और पलायन पर परिणामों को एक प्रतिक्रिया पाश (फीडबैक लूप) के रूप में समझा जा सकता है (देखें चित्र 55)।

[52] कृषि जल तनाव को वास्तविक जल अंतर्ग्रहण और संभावित वाष्पोत्सर्जन के अनुपात के रूप में निर्धारित किया जाता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव जल और कृषि उत्पादकता पर → आजीविका और घरेलू आय पर प्रभाव → लोग प्रवास करते हैं → अपेक्षाकृत कम लोग खेती करते हैं → अधिक पलायन, परती खेत और तालाबंद घर → भुतहे गाँव

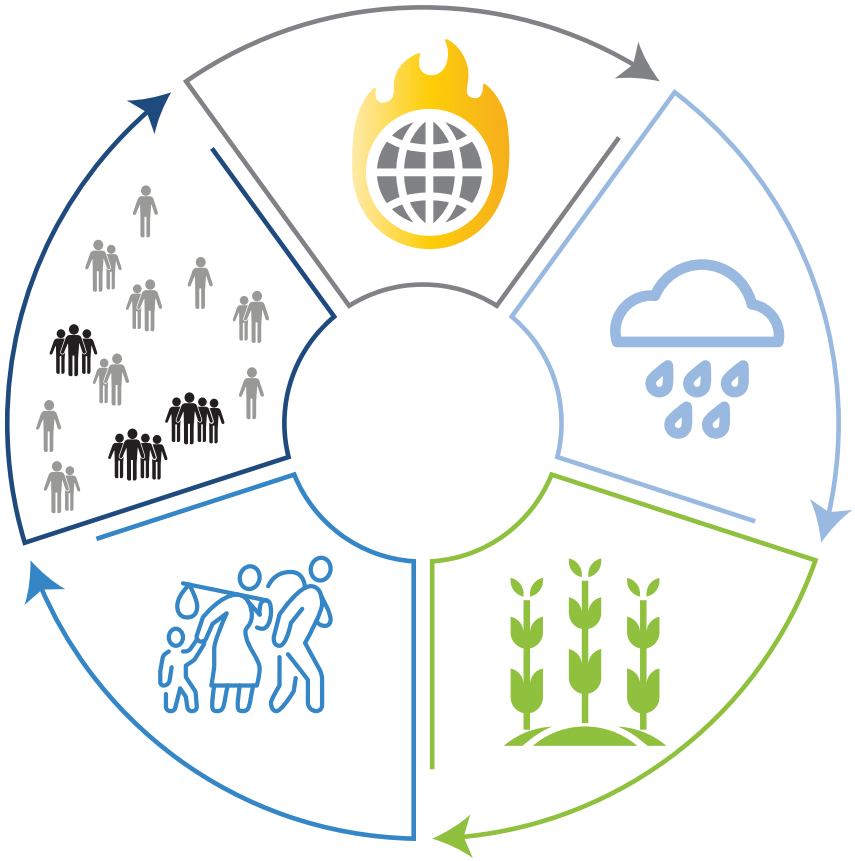

चित्र 55: उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन, कृषि और पलायन का संबंध

समुदाय, कृषि से विमुख हो रहे हैं। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों और उत्तराखंड की स्थलाकृति संबंधी सीमाओं के अतिरिक्त, विशेषकर युवाओं में खेती करने के प्रति रूचि भी कम होती जा रही है। पहाड़ी जिलों में पारंपरिक रूप से समुदाय निर्वाह-आधारित, स्थायी कृषि करने वाले रहे हैं, जिसमें फसलों, पशुपालन तथा वानिकी के साथ संसाधनों के पुनर्चक्रण और सामूहिक साझेदारी का मिला-जुला रूप होता है। हालाँकि, अब यह बदल गया है। आर्थिक वृद्धि, उन्नत संचार सुविधाओं, बेहतर सड़कों और डिजिटलीकरण ने काफी भिन्न जीवनशैलियों के लिए महत्त्वाकांक्षाओं में बढ़ोत्तरी कर दी है। सैटेलाइट टेलीविजन ने बाहरी दुनिया को लोगों के दैनिक जीवन में ला दिया है। इसी प्रकार से, मोबाइल फोन से ऐसे संबंध और नेटवर्क मज़बूत हुए हैं जिनकी पहले कल्पना नहीं की जा सकती थी (Mehta, 2014)। इन बदलावों ने गाँवों के बजाय शहरी केंद्रों में अवसरों के द्वार खोल दिए हैं। पारंपरिक, भूमि-आधारित गतिविधियों से आजीविकाओं का संबंध टूटने से, इन गतिविधियों का महत्त्व अनिवार्य रूप से कम हो गया है (Mehta, 2014)। विशेषकर युवा लोग, गाँव में उपलब्ध जीवन से बेहतर जीवन हेतु

अवसरों की खोज करते हैं, जिससे बहिर्प्रवासन होता है। हालाँकि ऐतिहासिक रूप से, पहाड़ी क्षेत्रों से पलायन की उच्च दरें रहीं थीं, लेकिन पलायन करने वालों में अंततः अपने गाँव वापस लौट आने की प्रवृत्ति भी रही थी। अब यह बदल गया है, क्योंकि अब अधिकांश पलायन करने वाले वापस लौटने के बजाय अपने गंतव्य स्थल वाले क्षेत्रों में बस रहे हैं (GU, 2018; Pathak et al., 2017)।

हालाँकि हर कोई प्रवास नहीं कर सकता या करना नहीं चाहता। जलवायु प्रभावों का सामना करने वाले, अपने मूलस्थानों को छोड़कर जाने में असमर्थ या अनिच्छुक लोगों को कदाचित ही उत्तराखंड में वैज्ञानिक अध्ययनों में उल्लेखित किया गया है। विद्वानों ने इन पीछे रह जाने वाले लोगों को 'गतिहीनता' के वर्णक्रम में वर्गीकृत किया है (Black et al., 2013; Jónsson, 2011; Schewel, 2020; Zickgraf, 2019, 2018):

1. 'फंसे हुए लोग', जो छोड़कर जाना तो चाहते हैं लेकिन संसाधनों के अभाव की वजह से या पारिवारिक दायित्वों, जैसे कि बीमारों या बुजुर्गों की देखभाल करने की जिम्मेदारी, के कारण प्रवास करने में असमर्थ हैं (Adams, 2016; Black et al., 2011; Foresight, 2011b)।
2. लोग, जो सामाजिक-सांस्कृतिक अपनत्व की भावना के कारण अपने स्थानों पर ही रहना चाहते हैं। (De Dominicis et al., 2015; Farbotko and McMichael, 2019; Mallick and Schanze, 2020)

वर्तमान में उत्तराखंड में अध्ययन मुख्यतः बहिर्प्रवासन पर केंद्रित हैं और उन लोगों की चर्चा नहीं करते जो पीछे छूट जाते हैं (Bhandari and Reddy, 2015; Hoermann et al., 2010; Jain, 2010; Joshi, 2018; Mamgain and Reddy, 2016; Pathak et al., 2017; Tiwari and Joshi, 2016, 2015)।

निष्कर्ष रूप में उत्तराखंड में, जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या के वर्तमान आवागमन को प्रभावित करने वाले जोखिम संशोधक के रूप में कार्य करता है। कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव, उत्तराखंड में बहिर्प्रवासन से संबंधित हैं। 70% जनसंख्या वर्षा-सिंचित कृषि पर निर्भर है जो अधिक उत्पादक नहीं है। विगत दो दशकों में जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादकता में और गिरावट आई है जिससे बहिर्प्रवासन बढ़ा है। प्रेक्षण (अवलोकन) दर्शाते हैं कि कम और असमान वर्षा के कारण फसल उपजों में गिरावट आई है, जबकि आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 के अंतर्गत कृषि जल तनाव में वृद्धि तथा फसल उपजों में और अधिक गिरावट आना पूर्वानुमानित है। अनेक क्षेत्रों में, पर्वतीय झरने जो जल का एकमात्र स्रोत हुआ करते थे, वे अब जलवायु परिवर्तन के कारण सूख रहे हैं। यह जलवायु के प्रभावों, आजीविका के जोखिमों और पलायन के बीच संबंध को रेखांकित करता है। चित्र 56 में पूर्वानुमानित जलवायु परिवर्तन, पूर्वानुमानित जलवायु चरम स्थितियां, कृषि पर पूर्वानुमानित प्रभाव, वर्तमान पलायन रूझान और जनसंख्या घनत्व दर्शाए गए हैं। राज्य के उत्तरी, पश्चिमी और मध्य भाग के पहाड़ी जिले, अधिक प्रभावित हैं और इनके द्वारा ही आजीविकाओं से संबंधित जोखिमों का अपेक्षाकृत अधिक सामना किए जाने की संभावनाएं हैं, क्योंकि यहां अधिकांश जनसंख्या निर्वाह आधारित वर्षा-सिंचित कृषि पर निर्भर है – जिससे पहाड़ी से मैदानी जिलों की ओर मौजूदा बहिर्प्रवासन और बढ़ेगा।

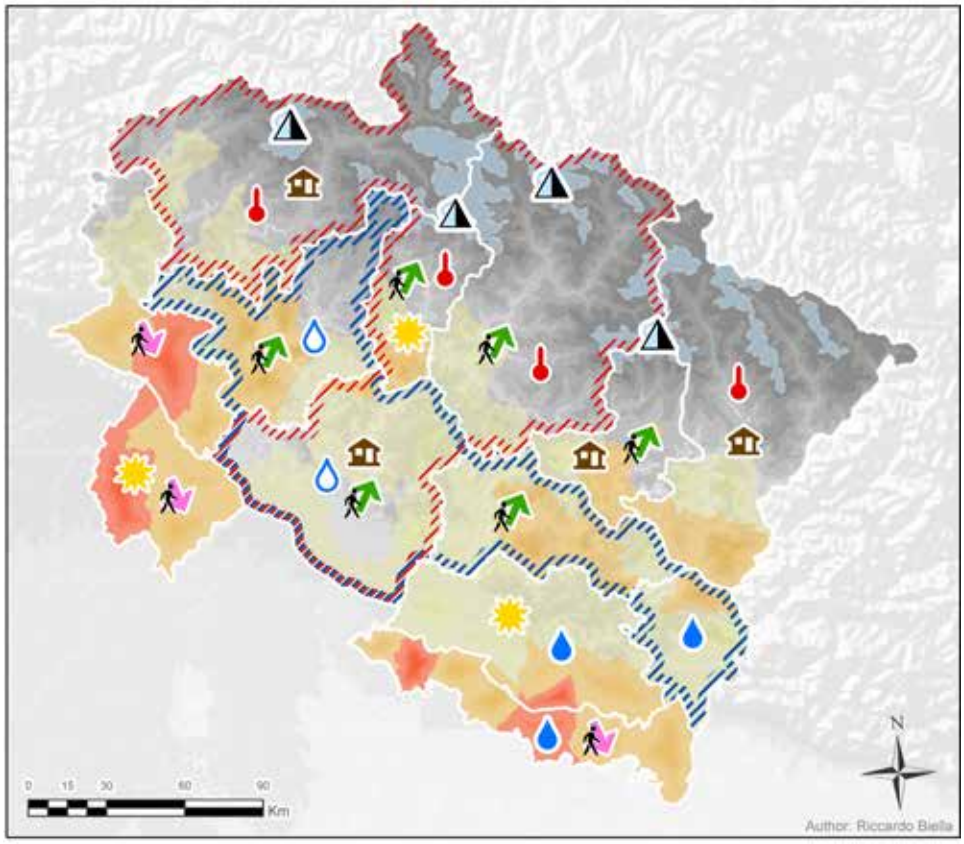

Legend

Population density by tehsil (Census 2011)
- Population density > 800 /km2
- Population density >200 /km2
- Population density >100 /km2
- Population density <100 /km2

Future impacts on agriculture
- Decrease in crop yields
- Increase in agricultural water stress

Projected climate change
- Temperature increase
- Precipitation increase

Projected climate extremes
- Increase in very warm days
- Increase in heavy precipitation days

Impact on glaciers (Sati 2020)
- Major glaciers
- Glacial melt

Migration indicators (RDMC 2018)
- Main district of origin of migrants
- Main migrant destination district
- Abandoned villages

References
Census 2011 - Census, 2011. Migration. Census. Government of India.

INRM 2018 - INRM, 2018. Agenda for Climate Action, Agriculture: Linking the Culnerability and Risk Assessment for Uttarakhand with Policy Implications for the State. CDKN.

RDMC 2018 - Rural Development and Migration Commission, 2018. Interim Report on The Status Of Migration in Gram Panchayats Of Uttarakhand. Rural Development and Migration Commission, Pauri Ghanwal.

Sati Vishwambhar Prasad, 2020 Glaciers of the Uttarakhand Himalaya. In: Himalaya on the Threshold of Change. Advances in Global Change Research, vol 68. Springer, Cham.

चित्र 56: उत्तराखंड का आजीविका जोखिम मानचित्र पूर्वानुमानित जलवायु परिवर्तन प्रभावों, पूर्वानुमानित जलवायु चरम दशाओं, कृषि पर प्रभावों, पलायन संकेतक और जनसंख्या घनत्व को रेखांकित करता है। राज्य के उत्तरी, पश्चिमी और मध्य भाग में पहाड़ी जिले, अधिक प्रभावित हैं और उच्चतर आजीविका जोखिमों का सामना कर सकते हैं, क्योंकि यहां अधिकांश जनसंख्या निर्वाह - आधारित, वर्षा-सिंचित कृषि पर निर्भर है – जिससे पहाड़ी से मैदानी जिलों की ओर बहिर्प्रवासन और बढ़ता है।

नीतियों और योजनाओं में पलायन

हिमाच्छादित उरगाम गाँव, जोशीमठ, उत्तराखंड, भारत।

© शटरस्टॉक/डेनियल प्रूडेक

6 नीतियों और योजनाओं में पलायन

पलायन अनेक नीतिगत क्षेत्रों में प्रासंगिकता वाला पारगामी मुद्दा है।. अतएव इसे समझने के लिए जलवायु -पलायन संबंध का एक विश्लेषण आवश्यक है कि किस तरह से जलवायु परिवर्तन या धारणीय विकास के बारे में विभिन्न सरकारी नीतियां और योजनाएं, पलायन के संबंध में पारस्परिक भूमिका निभाती हैं, जिनके कभी-कभी विरोधाभासी प्रभाव होते हैं। इस अनुभाग में इस बारे में संक्षिप्त चर्चा की गई है कि किस तरह से उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन, धारणीय विकास और पलायन के मामलों में नीतिगत स्तर पर कार्य किया गया है।

बॉक्स 4: जलवायु परिवर्तन पर उत्तराखंड की कार्य योजना

(उत्तराखंड सरकार, 2014)

उत्तराखंड सरकार द्वारा तैयार, जलवायु परिवर्तन पर उत्तराखंड की कार्ययोजना (यूएपीसीसी) में जलवायु परिवर्तन का समाधान करने के लिए सरकार की महत्त्वाकांक्षी योजनाकी रूपरेखा निर्धारित की गई है जो 'राज्य के समावेशी, धारणीय और जलवायु - सहनशील वृद्धि और विकास के लिए प्रतिबद्ध है' (पृष्ठ 53)। एक साझा क्रियान्वयन रूपरेखा के आधार पर यूएपीसीसी में कृषि सहित बारह क्षेत्रों में जलवायु प्रभावों पर चर्चा की गई है तथा प्रत्येक के लिए क्षेत्रवार रणनीति तैयार की गई है। उदाहरण के लिए, इस योजना में पलायन को आजीविका विविधीकरण की रणनीति बताया गया है (पृष्ठ 23), जो राज्य के लिए एक चुनौती है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों से लगातार बहिर्प्रवासन के कारण खेतिहर भूमि परती होती जा रही है (पृष्ठ 36) और लैंगिक मसले के रूप में, जहां पुरुषों के बहिर्प्रवासन कर जाने के कारण महिलाओं पर कार्यभार बढ़ गया है (पृष्ठ 105)। इस योजना में जलवायु-पलायन संबंध को एक कम अध्ययन किया गया विषय माना गया है और '(राज्य में उल्लेखनीय पलायन पर विचार करते हुए) पलायन और इसके संभावित प्रभावों पर [एक] अध्ययन' प्रस्तावित किया गया है (पृष्ठ 112)। पहाड़ी जिलों में जलवायु परिवर्तन, कृषि और पलायन गतिकी के बीच अनेक संबंधों पर बात की गई है:

- 'विशेषकर पहाड़ी जिलों से [एक] उल्लेखनीय पलायन हो रहा है – अनेक किसान, बेहतर आजीविका विकल्पों की खोज में शहरों की ओर प्रवास कर रहे हैं, जिससे उनके खेत परती और बिना खेती के छूट गए हैं' (पृष्ठ 69)
- 'पातन (वर्षण) के पैटर्न में जलवायु परिवर्तन-प्रेरित अस्थिरताओं से खेती के उत्पादन में अनिश्चितता बढ़ गई है' जिसके साथ परिणाम यह है कि 'श्रम-सघन पहाड़ी कृषि अधारणीय हो गई है और इस क्षेत्र के लिए वर्तमान में खाद्य असुरक्षा का खतरा बढ़ गया है' और, अंततः, 'इसके प्रभाव उन व्यापक विस्तृत भूभागों के रूप में स्पष्ट परिलक्षित हैं जो अब तक नियमित रूप से बोवाई की जाने वाली कृषि भूमि थी, लेकिन जिसे अब परती छोड़ दिया गया है' (पृष्ठ 115)।
- पहाड़ी जिलों से मैदानों की ओर पुरुष बहिर्प्रवासन के परिणामस्वरूप 'पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाएं, बुजुर्ग और बच्चे रह गए हैं', जो समाज के सबसे असुरक्षित वर्गों से संबंधित हैं (पृष्ठ 105)।

पर्यटन, जो कि राज्य का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है, इस पर संक्षेप में 'एक उत्कृष्ट अनुकूलन प्रणाली और एक वैकल्पिक आजीविका विकल्प के रूप में चर्चा की गई है, जिसे प्रभावी रूप से प्रबंधित किए जाने की स्थिति में गाँवों से बड़े पैमाने पर होने वाले पलायन को रोका जा सकता है' (पृष्ठ 136)।

बॉक्स 5: उत्तराखंड में पलायन पर रिपोर्ट

उत्तराखंड की ग्राम पंचायतों में पलायन की स्थिति पर रिपोर्ट
(Rural Development and Migration Commission, 2018)

पलायन के मुद्दे के समाधान के लिए 2017 में, उत्तराखंड सरकार ने ग्रामीण विकास और पलायन आयोग स्थापित किया (Rural Development and Migration Commission, 2018, p. 2)। आयोग को अनेक कार्य सौंपे गए जिनमें 'राज्य के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों से बहिर्प्रवासन की मात्रा और सीमा का मूल्यांकन करना' भी है (पृष्ठ 2)। इसके आधार पर, आयोग से 'ग्रामीण जनसंख्या के कल्याण और समृद्धि को बढ़ावा देने के लिए' ग्रामीण विकास हेतु विचार विकसित करना और विकास योजनाओं में सरकार को परामर्श देना अपेक्षित है (पृष्ठ 2)। 2018 में आयोग ने पलायन पर एक अंतरिम रिपोर्ट तैयार की जो विस्तृत प्राथमिक सर्वेक्षण और द्वितीयक स्रोतों पर आधारित थी। रिपोर्ट के अनुसार, राज्य के लिए निम्न कारणों से पलायन एक 'समस्या', 'चुनौती' और 'अतिरिक्त तनावकर्ता' है:

- क्षीण होता प्राथमिक क्षेत्र (कृषि)
- निर्जनीकरण
- शहरों में भीड़ बढ़ना
- अंतर्पलायन के कारण संसाधनों पर अधिक भार

इसके अलावा, 'राज्य की जनसंख्या के उन असुरक्षित वर्गों, जिनके लिए आर्थिक प्रगति से पर्याप्त लाभ न मिलने का जोखिम हो, के लिए सिफारिशें प्रस्तुत करना' भी आयोग के कार्यों में शामिल है (पृष्ठ 2)।

बॉक्स 6: उत्तराखंड का विज़न 2030

(Department of Planning, Government of Uttarakhand, 2018)

संयुक्त राष्ट्र द्वारा विकसित धारणीय विकास लक्ष्यों (एसडीजी) के आधार पर उत्तराखंड राज्य ने 'उत्तराखंड का: विज़न 2030' तैयार किया, जो राज्य में धारणीय विकास के लिए अनिवार्य रूप से एक भावी मार्गदर्शक की भांति कार्य करता है। इस दस्तावेज़ में, अलग-अलग एसडीजी के लिए आवधिक लक्ष्य तथा 2030 तक उनको लागू करने की रणनीति निर्धारित की गई है। समग्र उद्देश्य निम्न है:

उत्तराखंड की अर्थव्यवस्था को समृद्धिशाली, स्वस्थ राज्य के रूप में विकसित करना, जहां लोग शिक्षित हों और समानतायुक्त समाज में लाभकारी ढंग से नियोजित हों, पर्यावरण और निवासियों के बीच पारस्परिक लाभकारी शक्ति संतुलन हो और यह कि विकास की प्रक्रिया धारणीय और समावेशी हो (पृष्ठ 5)।

विज़न 2030 में, पहाड़ों से मैदानों की ओर पलायन को एक चुनौती के रूप में देखा गया है क्योंकि इसने पहाड़ों और मैदानों के बीच क्षेत्रीय विभाजन में वृद्धि की है (पृष्ठ 5)। इसमें राज्य के असुरक्षित पर्यावरण द्वारा उत्पन्न खतरों की भी पहचान की गई है और यह इंगित किया गया है कि 'यद्यपि राज्य में जलवायु परिवर्तन के लिए राज्य की कार्ययोजना है, लेकिन अब तक जलवायु परिवर्तन के उपायों का राज्य की नीति में मामूली एकीकरण ही किया गया है' (पृष्ठ 5)। उत्तराखंड के योजना विभाग ने अपना विज़न प्राप्त करने के लिए दस फोकस क्षेत्रों की पहचान की है। जहां राज्य में पलायन गतिकी के लिए इन सभी दस के प्रत्यक्ष परिणाम हैं, वहीं फोकस क्षेत्र 2, 'कृषि के रूपांतरण द्वारा पलायन कम करना' और फोकस क्षेत्र 3, 'पहाड़ों में आजीविकाएं प्रदान करते हुए पलायन कम करना', पहाड़ी से मैदानी जिलों की ओर ग्रामीण बहिर्प्रवासन को कम करने पर प्रत्यक्ष रूप से केंद्रित हैं।

बॉक्स 7: भारतीय हिमालयी क्षेत्र में धारणीय विकास

भारतीय हिमालयी क्षेत्र में धारणीय विकास में योगदान
(Niti Aayog, Government of India, 2018)

संघीय स्तर पर, राष्ट्रीय भारत रूपांतरण संस्थान (नीति आयोग) ने भारतीय हिमालयी क्षेत्र (आईएचआर) में धारणीय विकास को बढ़ावा देने के लिए पांच थीम आधारित फोकस क्षेत्रों वाली एक कार्ययोजना विकसित की है। यह योजना पलायन को 'चिंता का कारण' मानती है: पर्यावरणीय संपत्तियों का क्षरण, बहिर्प्रवासन और तेज़ी से नष्ट होता सांस्कृतिक ताना-बाना और सामूहिकता के सामाजिक मूल्य जो आईएचआर के लिए अद्वितीय हैं, ये चिंता का विषय बन गए हैं' (पृष्ठ 2)। जलवायु परिवर्तन को इस परिस्थिति को और भी गंभीर बनाने वाला माना गया है (पृष्ठ 2)।

'भारतीय हिमालयी क्षेत्र में कौशल और उद्यमिता (ईएंडएस) परिदृश्य सुदृढ़ बनाना' से संबंधित अपने थीम आधारित समूह के माध्यम से बहिर्प्रवासन को कम करना इस योजना का उद्देश्य है, जिसमें अन्य के अतिरिक्त, 'पलायन और बेरोजगारी के मुद्दे के समाधान हेतु आईएचआर में कौशल और उद्यमिता विकास के विस्तार हेतु संभावित अपारंपरिक क्षेत्रों की पहचान करने का भी ध्येय रखा गया है' (पृष्ठ 21)।

अनुसंधान और नीति में आगे का रास्ता

देहरादून, उत्तराखंड, भारत में भारी वर्षा के दौरान आश्रय ढूंढते लोग।

© शटरस्टॉक/ wintelineproductions.com

7 अनुसंधान और नीति में आगे का रास्ता

पूर्ववर्ती अनुभागों में, उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन और पलायन के बीच संबंधों के ज्ञान और साक्ष्य की वर्तमान स्थिति का वर्णन किया गया है। इसके आधार पर अनुसंधान संबंधी कुछ कमियां, डाटा की ज़रूरतें और सरकार और इसके साझेदारों को जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में पलायन को बेहतर समझने और योजना बनाने में सहायता के लिए नीतिगत सिफारिशें रेखांकित करते हुए रिपोर्ट का समापन, निम्न अनुभाग का ध्येय है।

अनुसंधान की कमियां

उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों और पलायन के बीच संबंध समझने के लिए अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है। समान जलवायु दशाओं में कुछ लोग क्यों प्रवास कर जाते हैं और कुछ लोग क्यों वहीं बने रहते हैं, इस पर लागू संदर्भगत कारण कौन से हैं? ऐसे संबंधों की उन्नत और संवर्धित समझ, नियोजन और प्रभावशीलता में सहायक हो सकती है। कुछ प्रश्न, जिन पर आगे कार्य किया जा सकता है, उनमें निम्न शामिल हैं: पहाड़ी लोगों के लिए सृजित एक राज्य में पहाड़ी जिलों से ही सर्वाधिक बहिर्प्रवासन क्यों हुआ है? कौन प्रवास कर रहा है और कौन वहीं रह रहा है? जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल परिणामों के परिप्रेक्ष्य में सहनशीलता और असुरक्षाओं के बारे में पहाड़ों/मैदानों का विभाजन हमें क्या बताता है? पहले के एकल पुरुष के बहिर्प्रवासन का रूझान, किन कारणों से पूरे परिवार के बहिर्प्रवासन में बदल गया है? क्या पहले की तुलना में अब पलायन हेतु आवश्यक संसाधनों तक लोगों की बेहतर पहुँच हो सकती है? परती खेतों, खाली घरों और भुतहे गाँवों में बदलते गांवों में क्या हो रहा है?

बदलती जलवायु के अंतर्गत गतिशीलताओं के विभिन्न प्रकारों को समझने के लिए, अधिक जानकारी आवश्यक है। उत्तराखंड में आवागमन पर मुख्यतः पलायन, अधिकांशतः स्थायी और अर्ध-स्थायी पलायन के दायरे में चर्चा की गई है, जबकि मौसमी पलायन का कदाचित ही उल्लेख किया गया है। अन्य प्रकार के आवागमन, जैसे कि मौसमी चरवाही, उत्तराखंड में सामान्य बात है (Dangwal, 2009; Mitra et al., 2013; Nautiyal et al., 2003)। हालाँकि, किसी अध्ययन में इसका अन्वेषण नहीं किया गया है कि किस तरह से जलवायु परिवर्तन इन पारंपरिक प्रणालियों को प्रभावित कर सकता है – जिनका चरवाहा समुदायों के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक और पारिस्थितिक महत्त्व है। इसी प्रकार से इस बारे में भी कम ही अध्ययन किए गए हैं कि किस तरह से जलवायु परिवर्तन वर्तमान में नेपाल से उत्तराखंड को सीमा पार श्रमिक पलायन को प्रभावित कर सकता है (Bruslé, 2008; Gill, 2003; Saxena et al., 2010)। इसी प्रकार से, उत्तराखंड में विस्थापन का परीक्षण करने वाले अध्ययन उपलब्ध नहीं हैं। इस बारे में कोई डाटाबेस उपलब्ध नहीं है कि राज्य में 2013 की तीव्र बाढ़ में कितने लोग विस्थापित हुए, ऐसे विस्थापन के क्या निहितार्थ हैं; और क्या इसके कारण लोग स्थायी रूप से नई जगहों पर बस गए या लोग वापस लौटे (ADB, 2013; NIDM, 2014)।

उत्तराखंड में पलायन के निहितार्थ समझने के लिए अधिक अनुसंधानों की आवश्यकता है। लोगों के चले जाने के बाद क्या होता है? उपलब्ध अध्ययनों में अधिकांशतः ग्रामीण बहिर्प्रवासन पर चर्चा की गई है (Hoffmann et al., 2019; Joshi, 2018; Mamgain and Reddy, 2016; Rural Development and Migration Commission, 2018) और ऐसे बहिर्प्रवासन के परिणामों पर कदाचित ही ध्यान दिया गया है। हालाँकि यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि पलायन के पश्चात, प्रस्थान और गंतव्य वाले स्थल क्षेत्रों में क्या होता है। जहां अध्ययनों में इसे अभिलिखित किया गया है कि जलवायु परिवर्तन किस तरह से पलायन के पैटर्नों को प्रभावित कर रहा है (Jain, 2010;

Maharjan et al., 2018; Tiwari and Joshi, 2015) उनमें गतिशीलता के परिणामों का कदाचित ही अवलोकन किया गया है। क्या लोग अपने गंतव्य स्थल वाले क्षेत्रों में जलवायु प्रभावों से बेहतर अनुकूलन कर पाते हैं या नए जलवायु जोखिमों के प्रति अधिक असुरक्षित और भेद्य हो जाते हैं? उत्तराखंड में, जब लोग प्रवास करते हैं, तो वे प्रायः कृषि- आधारित से गैर-कृषि आधारित श्रम में रूपांतरण करते हैं। राज्य के लिए इसके क्या निहितार्थ हैं तालाबंद घरों और परती खेतिहार जमीनों वाले उजाड़ भुतहे गाँवों पर रिपोर्ट में पहाड़ों की दशा का चित्रण किया गया है। (Dey, 2017; Upadhyay, 2018) लेकिन ऐसे बहिर्प्रवासन के प्रभावों का कोई वैज्ञानिक मूल्यांकन नहीं किया गया है। इसके अलावा, जो लोग पीछे रह जाते हैं, उनके बारे में कोई चर्चा नहीं की गई है। इसी प्रकार से, नेपाली खेतिहर श्रमिकों के विस्तृत आप्रवास का आकलन करने वाले कोई अध्ययन नहीं हैं।

जो लोग वहीं रहने के विकल्प चुनते हैं या जाने में असमर्थ होते हैं, उनके बारे में अधिक जानकारी की आवश्यकता है। अनुसंधान और मूल्यांकन उन लोगों तक विस्तृत किए जाने चाहिए जो पीछे रह जाते हैं, न केवल उन तक सीमित होने चाहिए जो प्रवास कर जाते हैं (Ayeb-Karlsson et al., 2018; Nawrotzki and DeWaard, 2018; Zickgraf, 2018)। पर्यावरणीय निम्नीकरण और आपदाओं से प्रभावित कुछ जनसंख्या, वित्तीय संसाधनों के अभाव या सामाजिक नेटवर्कों तक पहुँच में कठिनाई के कारणों से प्रवास करने में असमर्थ हो सकती है। उदाहरण के लिए, पुरुषों के प्रवास कर जाने के बाद पीछे रह जाने वाली महिलाओं (Mittal et al., 2008; Sekhar, 2007) पर खेती के साथ घरेलू कामकाज संभालने की दोहरी जिम्मेदारियां आ जाती हैं – जिसके साथ उनको जलवायु के प्रभावों का भी सामना करना होता है। यद्यपि समाज के सबसे असुरक्षित वर्ग, निश्चित दशाओं में पलायन में सक्षम हो सकते हैं, लेकिन संसाधन संपन्न लोगों की अपेक्षा उनके पास बहुत ही कम विकल्प होते हैं। इसी प्रकार से, उन लोगों के बारे में अधिक जानकारी आवश्यक है जो अपनी इच्छा से वहीं रहते हैं (Farbotko and McMichael, 2019; Mallick and Schanze, 2020)।

पलायन के लैंगिक (जेंडर संबंधी) पहलुओं के बारे में अधिक जानकारी आवश्यक है। पलायन के निर्णय महिलाओं और पुरुषों को किस प्रकार प्रभावित कर सकते हैं, इस बारे में आनुभविक साक्ष्य आवश्यक हैं। क्या प्रवास करने या न करने का महिला का निर्णय, उसके परिवार की ज़रूरतों और प्राथमिकताओं पर आधारित होता है या वैवाहिक स्थिति पर, शैक्षिक स्तर पर या गंतव्य क्षेत्रों में आय उपार्जन क्षमता पर या व्यक्तिगत आकांक्षाओं पर आधारित होता है? क्या विवाहित महिलाओं के पास कम विकल्प होते हैं और उनके वहीं रहने की संभावनाएं अधिक होती हैं, जबकि अविवाहित महिलाओं के पास अधिक विकल्प होते हैं और उनके प्रवास करने की संभावना अधिक होती है? उत्तराखंड में महिलाएं प्रायः पीछे रह जाती हैं जबकि पुरुष प्रवास कर जाते हैं, हालांकि अब अधिक महिलाएं प्रवास कर रही हैं। प्रवास करने वाली और पीछे जाने वाली महिलाओं की विशेषताओं के बारे में डाटा एकत्रित करने से इन प्रश्नों के उत्तर मिल सकते हैं। जब महिलाएं, परिवार के साथ प्रवास कर जाती हैं, तो प्रवास का कारण प्रायः 'विवाह के बाद प्रवास' के रूप में बताया जाता है। हालाँकि पूरे भारत में इसके साक्ष्य हैं कि पलायन के बाद गंतव्य स्थल क्षेत्रों में महिलाएं, श्रम शक्ति का अंग बन जाती हैं (Ministry of Housing and Urban Poverty Alleviation, 2017, pp. 5–7)।

इस बारे में अनुसंधान की आवश्यकता है कि बढ़ता तापमान, पलायन को किस तरह प्रभावित कर सकता है। इसके वैज्ञानिक साक्ष्य हैं कि तापमान में भावी बढ़ोत्तरी, आवासीयता के लिए एक जोखिम होगी (Xu et al., 2020), जो आजीविका बनाए रखने की जनसंख्या की क्षमता को प्रभावित करेगी (IOM, 2009) और स्वास्थ्य को – विशेषकर मानवीय व्यवसाय वाले लोगों को प्रभावित करेगी (Kjellstrom et al., 2016; Sahu et al., 2013) – और इसके कि यह किस तरह से पलायन के पैटर्नों को प्रभावित कर सकता है (IOM, 2017; Mueller et al., 2014; Xu et al., 2020)। उत्तराखंड में पूर्वानुमानित तापमान वृद्धि पारिस्थितिक सहनशीलता, स्थानीय फसल रणनीतियों तथा कृषि आधारित आजीविकाओं को प्रभावित कर सकती है और निश्चित रूप से पलायन को प्रभावित करेगी। हीट स्ट्रेस (ग्रीष्म तनाव) पलायन करने वाले श्रमिकों के लिए विशेष रूप से खतरनाक है जो बाहरी परिवेशों में मानवीय श्रम करते हैं (उदा. निर्माण गतिविधियां)।

डाटा की आवश्यकताएं

तुलनीय, अनुदैर्ध्य और भूसंदर्भित डाटा की आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन और पलायन अनुसंधान में डाटा एक चुनौती है (IOM, 2009; Kaczan and Orgill-Meyer, 2020; Vinke, K.; Hoffmann, R., 2020)। पलायन डाटा प्रायः जनसंख्या की जनगणना या पलायन जनगणना में एकत्र किया गया है किन्तु इसमें इस बारे में जानकारी शामिल नहीं है कि किस तरह से पर्यावरणीय निम्नीकरण, जलवायु

परिवर्तन के प्रभाव या आपदाएं इसे प्रभावित करते हैं। पलायन के बारे में डाटा संकलन के लिए तैयार की जाने वाली प्रश्नावलियों में यह स्पष्ट रूप से पूछा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, भारतीय जनगणना के डाटा में, पलायन के प्रमुख प्रेरकों के बारे में जानकारी 'रोजगार', 'व्यवसाय', 'विवाह' और 'अन्य' के अंतर्गत एकत्र की जाती है। यदि किसी ने चक्रवात के प्रभाव के कारण या कम वर्षा की वजह से उपज में कमी आने के कारण प्रवास किया हो, तो डाटा संकलन के डिज़ाइन में इन कारकों को 'अन्य' के अंतर्गत रखने से उनके पलायन का मूल कारण छिप जाता है। इसके अलावा, डाटा संकलन के लिए जिम्मेदार संस्थान और एजेंसियां, ऐसे विषयों के बारे में प्रशिक्षित नहीं हो सकते हैं। अतएव, ऐसे प्रयासों को अनिवार्य प्रशिक्षण और क्षमता सृजन के साथ परिपूर्ण बनाया जाना चाहिए। विशेषकर पर्यावरणीय और जनांकिक चरों के कालक्रम के संदर्भ में डाटा, पद्धतिशास्त्रीय नवप्रवर्तन का एक मुख्य अवरोधक है। बेहतर साक्ष्य निर्मित करने के लिए सूक्ष्मतम रेजोल्यूशन वाले अस्थायी और स्थानिक डाटा की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, प्रत्येक कृषि ऋतु हेतु दीर्घकालीन कालक्रम पलायन डाटा (जब कृषि-आधारित परिवारों से पलायन संभावित होता है); इस बारे में डाटा कि कौन प्रस्थान कर रहा है; वे क्यों प्रस्थान कर रहे हैं; वे कहां के लिए प्रस्थान कर रहे हैं आदि। केवल उच्चतर प्रशासनिक स्तरों पर नहीं बल्कि परिवार या गाँव के स्तर पर सूक्ष्मतम रेजोल्यूशन वाला डाटा एकत्र किए जाने के प्रयास करने की आवश्यकता है। दीर्घकालीन अनुदैर्ध्य डाटा जिसकी तुलना की जा सके और जियो-टैग्ड (भूसंदर्भित) हो, वह पलायन के रूझानों और पैटर्नों का मूल्यांकन करने में और सूचित नीतिनिर्माण में भी मदद कर सकता है। जलवायु अनुसंधान के लिए, अच्छी गुणवत्ता वाला, ऐतिहासिक मौसमवैज्ञानिक डाटा प्रायः सीमित करने वाला कारक है। उत्तराखंड में मौसम विज्ञान केंद्रों की संख्या और गुणवत्ता में सुधार करने की ज़रूरत है। क्षेत्रीय-पैमाने वाले मॉडलों जो उत्तराखंड की क्षेत्रीय दशाओं जैसे कि ऊंचाई के पैटर्नों, पर्वतीय उत्थापन और अन्य जटिल स्थलाकृतिक विशेषताओं को बेहतर निरूपित कर सकते हैं, के परिणामों का सत्यापन करने के लिए अधिक अवलोकन महत्त्वपूर्ण हैं।

परिवार स्तरीय विशेषताओं का डाटा अवश्य संकलित किया जाना चाहिए। पलायन के निर्णय प्रायः घरेलू स्तर पर लिए जाते हैं (Stark and Bloom, 1985)[53]। हालाँकि परिवार में लोगों की प्रवास करने की क्षमताओं में आयु, वैवाहिक स्थिति, शिक्षा, घरेलू भौतिक और वित्तीय संसाधनों तक पहुँच तथा निर्णय-सृजन क्षमता के आधार पर अंतर होते हैं (Rao et al., 2020)। ये सभी कारक, एक ही परिवार में गतिशीलताओं के अलग-अलग परिणाम उत्पन्न कर सकते हैं। पारिवारिक स्तर पर पलायन को समझने के लिए, परिवार स्तरीय डाटा संकलित करना अनिवार्य है। राष्ट्रीय स्तर पर, भारत की जनगणना केवल प्रशासनिक अभिशासन स्तरों (राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तर) पर पलायन का डाटा संकलित करती है। इसके विपरीत राज्य स्तर पर पलायन आयोग (2017) ने ग्राम पंचायत (ग्राम परिषद) स्तर पर ऐसा डाटा संकलित करने के लिए उत्साहजनक कदम उठाया है। इसके अलावा, परिवार के स्तर पर डाटा को डाउनस्केल करने से विभिन्न सामाजिक विशेषताओं में पलायन के पैटर्न बेहतर ढंग से समझने में सहायता मिलेगी। ऐसे डाटा में जलवायु परिवर्तन असुरक्षा के विभिन्न पहलू, जैसे कि जलवायु प्रभावों के प्रति संपर्क और अनुकूलन क्षमता आदि शामिल हो सकते हैं।

सांख्यिकीय कुशलताओं और क्षमताओं में निवेश आवश्यक है। एक मानक नियमावली (प्रोटोकॉल) का पालन करते हुए, डाटा संकलन के लिए विभिन्न विभागों और एजेंसियों के बीच समन्वय से सुसंगति तथा कुल डाटा सुलभता में वृद्धि हो सकती है। वर्तमान में, राष्ट्रीय और राज्य स्तरों पर असमान स्थानिक और अस्थायी पैमानों पर भिन्न पद्धतियां उपयोग की जाती हैं। उदाहरण के लिए, दो मुख्य संस्थाओं (i) राष्ट्रीय जनगणना जिसमें प्रत्येक दस वर्ष पश्चात जिला स्तर पर डाटा एकत्र किया जाता है और (ii) राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) जो किसी निश्चित अवधि के बिना डाटा संकलित करता है, लेकिन यह प्रायः घरेलू/पारिवारिक स्तर पर इसे संकलित करता है। डाटा संकलित करने के लिए ये भिन्न पद्धतियों और परिभाषाओं का उपयोग करते हैं। यह भिन्न समय अवधियों में तुलना और करणी संदर्भ (क्रॉस रेफरेंसिंग) में बाधा उत्पन्न करता है। इसके अलावा, 2011 की जनगणना का पलायन डाटा 2019 में जारी किया गया, जिससे समय-संवेदी विश्लेषण और अनुसंधान में अत्यधिक विलंब हुआ।

राज्य में गतिशीलता (आवागमन) के पैटर्न समझने के लिए नवप्रवर्तक डाटा स्रोतों पर विचार किया जाना चाहिए। आवागमन प्रक्षेपपथ समझने के लिए मोबाइल फोन का उपयोग किया जा सकता है (Boas, 2019)। हैती में भूकंपों (Bengtsson et al., 2011) या बांग्लादेश

[53] स्टार्क और ब्लूम (1985) ने 'श्रम पलायन के नए अर्थशास्त्र' का विकास किया है। 'इस विधि की एक प्रमुख अंतर्दृष्टि यह है कि पलायन के निर्णय, पृथक व्यक्तिगत कर्ताओं द्वारा नहीं लिए जाते बल्कि संबंधित लोगों की अपेक्षाकृत बड़ी इकाइयों - आमतौर से परिवार या घर - द्वारा लिए जाते हैं, जिनमें लोग न केवल अपेक्षित आय अधिकतम करने के लिए बल्कि जोखिम कम करने के लिए और श्रम बाज़ार के अलावा विविध प्रकार की बाज़ार विफलताओं से जुड़ी रूकावटें शिथिल करने के लिए सामूहिक रूप से कार्य करते हैं' (in Massey et al., 1993, p. 436)।

में चक्रवातों (Lu et al., 2016b, 2016a) जैसी आपदाओं के पहले और बाद में, किसी जनसंख्या का आवागमन व्यवहार समझने के लिए ऐसे डाटा का उपयोग किया जा सकता है। भारत की सामाजिक-आर्थिक और जाति जनगणना, 2011 के अनुसार, मोबाइल फोन के सर्वाधिक प्रसार के मामले में उत्तराखंड का स्थान भारत में तीसरा है, जहां 86.60% परिवारों में एक मोबाइल फोन है[54]। ऐसे डाटा का विश्लेषण करने से जनसंख्या के आवागमन की अस्थायी और स्थानिक विशेषताएं प्रकाश में आ सकती हैं। हालाँकि, ऐसे किसी डाटा का विश्लेषण करने से पहले, डाटा सुरक्षा और अन्य नैतिक विचारणीय बिंदुओं पर सावधानी से विचार कर लिया जाना चाहिए।

नीतियों के लिए सिफारिशें

उत्तराखंड में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव और पलायन के पैटर्न समझने के लिए एक साक्ष्य आधार विकसित करना। राज्य में आय के स्रोत विविधीकृत करने के लिए पलायन एक प्रभावी पारिवारिक रणनीति है। बड़ी संख्या में (71%) जनसंख्या के जलवायु-संवेदी क्षेत्र जैसे कि कृषि पर निर्भर होने के कारण जलवायु मापदंडों जैसे कि तापमान और वर्षा में परिवर्तनों की वजह से आय में अस्थिरता संभावित है। वैकल्पिक आजीविका के सीमित अवसरों के कारण यह अस्थिरता और बढ़ती है। जैसा कि जलवायु परिवर्तन पर उत्तराखंड की कार्ययोजना में कहा गया है कि 'क्षेत्र में लाभकारी वैकल्पिक रोजगार अवसर नहीं हैं और पर्वतीय कृषि में जलवायु परिवर्तन प्रेरित अनिश्चितता ने लोगों को रोजगार की खोज में पहाड़ों से पलायन करने को विवश किया है' (GU, 2014,p. 105)। भारतीय हिमालय के विश्लेषण से प्रकट होता है कि पर्यावरणीय दशाओं के कारण आय में कमी आने के साथ पलायन में वृद्धि होती है (Banerjee, Gerlitz and Hoermann 2011)।

पहाड़ी जिलों से बहिर्प्रवासन के समाधान के लिए कृषि नीतियों का पुनरीक्षण जैसा कि अनुभाग 4.3 में चर्चा की गई है, घटती कृषि उत्पादकता, राज्य में बहिर्प्रवासन का एक कारण है। अपने राज्यव्यापी सर्वेक्षण में, ममगैन और रेड्डी ने पाया कि 'किसान अपनी आय में सुधार के लिए अपने कृषि उत्पादन को विविधीकृत करने के इच्छुक हैं, किन्तु उनको सहायता की आवश्यकता है' (Mamgain and Reddy 2016, p. 27)। किसानों को उनकी फसलों के विविधीकरण से परिचित कराना और इसका प्रशिक्षण देना, इसमें शामिल हो सकता है। उदाहरण के लिए, मशरूम जैसी नकदी फसलें उगाया जाना, जिनके लिए कम पानी की आवश्यकता होती है। या औषधीय और सगंध पौधों (एमएपी)[55] की खाद्यान्नों के साथ अंतःफसली खेती करना। एमएपी में निवेश पर प्रतिफल अधिक हैं और सौंदर्य प्रसाधन तथा औषधि क्षेत्रों में काफी माँग भी है। इनको जंगली जानवर भी नहीं खाते (जंगली जानवरों द्वारा फसलों को नष्ट करना, बहिर्प्रवासन का एक कारण है, अनुभाग 4.3 देखें)। किसानों को अन्य सहायता, जैसे कि कृषि प्रसार सेवाओं तक बेहतर पहुँच, फसल और पशु बीमा की प्रक्रिया और पूरे चक्र के बारे में जानकारी प्रदान करना, सिंचाई माध्यमों और वर्षा जल संग्रहण संरचनाओं का विकास, बेहतर गुणवत्ता के बीजों की उपलब्धता, बाज़ारों तक बेहतर पहुँच और संपर्क सुविधा या सेब आदि बागवानी फसलों की बेहतर मार्केटिंग, आदि भी प्रदान की जा सकती है। परित्यक्त भूमि का पुनर्विकास भी आय के नए स्रोत उत्पन्न कर सकता है।

पहाड़ी जिलों में अर्थव्यवस्था को नवजीवन देने के लिए वैकल्पिक आजीविका के विकल्प प्रस्तुत किया जाना। पलायन आयोग द्वारा 2017 में कराए गए एक सर्वेक्षण में, रोजगार के अवसरों के अभाव को बहिर्प्रवासन का प्रमुख कारण बताया गया (लगभग 50% उत्तरदाताओं द्वारा उल्लेख किया गया, अधिक जानकारी के लिए अनुभाग 4.3 देखें)। अतएव, पहाड़ों में उपलब्ध रोजगार के अवसरों के प्रकारों और गुणवत्ता का विश्लेषण, क्षेत्र में बहिर्प्रवासन को समझने के लिए पहला कदम है। दूसरे, चूंकि पहाड़ी जिलों में कार्यशील पुरुषों का प्रतिशत, कार्यशील महिलाओं की अपेक्षा कम होता है, इसलिए वैकल्पिक आजीविका अवसरों का लक्ष्य महिलाओं को बनाया जा सकता है। हिलांस (HILANS) (हाईलैंड इनोवेटिव लाइवलीहुड असेंडिंग नेचर सस्टेनेबिलिटी)[56] ऐसी एक पहल का उत्कृष्ट उदाहरण है, जो ग्रामीण परिवारों को व्यापक अर्थव्यवस्था में धारणीय आजीविका के अवसर प्राप्त करने में सक्षम बनाता है। इस संचालित पहल में इसके व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत इसके लाइवलीहुड कलेक्टिव प्रोग्राम एंड यूथ (सामूहिक आजीविका कार्यक्रम एवं युवा) के अंतर्गत (जिसमें लगभग 60% महिलाएं हैं) के अंतर्गत महिलाओं को लक्षित किया गया है (ILSP, 2018)। महिलाएं संगठित होकर अपने गाँव में परिवारों

[54] https://secc.gov.in/stateSummaryReport#

[55] जलवायु परिवर्तन पर उत्तराखंड की कार्य योजना में यह उल्लेख किया गया है कि 'एमएपी से निष्कर्षित तेलों और सुगंधों के लिए भारी वाणिज्यिक संभावनाएं हैं। सगंध पौधे जैसे कि लेमन ग्रास, सिट्रोनेला, पामारोजा, चैमोमिला, तुलसी, जेरेनियम, नरमोथा, जापानी पुदीना, खस और गेंदा आदि का सौंदर्य प्रसाधन उद्योग में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है' (GU, 2014,p. 72–73)।

से अतिरिक्त खाद्यान्न, सब्जियां, फल आदि एकत्रित करती हैं (जो घरेलू उपभोग हेतु उपयोग नहीं किए गए होते) और इस कार्यक्रम के अंतर्गत स्थापित कृषि-प्रसंस्करण केंद्रों पर लाती हैं। वे इन केंद्रों में काम करते हुए, बेकिंग उत्पाद, अचार, जैम और स्प्रेड आदि का उत्पादन करती हैं जो हिलांस के ब्रांड नाम के अंतर्गत बाज़ार में प्रस्तुत किया और बेचा जाता है। यह इन महिलाओं को एक वैकल्पिक आजीविका प्रदान करता है। प्रायः ये केंद्र गाँवों के निकट स्थित हैं, इसलिए ऐसे केंद्रों पर कार्य करने के साथ महिलाएं अपनी घरेलू जिम्मेदारियां भी पूरी कर सकती हैं। ऐसे कार्यक्रम न केवल आजीविका, बल्कि कौशल प्रशिक्षण भी प्रदान करते हैं, जिससे रोजगार के अन्य अधिक अवसर उत्पन्न होते हैं। यह कार्यक्रम, राज्य के आठा पहाड़ी जिलों में लागू है और अन्य जिलों में भी इसे दोहराया जा सकता है। इसके अलावा, अन्य क्षेत्रों जैसे कि पर्यटन आदि को भी लक्ष्य बनाया जा सकता है। उत्तराखंड में प्रचुर प्राकृतिक संपदा है, जिसका धारणीय इको-पार्क विकसित करने के लिए दोहन किया जा सकता है। गाँवों में गृह-निवास (होम स्टे) को बढ़ावा दिया जा सकता है, जो स्थानीय लोगों के लिए रोजगार के अवसर उत्पन्न कर सकता है। जलवायु में प्रतिकूल परिवर्तन हो रहे हैं और लोगों को पुराने काम-धन्धों में लगाए रखना पर्याप्त नहीं होगा, नए व्यावसायिक और रोजगार के अवसर सृजित करने की आवश्यकता है। व्यवस्थित पर्यटन ऐसा ही एक विकल्प हो सकता है और पहाड़ों के ऐतिहासिक आर्थिक पिछड़ेपन को लाभकारी स्थिति में बदल सकता है।

सार्वजनिक संस्थानों और सरकारी निकायों को पलायन के कारण हो रहे जनांकिकीय परिवर्तनों के लिए तैयारी करनी होगी। वर्तमान में, उत्तराखंड में अधिकांश लोग (70%) राज्य में आंतरिक पलायन कर रहे हैं, जिनमें अधिकांश प्रायः पहाड़ों से मैदानों और घाटियों की ओर आते हैं। पलायन के दृष्टिकोण से और सुरक्षित, क्रमबद्ध और नियमित पलायन (जीसीएम) पर वैश्विक समझौते के सिद्धांतों के अनुरूप, जिस पर भारत ने भी हस्ताक्षर किए हैं, उत्तरदायी सार्वजनिक संस्थानों को इन प्रस्थान करने वाले लोगों का सुरक्षित और क्रमबद्ध पलायन सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। जलवायु अनुकूलन के दृष्टिकोण से, अनुसंधान और नीतियों को ऐसी रणनीतियों की पहचान और प्राथमिकता निर्धारण पर केंद्रित करने की आवश्यकता है जो इसे सुगम बना सकें, जिसके साथ यथास्थान पर अनुकूलन के ऐसे विकल्प सुदृढ़ बनाए जाने चाहिए जो लोगों को घर छोड़े बिना अनुकूलन करने में सहायता करें। समुदायों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कम करने के साथ राज्य में पलायन के परिणामों हेतु योजना बनाने के लिए दो-तरफा विधि की आवश्यकता है। भविष्य में, जैसा कि अनुभाग 3 में चर्चा की गई है, विभिन्न आरसीपी परिदृश्यों के अनुसार तापमान 1.6° से. से 5.3° से. तक बढ़ सकता है। यह विशेषकर मैदानों में कुछ क्षेत्रों को गैर-आवास योग्य बना सकता है। एक जनांकिक बदलाव हो सकता है, जिसके तहत लोग मैदानों से पहाड़ों की ओर प्रवास कर सकते हैं। हालांकि इस दिशा में अधिक मूल्यांकन और अनुसंधान की आवश्यकता है। तथापि, सार्वजनिक संस्थानों को ऐसे परिवर्तनों का आकलन और निगरानी करने तथा इनके लिए योजना बनाने की ज़रूरत है।

प्रतिकूल स्वास्थ्य प्रभावों के लिए तैयारी। 2019 में, उत्तराखंड में डेंगू के मामलों की अभूतपूर्व संख्या देखने को मिली। राज्य के स्वास्थ्य संबंधित अधिकारियों ने, बदलती जलवायु को इसका कारण बताया (Mishra, 2019; Verma, 2019)। उत्तराखंड का एक मूल्यांकन दर्शाता है कि 1990 से तापमान वृद्धि राज्य में मलेरिया फैलने की सीमा तक विस्तृत हो चुकी है (Dhiman et al., 2019)। एक अन्य अध्ययन में आरसीपी4.5 के अंतर्गत उत्तराखंड में भविष्य में (2030 के दशक में) मलेरिया प्रसार की एक नई संभावना पाई गई (Sarkar et al. 2019, p. 9)। इसी प्रकार से, एक अध्ययन में यह पूर्वानुमान व्यक्त किया गया कि बदलती जलवायु दशाएं, उत्तराखंड को वाहक-जनित रोगों (वीबीडी) के स्थानिक और अस्थायी वितरणों में परिवर्तनों के प्रति अधिक असुरक्षित बनाएंगी। (Dhiman et al., 2010, p. 766)। वाहक जनित रोगों के बढ़ते स्तर तथा सीमित स्वास्थ्य सुविधाएं, राज्य में और अधिक पलायन प्रेरित कर सकती हैं।

जलवायु परिवर्तन की नीतियों और योजनाओं में जलवायु परिवर्तन और पलायन के बीच संबंधों को स्वीकार करना होगा जलवायु परिवर्तन पर उत्तराखंड की कार्य योजना (2014) में, पलायन और इसके संभावित प्रभावों को समझने के लिए एक अध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया गया है (GU 2014, 112)। *उत्तराखंड राज्य की मानव विकास रिपोर्ट* में, राज्य में पलायन को प्रबंधित करने के महत्त्व पर जोर दिया गया है और यह संक्षेपित किया गया है कि 'बहिर्प्रवासन की प्रकृति, कारण, पैटर्न और परिणाम, समय के साथ परिवर्तित हुए हैं' (GU, 2018); हालाँकि, इसमें जलवायु परिवर्तन को संदर्भित नहीं किया गया है। जलवायु परिवर्तन-पलायन के बीच संबंधों को मौजूदा असुरक्षा

[56] हिलांस (HILANS) (http://www.hilans.in/) एकीकृत आजीविका समर्थन परियोजना (आईएलएसपी) नामक एक सरकारी संस्था का अंग है जो व्यावसायिक उद्यमों के विकास द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार पर केंद्रित है। आईएलपीएस के बारे में अधिक पढ़ने के लिए, कृपया यहां देखें: https://ilsp.in/StaticData/Annual%20Report%202017-18%20ILSP.pdf.

मूल्यांकनों (जैसे कि भारतीय हिमालयी क्षेत्र के लिए किए गए असुरक्षा मूल्यांकन [DST 2019]) या उत्तराखंड में जिला और प्रखंड स्तर पर किए गए असुरक्षा मूल्यांकन (INRM, 2016b) में एकीकृत करना, इस दिशा में एक संभावित कदम हो सकता है। भविष्य में सरकार द्वारा सहभागी ग्रामीण मूल्यांकनों पर किए जाने वाले अध्ययनों में भी ऐसे संबंधों पर आधारित प्रश्न शामिल किए जा सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन संबंधी नीतियों और विकास नीतियों में पलायन को मुख्य महत्त्व दिया जाना। हालांकि पलायन के लिए कोई विशेष निश्चित सरकारी विभाग नहीं है, लेकिन ग्रामीण विकास और पलायन आयोग 2017 के साथ उत्तराखंड, राज्य में पलायन के सभी पहलुओं का परीक्षण करने के लिए सक्षम स्थिति में है। ग्राम पंचायत (ग्राम परिषद) स्तर पर संकलित सर्वेक्षण डाटा, राज्य में पलायन के संबंध में उपलब्ध एक समग्र डाटासेट है। यह पलायन संबंधी अनुसंधान और विश्लेषण करने तथा समझ में सुधार के लिए एक अच्छा आधार प्रदान करता है। इसका अन्वेषण करते हुए, कि जलवायु परिवर्तन प्रभावों पर प्रतिक्रिया करते हुए लोग कब, कैसे और क्यों या तो प्रवास करने का विकल्प चुनते हैं या प्रवास करने में असमर्थ रहते हैं, जलवायु परिवर्तन को इससे एकीकृत किया जा सकता है। विकास की नीति के दृष्टिकोण से, जमीनी स्तर पर भौगोलिक और सांस्कृतिक सूक्ष्मभेदों के मूल्यांकन आयोजित किए जा सकते हैं। ऐसे मूल्यांकन, इस बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान कर सकते हैं कि किस तरह से जलवायु के जोखिम और पलायन के परिणाम, सामाजिक विशेषताओं जैसे कि जाति, लिंग/जेंडर या आयु के साथ भिन्न होते हैं। इससे नीतिनिर्माताओं को विभिन्न स्थानों पर और संस्कृतियों में जलवायु के जोखिमों और गतिशीलताओं की विविधता समझने में मदद मिल सकती है और ऐसे सूचित निर्णय लिए जा सकते हैं जो राजनैतिक और सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य हों।

अभिशासन और सार्वजनिक नीति के सभी स्तरों पर एक सुसंगत विधि की आवश्यकता है। नीतिनिर्माण के लिए जलवायु परिवर्तन और पलायन एक गतिशील तथा विविध क्षेत्रों से संबंधित विषय है, जो एक एकीकृत विधि की माँग करता है। उदाहरण के लिए, राज्य में जलवायु परिवर्तन और पलायन पर एक कार्यदल गठित किया जा सकता है, जिसमें पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन, पलायन, ग्रामीण विकास, शहरीकरण, कृषि, सिंचाई, जल प्रबंधन और आपदा प्रबंधन आदि से संबंधित विविध नीतिनिर्माता कार्यकर्ताओं का प्रतिनिधित्व हो।

शब्दसूची

रानीखेत, उत्तराखंड में चीड़ वन।

© शटरस्टॉक/इमेजेस ऑफ इंडिया

8 शब्दसूची

Adams, H., 2016. Why populations persist: mobility, place attachment and climate change. Population and Environment 37, 429–448. https://doi.org/10.1007/s11111-015-0246-3

ADB, 2013. India: Uttarakhand Disaster 2013; Joint Rapid Damage and Needs Assessment Report. Asian Development Bank.

ADB, 2009. Climate Change and Migration in the Asia and Pacific. Asian Development Bank, Manila

Agarwal, A., Bhatnaga, N.K., Nema, R.K., Agrawal, N.K., 2012. Rainfall Dependence of Springs in the Midwestern Himalayan Hills of Uttarakhand. Mountain Research and Development 32, 446. https://doi.org/10.1659/MRD-JOURNAL-D-12-00054.1

Agarwal, B., 2010. Does Women's Proportional Strength Affect their Participation? Governing Local Forests in South Asia. World Development 38, 98–112. https://doi.org/10.1016/j.worlddev.2009.04.001

Awasthi, I.C., 2010. Migration Patterns in Hill Economy of Uttarakhand: Evidence from Field Enquiry. The Indian Economic Journal 57, 84–99. https://doi.org/10.1177/0019466220100406

Ayeb-Karlsson, S., Smith, C.D., Kniveton, D., 2018. A discursive review of the textual use of 'trapped' in environmental migration studies: The conceptual birth and troubled teenage years of trapped populations. Ambio 47, 557–573. https://doi.org/10.1007/s13280-017-1007-6

BAIF, 2011. Sustainable Rural Livelihood Creation and Natural Resource Management in Central and Western Himalayas. Bharatiya Agro Industries Foundation

Bandyopadhyay, J., Perveen, S., 2003. The Interlinking of Indian Rivers: Questions on the Scientific, Economic and Environmental Dimensions of the Proposal, in: Mirza, M.M.Q., Ahmed, A.U., Ahmad, Q.K. (Eds.), Interlinking Rivers in India: Issues and Concern. pp. 53–76

Banerjee, A., Dimri, A.P., Kumar, K., 2019. Rainfall over the Himalayan foot-hill region: Present and future. J Earth Syst Sci 129, 11. https://doi.org/10.1007/s12040-019-1295-2

Banerjee, S., Black, R., Mishra, A., Kniveton, D., 2018. Assessing vulnerability of remittance-recipient and nonrecipient households in rural communities affected by extreme weather events: Case studies from South-West China and North-East India. Population, Space and Place 1–15. https://doi.org/10.1002/psp.2157

Banerjee, S., Gerlitz, J.-Y., Hoermann, B., 2011. Labour migration as a response strategy to water hazards in the Hindu Kush-Himalayas. ICIMOD

Becker, C.M., Morrison, A.R., 1997. Beyond Urban Bias in Africa: Urbanization in an Era of Structural Adjustment. World Development 21, 535–554. https://doi.org/10.2307/221370

Bhandari, G., Reddy, B.V.C., 2015. Impact of Out-Migration on Agriculture and Women Work Load: An Economic Analysis of Hilly Regions of Uttarakhand, India. Indian Journal of Agricultural Economics 70, 10

Bhatt, I.D., Rawal, R.S., Dhar, U., 2000. The Availability, Fruit Yield, and Harvest of Myrica esculenta in Kumaun (West Himalaya), India. Mountain Research and Development 20, 146–153. https://doi.org/10.1659/0276-4741(2000)020[0146:TAFYAH]2.0.CO;2

Black, R., Adger, W.N., Arnell, N.W., Dercon, S., Geddes, A., Thomas, D., 2011. The effect of environmental change on human migration. Global Environmental Change 21, S3–S11. https://doi.org/10.1016/j.gloenvcha.2011.10.001

Black, R., Arnell, N.W., Adger, W.N., Thomas, D., Geddes, A., 2013. Migration, immobility and displacement outcomes following extreme events. Environmental Science & Policy 27, S32–S43. https://doi.org/10.1016/j.envsci.2012.09.001

Black, R., Kniveton, D., Skeldon, R., Coppard, D., Murata, A., Schmidt-Verkerk, K., 2008. Demographics and Climate Change: Future Trends And their Policy Implications for Migration. University of Sussex, Development Research Centre on Migration, Globalisation and Poverty

Boas, I., Farbotko, C., Adams, H., Sterly, H., Bush, S., van der Geest, K., Wiegel, H., Ashraf, H., Baldwin, A., Bettini, G., Blondin, S., de Bruijn, M., Durand-Delacre, D., Fröhlich, C., Gioli, G., Guaita, L., Hut, E., Jarawura, F.X., Lamers, M., Lietaer, S., Nash, S.L., Piguet, E., Rothe, D., Sakdapolrak, P., Smith, L., Tripathy Furlong, B., Turhan, E., Warner, J., Zickgraf, C., Black, R., Hulme, M., 2019. Climate migration myths. Nature Climate Change 9, 901–903. https://doi.org/10.1038/s41558-019-0633-3

Bond, T.C., Doherty, S.J., Fahey, D.W., Forster, P.M., Berntsen, T., DeAngelo, B.J., Flanner, M.G., Ghan, S., Kärcher, B., Koch, D., Kinne, S., Kondo, Y., Quinn, P.K., Sarofim, M.C., Schultz, M.G., Schulz, M., Venkataraman, C., Zhang, H., Zhang, S., Bellouin, N., Guttikunda, S.K., Hopke, P.K., Jacobson, M.Z., Kaiser, J.W., Klimont, Z., Lohmann, U., Schwarz, J.P., Shindell, D., Storelvmo, T., Warren, S.G., Zender, C.S., 2013. Bounding the role of black carbon in the climate system: A scientific assessment. Journal of Geophysical Research: Atmospheres 118, 5380–5552. https://doi.org/10.1002/jgrd.50171

Boneva, B.S., Frieze, I.H., 2001. Toward a Concept of a Migrant Personality. J Social Issues 57, 477–491. https://doi.org/10.1111/0022-4537.00224

Bruslé, T., 2008. Choosing a Destination and Work: Migration Strategies of Nepalese Workers in Uttarakhand, Northern India. Mountain Research and Development 28, 240–247. https://doi.org/10.1659/mrd.0934

Buth, M., Kahlenborn, W., Greiving, S., Fleischhauer, M., Zebisch, M., Schneiderbauer, S., Schauser, I., 2017. Guidelines for Climate Impact and Vulnerability Assessments: Recommendations of the Interministerial Working Group on Adaptation to Climate Change of the German Federal Government. Umweltbundesamt, Dessau-Roßlau, Germany

Ca, R., Raju, B.M.K., Subbarao, A., kv, R., Rao, V., Ramachandran, K., Nagasri, K., Dupdal, R., Samuel, J., Shankar, K., Srinivasarao, M., Mandapaka, M., 2018. Climate change in Uttarakhand: Projections, Vulnerability and Farmers' Perceptions. Journal of Agrometeorology 20, 37–41

Census, 2011a. A-1 Number Of Villages, Towns, Households, Population And Area

Census, 2011b. Census of India 2011, Meta Data

Census, 2011c. Primary Census Abstract Data Tables (India & States/UTs - District Level) (Excel Format)

Census, 2011d. Migration. Census, Government of India

Census, 2011e. Implication of Terms Used in Indian Censuses

Chaturvedi, R.K., Joshi, J., Jayaraman, M., Bala, G., Ravindranath, N.H., 2012. Multi-model climate change projections for India under representative concentration pathways. CURRENT SCIENCE 103, 12

Chopra, R., 2014. Uttarakhand: Development and Ecological Sustainability

Chou, C., 2003. Land–sea heating contrast in an idealized Asian summer monsoon. Climate Dynamics 21, 11–25. https://doi.org/10.1007/s00382-003-0315-7

Dangwal, D.D., 2009. The Lost Mobility: Pastoralism and Modernity in Uttarakhand Himalaya (India). Nomadic Peoples 13, 84–101. https://doi.org/10.3167/np.2009.130206

Das, L., Meher, J.K., 2019. Drivers of climate over the Western Himalayan region of India: A review. Earth-Science Reviews 198, 102935. https://doi.org/10.1016/j.earscirev.2019.102935

Das, S., Ashrit, R., Moncrieff, M.W., 2006. Simulation of a Himalayan cloudburst event. Journal of Earth System Science 115, 299–313. https://doi.org/10.1007/BF02702044

De Dominicis, S., Fornara, F., Ganucci Cancellieri, U., Twigger-Ross, C., Bonaiuto, M., 2015. We are at risk, and so what? Place attachment, environmental risk perceptions and preventive coping behaviours. Journal of Environmental Psychology 43, 66–78. https://doi.org/10.1016/j.jenvp.2015.05.010

Department of Planning, GU, 2018. Uttarakhand Vision 2030

Deshingkar, P., Akter, S., 2009. Migration and Human Development in India. UNDP

Deshingkar, P., Farrington, J., 2009. Circular Migration and Multi-locational Livelihood Strategies in Rural India. Oxford University Press, New Delhi

Dey, A., 2017. Uttarakhand's ghost villages: Abandoned farms, empty homes and very few people. Scroll.in

Dhiman, R., Singh, Poonam, Yadav, Y., Saraswat, S., Kumar, G., Singh, R., Ojha, V., Joshi, B., Singh, Pankaj, 2019. Preparedness for malaria elimination in the wake of climate change in the State of Uttarakhand (India). J Vector Borne Dis 56, 46. https://doi.org/10.4103/0972-9062.257774

Dhiman, R.C., Pahwa, S., Dhillon, G.P.S., Dash, A.P., 2010. Climate change and threat of vector-borne diseases in India: are we prepared? Parasitol Res 106, 763–773. https://doi.org/10.1007/s00436-010-1767-4

Dhyani, P.P., 2015. State at a Glance: Uttarakhand. GBPIHED, Kosi-Katarmal, Almora

Dhyani, R.P., 1994. An approach to economic planning for the rural poor of central Himalayas. Classical Pub. Co., New Delhi

Dimri, A.P., Kumar, D., Choudhary, A., Maharana, P., 2018. Future changes over the Himalayas: Maximum and minimum temperature. Global and Planetary Change 162, 212–234. https://doi.org/10.1016/j.gloplacha.2018.01.015

DoRD, GoI, 2011. Socio- Economic and Caste Census

Douville, H., Royer, J.-F., Polcher, J., Cox, P., Gedney, N., Stephenson, D.B., Valdes, P.J., 2000. Impact of CO_2 Doubling on the Asian Summer Monsoon: Robust Versus Model-dependent Responses. Journal of the Meteorological Society of Japan 78, 421–439. https://doi.org/10.2151/jmsj1965.78.4_421

DST, 2019a. Manual on Adaptation to Climate Change in the Indian Himalayan Region. Department of Science and Technology

DST, 2019b. Climate Vulnerability Assessment For The Indian Himalayan Region Using A Common Framework

Duan, K., Yao, T., Thompson, L.G., 2006. Response of monsoon precipitation in the Himalayas to global warming. Journal of Geophysical Research: Atmospheres 111. https://doi.org/10.1029/2006JD007084

Dugam, S., 2008. Role of North Atlantic oscillation and Southern oscillation in deficient and excess monsoon years. Indian Journal of Science and Technology 1. https://doi.org/10.17485/ijst/2008/v1i5/29350

Falco, C., Galeotti, M., Olper, A., 2019. Climate change and migration: Is agriculture the main channel? Global Environmental Change 59, 101995. https://doi.org/10.1016/j.gloenvcha.2019.101995

Farbotko, C., McMichael, C., 2019. Voluntary immobility and existential security in a changing climate in the Pacific. Asia Pac. Viewp. 60, 148–162. https://doi.org/10.1111/apv.12231

Field, C.B., Barros, V., Stocker, T.F., Dahe, Q. (Eds.), 2012. Managing the Risks of Extreme Events and Disasters to Advance Climate Change Adaptation: Special Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change. Cambridge University Press, Cambridge. https://doi.org/10.1017/CBO9781139177245

Foresight, 2011a. Migration and Global Environmental Change. The Government Office for Science, London

Foresight, 2011b. Migration and Global Environmental Change (2011) Final Project Report. Government Office for Science, London

Forest Survey of India (FSI), 2019. India State of Forest Report 2019: Volume II. Forest Survey of India, Ministry of Environment, Forest & Climate Change, Government of India, Dehradun, India

Frieze, I.H., Hansen, S.B., Boneva, B., 2006. The migrant personality and college students' plans for geographic mobility. Journal of Environmental Psychology 26, 170–177. https://doi.org/10.1016/j.jenvp.2006.05.001

Gallaway, L.E., 1969. Age and Labor Mobility Patterns. Southern Economic Journal 36, 171. https://doi.org/10.2307/1056434

Gautam, Y., Andersen, P., 2016. Rural livelihood diversification and household well-being: Insights from Humla, Nepal. Journal of Rural Studies 44, 239–249. https://doi.org/10.1016/j.jrurstud.2016.02.001

Gill, G.J., 2003. Seasonal labour migration in rural Nepal: a preliminary overview. Overseas Development Institute, London

GIZ and EURAC, 2017. Risk Supplement to the Vulnerability Sourcebook. Guidance on how to apply the Vulnerability Sourcebook's approach with the new IPCC AR5 concept of climate risk. Bonn

Goswami, B.N., Kulkarni, J.R., Mujumdar, V.R., Chattopadhyay, R., 2010. On factors responsible for recent secular trend in the onset phase of monsoon intraseasonal oscillations. International Journal of Climatology 30, 2240–2246. https://doi.org/10.1002/joc.2041

Government of Himachal Pradesh, 2002. Himachal Pradesh Human Development Report. Planning Department

Government of Uttarakhand, 2019. State Profile [WWW Document]. Land Use. URL http://shm.uk.gov.in/pages/display/6-state-profile (accessed 1.21.20)

GU, 2018. Human Development Report of State of Uttarakhand. Department of Planning , Government of Uttarakhand

GU, 2014. Uttarakhand Action Plan on Climate Change: Transforming Crisis to Opportunity. Government of Uttarakhand

Habeeb, R., Javaid, S., 2019. Social Inclusion of Marginal in the Great Climate Change Debate: Case of Slums in Dehradun, India. SAGE Open 9, 215824401983592. https://doi.org/10.1177/2158244019835924

Hasnain, S.I., 2002. Himalayan glaciers meltdown: impact on. FRIEND 2002: Regional Hydrology: Bridging the Gap Between Research and Practice 417

Hijmans, R.J., Cameron, S.E., Parra, J.L., Jones, P.G., Jarvis, A., 2005. Very high resolution interpolated climate surfaces for global land areas. International Journal of Climatology 25, 1965–1978. https://doi.org/10.1002/joc.1276

Hock, R., Rasul, G., Adler, C., Cáceres, B., Gruber, S., Hirabayashi, Y., Jackson, M., Kääb, A., Kang, S., Kutuzov, S., Milner, A., Molau, U., Morin, S., Orlove, B., Steltzer, H., 2019. High Mountain Areas. In: IPCC Special Report on the Ocean and Cryosphere in a Changing Climate. IPCC

Hoermann, B., Banerjee, S., Kollmair, M., 2010. Labour Migration for Development in the Western Hindu Kush-Himalayas. Understanding a livelihood strategy in the context of socioeconomic and environmental change. ICIMOD, Kathmandu

Hoffmann, E.M., Konerding, V., Nautiyal, S., Buerkert, A., 2019. Is the push-pull paradigm useful to explain rural-urban migration? A case study in Uttarakhand, India. PLoS ONE 14, e0214511. https://doi.org/10.1371/journal.pone.0214511

ILSP, 2018. Annual Report of ILSP 2017-18

INCCA, 2010. Climate Change and India: A 4x4 Assessment - A Sectoral and Regional Analysis for 2030s. Ministry of Environment & Forests, Government of India, Indian Government's Indian Network on Climate Change Assessment

INRM, 2016a. Uttarakhand Current and Future Climate Change Projections: Technical Report on Current Climate and Future Climate Change Projections (No. Technical Assistance-TAAS-0036). CDKN

INRM, 2016b. Climate Change Risks and Opportunities in Uttarakhand, India: Technical Report on District (Block) Level Vulnerability for Select Sectors (Deliverable#5 Draft Report). INRM Consultants Pvt Ltd, New Delhi

IOM, 2017. Extreme Heat and Migration, Extreme Heat and Migration: The Impacts Of Threats To Habitability From Increasing And Extreme Heat Exposure Due To Climate Change On Migration Movements

IOM, 2009. Migration, environment and climate change: assessing the evidence. International Organization for Migration, Geneva

IPCC, 2019. IPCC, 2019: Summary for Policymakers. In: IPCC Special Report on the Ocean and Cryosphere in a Changing Climate

IPCC, 2014. Summary for Policymakers, in: Field, C.B., Barros, V.R., Dokken, D.J., Mach, K.J., Mastrandrea, M.D., Bilir, T.E., Chatterjee, M., Ebi, K.L., Estrada, Y.O., Genova, R.C., Girma, B., Kissel, E.S., Levy, A.N., MacCracken, S., Mastrandrea, P.R., White, L.L. (Eds.), Climate Change 2014: Impacts, Adaptation, and Vulnerability. Part A: Global and Sectoral Aspects. Contribution of Working Group II to the Fifth Assessment Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change. Cambridge University Press, Cambridge, United Kingdom, and New York, NY, USA, pp. 1–32

IPCC, 2000. Special report on emissions scenarios: a special report of Working Group III of the Intergovernmental Panel on Climate Change. Cambridge University Press, Cambridge; New York

IPCC, 1990a. Policymaker Summary of Working Group II (Potential Impacts of Climate Change). WMO, Geneva

IPCC, 1990b. Climate Change, The IPCC Impacts Assessment. Intergovernmental Panel on Climate Change

Isaac, R.K., Isaac, M., 2017. Vulnerability of Indian Agriculture to Climate Change: A Study of the Himalayan Region State 11, 7

Jacobson, C., Crevello, S., Chea, C., Jarihani, B., 2018. When is migration a maladaptive response to climate change? Regional Environmental Change. https://doi.org/10.1007/s10113-018-1387-6

Jain, A., 2010. Labour Migration and Remittances in Uttarakhand. ICIMOD

Jain, A., Nagarwalla, D.J., 2004. Why conserve forests? A baseline study to assess people's perceptions, attitudes and practices for increasing people's involvement in conservation. Appropriate Technology India, Dehradun

Jodha, N.S., 1992. Mountain perspective and sustainability: A framework for development strategy, in: Sustainable Mountain Agriculture. Oxford and IBH Co Pvt Ltd, New Delhi, India

Jónsson, G., 2011. Non-migrant, sedentary, immobile, or 'left behind'? 18

Joshi, B., 2018. Recent Trends of Rural Out-migration and its Socio-economic and Environmental Impacts in Uttarakhand Himalaya. Journal of Urban and Regional Studies on Contemporary India 4, 1–14

Kaczan, D.J., Orgill-Meyer, J., 2020. The impact of climate change on migration: a synthesis of recent empirical insights. Climatic Change 158, 281–300. https://doi.org/10.1007/s10584-019-02560-0

Kapos, V., Rhind, J., Edwards, M., Price, M.F., Ravilious, C., 2000. Developing a map of the world's mountain forests., in: Forests in Sustainable Mountain Development: A State of Knowledge Report for 2000. Task Force on Forests in Sustainable Mountain Development. CABI, Wallingford, pp. 4–19. https://doi.org/10.1079/9780851994468.0004

Kassie, G.W., Kim, S., Fellizar, F.P., Ho, B., 2017. Determinant factors of livelihood diversification: Evidence from Ethiopia. Cogent Social Sciences 3. https://doi.org/10.1080/23311886.2017.1369490

Kavi Kumar, K.S., Viswanathan, B., 2013. Influence of weather on temporary and permanent migration and in rural India. Climate Change Economics 04, 1350007. https://doi.org/10.1142/S2010007813500073

Kelkar, U., Narula, K.K., Sharma, V.P., Chandna, U., 2008a. Vulnerability and adaptation to climate variability and water stress in Uttarakhand State, India. Global Environmental Change 18, 564–574. https://doi.org/10.1016/j.gloenvcha.2008.09.003

Kelkar, U., Narula, K.K., Sharma, V.P., Chandna, U., 2008b. Vulnerability and adaptation to climate variability and water stress in Uttarakhand State, India. Global Environmental Change 18, 564–574. https://doi.org/10.1016/j.gloenvcha.2008.09.003

Kjellstrom, T., Briggs, D., Freyberg, C., Lemke, B., Otto, M., Hyatt, O., 2016. Heat, Human Performance, and Occupational Health: A Key Issue for the Assessment of Global Climate Change Impacts. Annu. Rev. Public Health 37, 97–112. https://doi.org/10.1146/annurev-publhealth-032315-021740

Kniveton, D., Schmidt-Verkerk, K., Smith, C., Black, R., 2008. Climate Change and Migration: Improving Methodologies to Estimate Flows, IOM Migration Research Series. UN. https://doi.org/10.18356/6233a4b6-en

Knutson, T.R., Delworth, T.L., Dixon, K.W., Held, I.M., Lu, J., Ramaswamy, V., Schwarzkopf, M.D., Stenchikov, G., Stouffer, R.J., 2006. Assessment of Twentieth-Century Regional Surface Temperature Trends Using the GFDL CM2 Coupled Models. J. Climate 19, 1624–1651. https://doi.org/10.1175/JCLI3709.1

Kohler, T., Maselli, D., Universität Bern (Eds.), 2009. Mountains and climate change: from understanding to action. CDE, Bern

Krishnan, R., Shrestha, A.B., Ren, G., Rajbhandari, R., Saeed, S., Sanjay, J., Syed, Md.A., Vellore, R., Xu, Y., You, Q., Ren, Y., 2019. Unravelling Climate Change in the Hindu Kush Himalaya: Rapid Warming in the Mountains and Increasing Extremes, in: Wester, P., Mishra, A., Mukherji, A., Shrestha, Arun Bhakta (Eds.), The Hindu Kush Himalaya Assessment: Mountains, Climate Change, Sustainability and People. Springer International Publishing, Cham, pp. 57–97. https://doi.org/10.1007/978-3-319-92288-1_3

Kumar, A., 2011. The Making of a Small State: Populist Social Mobilisation and the Hindi Press in the Uttarakhand Movement. Orient Blackswan, New Delhi

Kumar, A., Gupta, A.K., Bhambri, R., Verma, A., Tiwari, S.K., Asthana, A.K.L., 2018. Assessment and review of hydrometeorological aspects for cloudburst and flash flood events in the third pole region (Indian Himalaya). Polar Science 18, 5–20. https://doi.org/10.1016/j.polar.2018.08.004

Kumar, K., Satyal, G.S., Kandpal, K.D., 2006. Farmer and state managed hill irrigation systems in Kumaun Himalayas 5, 7

Kumar, N., Jaswal, A.K., 2016. Historical temporal variation in precipitation over Western Himalayan Region: 1857-2006. J. Mt. Sci. 13, 672–681. https://doi.org/10.1007/s11629-014-3194-y

Kuniyal, J.C., 2002. Mountain expeditions: minimising the impact. Environmental Impact Assessment Review 6, 561–581

Linkenbach, A., 2002. Shaking the State by Making a (New) State? Fighting for Autonomy in the Central Himalaya (North India). Sociologus 52, 77–106

Macchi, M., 2011. Framework for Community-Based Climate Vulnerability and Capacity Assessment in Mountain Areas. International Centre for Integrated Mountain Development (ICIMOD), Kathmandu, Nepal

Macchi, M., Gurung, A.M., Hoermann, B., 2015. Community perceptions and responses to climate variability and change in the Himalayas. Climate and Development 7, 414–425. https://doi.org/10.1080/17565529.2014.966046

Mach, K.J., Planton, S., von Stechow, C., 2014. Annex II: Glossary, in: Pachauri, R.K., Meyer, L. (Eds.), Climate Change 2014: Synthesis Report. Contribution of Working Groups I, II and III to the Fifth Assessment Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change. Geneva, Switzerland, pp. 117–130

Maharjan, A., Hussain, A., Bhadwal, S., Ishaq, S., Saeed, B.A., Sachdeva, I., Ahmad, B., Hassan, S.M.T., Tuladha, S., Ferdous, J., 2018. Migration in the Lives of Environmentally Vulnerable Populations in Four River Basins of the Hindu Kush Himalayan Region (No. HI-AWARE Working Paper 20)

Maikhuri, R., 2012. Climate change adaptation and mitigation: Insights from Nanda Devi Biosphere Reserve in Indian Himalaya

Maikhuri, R.K., Rao, K.S., Semwal, R.L., 2001. Changing scenario of Himalayan agroecosystems: loss of agrobiodiversity, an indicator of environmental change in Central Himalaya, India. The Environmentalist 21, 23–39. https://doi.org/10.1023/A:1010638104135

Maikhuri, R.K., Rawat, L.S., Nautiyal, S., Negi, V.S., Pharswan, D.S., Phondani, P., 2013. Promoting and enhancing sustainable livelihood options as an adaptive strategy to reduce vulnerability and increase resilience to climate change impact in the Central Himalaya, in: Knowledge Systems of Societies for Adaptation and Mitigation of Impacts of Climate Change. Springer, pp. 555–574

Maikhuri, R.K., Semwal, R.L., Rao, K.S., Nautiyal, S., Saxena, K.G., 1997. Eroding traditional crop diversity imperils the sustainability of agricultural systems in Central Himalaya. Current Science Association 73, 777–782

Maithani, P., 1996. Towards Sustinable Hill Area Development:Himalaya. Man and Nature 16, 4–7

Mallick, B., Schanze, J., 2020. Trapped or Voluntary? Non-Migration Despite Climate Risks. Sustainability 12, 4718. https://doi.org/10.3390/su12114718

Mamgain, R., Reddy, D.N., 2016. Outmigration from the hills of Uttarakhand: Magnitude, Challenges and Policy Options. Giri Institute of Development Studies

Mamgain, R.P., 2004. Employment, migration and livelihoods in the hill economy of Uttaranchal

Mamgain, R.P., Suryanarayana, M.H., 2017. Estimation of District Level Poverty In Uttarakhand

Massey, D.S., Arango, J., Hugo, G., Kouaouci, A., Pellegrino, A., Taylor, J.E., 1993. Theories of International Migration: A Review and Appraisal. Population and Development Review 19, 431. https://doi.org/10.2307/2938462

Maurer, J.M., Schaefer, J.M., Rupper, S., Corley, A., 2019. Acceleration of ice loss across the Himalayas over the past 40 years. Sci. Adv. 5, eaav7266. https://doi.org/10.1126/sciadv.aav7266

McLeman, R., Smit, B., 2006. Migration as an Adaptation to Climate Change. Climatic Change 76, 31–53. https://doi.org/10.1007/s10584-005-9000-7

McLeman, R.A., Hunter, L.M., 2010. Migration in the context of vulnerability and adaptation to climate change: insights from analogues: Migration and adaptation to climate change. Wiley Interdisciplinary Reviews: Climate Change 1, 450–461. https://doi.org/10.1002/wcc.51

Meher, J.K., Das, L., Akhter, J., Benestad, R.E., Mezghani, A., 2017. Performance of CMIP3 and CMIP5 GCMs to Simulate Observed Rainfall Characteristics over the Western Himalayan Region. J. Climate 30, 7777–7799. https://doi.org/10.1175/JCLI-D-16-0774.1

Meher, J.K., Das, L., Benestad, R.E., Mezghani, A., 2018. Analysis of winter rainfall change statistics over the Western Himalaya: the influence of internal variability and topography. International Journal of Climatology 38, e475–e496. https://doi.org/10.1002/joc.5385

Mehta, M., 2014. Neither of the hills nor of the city: Glimpses of peri-urban lives in a time of rapid change. Doon Library and Research Centre

Menon, S., Hansen, J., Nazarenko, L., Luo, Y., 2002. Climate effects of black carbon aerosols in China and India. Science (New York, N.Y.) 297, 2250–2253. https://doi.org/10.1126/science.1075159

Ministry of Housing and Urban Poverty Alleviation, 2017. Report of the the Working Group of Migration

Mishra, A., 2017. Changing Temperature and Rainfall Patterns of Uttarakhand. IJESNR 7. https://doi.org/10.19080/IJESNR.2017.07.555716

Mishra, A., 2014. Changing Climate of Uttarakhand, India. J Geol Geosci 03. https://doi.org/10.4172/2329-6755.1000163

Mishra, I., 2019. Despite mercury dip, dengue cases continue to rise in Uttarakhand. Times of India

Mishra, N.B., Chaudhuri, G., 2015. Spatio-temporal analysis of trends in seasonal vegetation productivity across Uttarakhand, Indian Himalayas, 2000–2014. Applied Geography 56, 29–41. https://doi.org/10.1016/j.apgeog.2014.10.007

Mitra, M., Kumar, A., Adhikari, B.S., Rawat, G.S., 2013. A note on transhumant pastoralism in Niti valley, Western Himalaya, India. Pastor Res Policy Pract 3, 29. https://doi.org/10.1186/2041-7136-3-29

Mittal, S., Tripathi, G., Sethi, D., 2008. Development Strategy for the Hill Districts of Uttarakhand (No. Working Paper 217). Indian Council for Research on International Economic Relations

MOSPI, 2007. Agriculture and Allied Activities (National Accounts Statistics-Sources & Methods). Ministry of Statistics and Programme Implementation

Mueller, V., Gray, C., Kosec, K., 2014. Heat stress increases long-term human migration in rural Pakistan. Nature Clim Change 4, 182–185. https://doi.org/10.1038/nclimate2103

Nandargi, S., Gaur, A., Mulye, S.S., 2016. Hydrological analysis of extreme rainfall events and severe rainstorms over Uttarakhand, India. Hydrological Sciences Journal 61, 2145–2163. https://doi.org/10.1080/02626667.2015.1085990

Naudiyal, N., Arunachalam, K., Kumar, U., 2019. The future of mountain agriculture amidst continual farm-exit, livelihood diversification and outmigration in the Central Himalayan villages. J. Mt. Sci. 16, 755–768. https://doi.org/10.1007/s11629-018-5160-6

Nautiyal, S., Rao, K.S., Maikhuri, R.K., Saxena, K.G., 2003. Transhumant Pastoralism in the Nanda Devi Biosphere Reserve, India: A Case Study in the Buffer Zone. Mountain Research and Development 23, 255–262. https://doi.org/10.1659/0276-4741(2003)023[0255:TPITND]2.0.CO;2

Nawrotzki, R.J., DeWaard, J., 2018. Putting trapped populations into place: climate change and inter-district migration flows in Zambia. Reg Environ Change 18, 533–546. https://doi.org/10.1007/s10113-017-1224-3

Negi, G.C.S., Samal, P.K., Kuniyal, J.C., Kothyari, B.P., Sharma, R.K., Dhyani, P.P., 2012. Impact of climate change on the western Himalayan mountain ecosystems: An overview 53, 345–356

NIDM, 2014. India Disaster Report 2013. National Institute of Disaster Management

Palazzi, E., von Hardenberg, J., Terzago, S., Provenzale, A., 2015. Precipitation in the Karakoram-Himalaya: a CMIP5 view. Clim Dyn 45, 21–45. https://doi.org/10.1007/s00382-014-2341-z

Pandey, V.K., Mishra, A., 2015. Causes and Disaster Risk Reduction Measures for Hydrometerological Disaster in Uttarakhand, India: An Overview 20

Pathak, S., 1999. Beyond An Autonomous State Background and Preliminary Analysis of Uttarakhand Movement. Proceedings of the Indian History Congress 60, 893–907

Pathak, S., Pant, L., Maharjan, A., 2017. De-population trends, patterns and effects in Uttarakhand, India – A gateway to Kailash Mansarovar. ICIMOD, Kathmandu

Pepin, N., Bradley, R.S., Diaz, H.F., Baraer, M., Caceres, E.B., Forsythe, N., Fowler, H., Greenwood, G., Hashmi, M.Z., Liu, X.D., Miller, J.R., Ning, L., Ohmura, A., Palazzi, E., Rangwala, I., Schöner, W., Severskiy, I., Shahgedanova, M., Wang, M.B., Williamson, S.N., Yang, D.Q., Mountain Research Initiative EDW Working Group, 2015. Elevation-dependent warming in mountain regions of the world. Nature Climate Change 5, 424–430. https://doi.org/10.1038/nclimate2563

Piguet, E., 2010. Linking climate change, environmental degradation, and migration: a methodological overview. WIREs Climate Change 1, 517–524. https://doi.org/10.1002/wcc.54

Planning Commission, GoI, 2013. Press Notes on Poverty Estimates 2011-2012. Government of India

Planning Commission, GoI, 2007. Press Notes on Poverty Estimates 2004-2005. Government of India, New Delhi

Planning Commission, GU, 2017. Uttarakhand State Economic Survey 2016-17

Pranuthi, G., Dubey, S.K., Tripathi, S.K., Chandniha, S.K., 2014. Trend and Change Point Detection of Precipitation in Urbanizing Districts of Uttarakhand in India. Indian Journal of Science and Technology 7, 10

Press Trust of India, 2018. Deserted houses, wild fields: Where have people gone from Uttarakhand's 734 villages? Hindustan Times

Pritchard, H.D., 2019. Asia's shrinking glaciers protect large populations from drought stress. Nature 569, 649–654. https://doi.org/10.1038/s41586-019-1240-1

Rama Rao, C.A., Raju, B.M.K., Subba Rao, A.V.M., Rao, K.V., Rao, V.U.M., Ramachandran, K., Venkateswarlu, B., Sikka, A.K., 2013. Atlas on Vulnerability of Indian Agriculture to Climate Change. Central Research Institute for Dryland Agriculture, Hyderabad

Ramachandraiah, C., 1995. Revenue Village vs Real Village: Under-Enumeration and Non-Enumeration under Srisailam Project 30, 2301–2302

Ramanathan, V., Chung, C., Kim, D., Bettge, T., Buja, L., Kiehl, J.T., Washington, W.M., Fu, Q., Sikka, D.R., Wild, M., 2005. Atmospheric brown clouds: Impacts on South Asian climate and hydrological cycle. Proceedings of the National Academy of Sciences 102, 5326–5333. https://doi.org/10.1073/pnas.0500656102

Rao, N., Singh, C., Solomon, D., Camfield, L., Sidiki, R., Angula, M., Poonacha, P., Sidibé, A., Lawson, E.T., 2020. Managing risk, changing aspirations and household dynamics: Implications for wellbeing and adaptation in semi-arid Africa and India. World Development 125, 104667. https://doi.org/10.1016/j.worlddev.2019.104667

Rasul, G., Saboor, A., Tiwari, P.C., Hussain, A., Ghosh, N., Chettri, G.B., 2019. Food and Nutrition Security in the Hindu Kush Himalaya: Unique Challenges and Niche Opportunities, in: Wester, P., Mishra, A., Mukherji, A., Shrestha, A.B. (Eds.), The Hindu Kush Himalaya Assessment: Mountains, Climate Change, Sustainability and People. Springer International Publishing, Cham, pp. 301–338. https://doi.org/10.1007/978-3-319-92288-1_9

Rautela, P., Karki, B., 2015. Traditional Practices for Survival in Resource Depleted Himalayan Region: Challenges Put Forth by Climate Change and Response of Local Communities 4, 11

Ravera, F., Martín-López, B., Pascual, U., Drucker, A., 2016. The diversity of gendered adaptation strategies to climate change of Indian farmers: A feminist intersectional approach. Ambio 45, 335–351

Rigaud, K.K., de Sherbinin, A., Jones, B., Bergmann, J., Clement, V., Ober, K., Schewe, J., Adamo, S., McCusker, B., Heuser, S., Midgley, A., 2018. Groundswell: Preparing for Internal Climate Migration. World Bank. https://doi.org/10.1596/29461

Rural Development and Migration Commission, 2018. Interim Report on the Status of Migration in Gram Panchayats of Uttarakhand. Rural Development and Migration Commission, Pauri Gharwal

Sahu, S., Sett, M., Kjellstrom, T., 2013. Heat Exposure, Cardiovascular Stress and Work Productivity in Rice Harvesters in India: Implications for a Climate Change Future. Ind Health 51, 424–431. https://doi.org/10.2486/indhealth.2013-0006

Sarkar, S., Gangare, V., Singh, P., Dhiman, R.C., 2019. Shift in Potential Malaria Transmission Areas in India, Using the Fuzzy-Based Climate Suitability Malaria Transmission (FCSMT) Model under Changing Climatic Conditions. IJERPH 16, 3474. https://doi.org/10.3390/ijerph16183474

Sati, V.P., 2020. Himalaya on the Threshold of Change, Advances in Global Change Research. Springer International Publishing, Cham. https://doi.org/10.1007/978-3-030-14180-6

Sati, V.P., 2016. Patterns and Implications of Rural-Urban Migration in the Uttarakhand Himalaya, India. Annals of Natural Sciences 2, 26–37

Saxena, K.G., Rao, K.S., Nautiyal, S., 2010. Assessment Report Nanda Devi Biosphere Reserve, Uttarakhand, India as a baseline for further studies related to the implementation of Global Change in Mountain Regions (GLOCHAMORE) Research Strategy (No. Contract No. 3240206475). UNESCO India

SCCC, n.d. Agenda for Climate Action: Agriculture Linking the Vulnerability and Risk Assesment for Uttarakahnd with policy implications for the state. State Climate Change Centre, Uttarakhand Forest Department, Government of Uttarakhand

Schewel, K., 2020. Understanding Immobility: Moving Beyond the Mobility Bias in Migration Studies. International Migration Review 54, 328–355. https://doi.org/10.1177/0197918319831952

Schwartz, A., 1973. Interpreting the Effect of Distance on Migration. Journal of Political Economy 81, 1153–1169. https://doi.org/10.1086/260111

Sekhar, C.S.C., 2007. Viable Entrepreneurial Trade For Women In Agriculture In Uttaranchal. University of Delhi

Semwal, R., Nautiyal, S., Sen, K.K., Rana, U., Maikhuri, R.K., Rao, K.S., Saxena, K.G., 2004. Patterns and ecological implications of agricultural land-use changes: a case study from central Himalaya, India. Agriculture, Ecosystems & Environment 102, 81–92

Sherpa, D., 2007. New Vulnerabilities for Mountain Women: A Different Light on the Greater Himalaya

Shukla, R., Agarwal, A., Gornott, C., Sachdeva, K., Joshi, P.K., 2019. Farmer typology to understand differentiated climate change adaptation in Himalaya. Sci Rep 9, 1–12. https://doi.org/10.1038/s41598-019-56931-9

Shukla, R., Chakraborty, A., Sachdeva, K., Joshi, P.K., 2018. Agriculture in the western Himalayas – an asset turning into a liability. Development in Practice 28, 318–324. https://doi.org/10.1080/09614524.2018.1420140

SIDCUL, 2015. State Infrastructure & Industrial Development Corporation Uttarakhand Ltd [WWW Document]. URL https://www.siidcul.com/about/siidcul

Sperber, K.R., Annamalai, H., Kang, I.-S., Kitoh, A., Moise, A., Turner, A., Wang, B., Zhou, T., 2013. The Asian summer monsoon: an intercomparison of CMIP5 vs. CMIP3 simulations of the late 20th century. Clim Dyn 41, 2711–2744. https://doi.org/10.1007/s00382-012-1607-6

Stark, O., Bloom, D.E., 1985. The New Economics of Labor Migration. The American Economic Review, Papers and Proceedings of theNinety-Seventh Annual Meeting of the American Economic Association 75, 173–178

State Climate Change Centre, n.d. Agenda for Climate Action: Agriculture Linking the Vulnerability and Risk Assessment for Uttarakhand with policy implications for the state. Uttarakhand Forest Department, Government of Uttarakhand

Sunderesan, J., Gupta, P., Santosh, K., Boojh, R. (Eds.), 2014. Climate Change and Himalaya: Natural Hazards and Mountain Resources. Scientific Publishers

Sutton, R.T., Dong, B., Gregory, J.M., 2007. Land/sea warming ratio in response to climate change: IPCC AR4 model results and comparison with observations. Geophysical Research Letters 34. https://doi.org/10.1029/2006GL028164

Tambe, S., Kharel, G., Arrawatia, M.L., Kulkarni, H., Mahamuni, K., Ganeriwala, A.K., 2012. Reviving dying springs: climate change adaptation experiments from the Sikkim Himalaya. Mountain Research and Development 32, 62–72

Tewari, V.P., Verma, R.K., von Gadow, K., 2017. Climate change effects in the Western Himalayan ecosystems of India: evidence and strategies. Forest Ecosystems 4, 13. https://doi.org/10.1186/s40663-017-0100-4

Tiwari, P.C., Joshi, B., 2016. Gender processes in rural outmigration and socio-economic development in the Himalaya. Migration and Development 5, 330–350. https://doi.org/10.1080/21632324.2015.1022970

Tiwari, P.C., Joshi, B., 2015. Climate Change and Rural Out-migration in Himalaya. Change and Adaptation in Socio-Ecological Systems 2. https://doi.org/10.1515/cass-2015-0002

Tiwari, P.C., Joshi, B., 2012. Natural and socio-economic factors affecting food security in the Himalayas. Food Sec. 4, 195–207. https://doi.org/10.1007/s12571-012-0178-z

Trenberth, K.E., 2008. The Impact of Climate Change and Variability on Heavy Precipitation, Floods, and Droughts. In Encyclopedia of Hydrological Sciences. https://doi.org/10.1002/0470848944.hsa211

Turner, A.G., Annamalai, H., 2012. Climate change and the South Asian summer monsoon. Nature Climate Change 2, 587–595. https://doi.org/10.1038/nclimate1495

Ueda, H., Iwai, A., Kuwako, K., Hori, M.E., 2006. Impact of anthropogenic forcing on the Asian summer monsoon as simulated by eight GCMs. Geophysical Research Letters 33. https://doi.org/10.1029/2005GL025336

United Nations, 2018. General Assembly Resolution 73/195, Global Compact for Safe, Orderly and Regular Migration A/RES/73/195 (19 December 2018)

United Nations Development Programme (UNDP), 2019. Human development report 2019: beyond income, beyond averages, beyond today: inequalities in human development in the 21st century. New York, USA

United Nations Development Programme (UNDP), 2018. Human Development Indices and Indicators: 2018 Statistical Update. New York, USA

United Nations Development Programme (UNDP), n.d. Gender Development Index (GDI) | Human Development Reports [WWW Document]. URL http://hdr.undp.org/en/content/gender-development-index-gdi (accessed 7.9.20)

Upadhyay, K., 2018. Inside the ghost villages of Uttarakhand. Indian Express

van Vuuren, D.P., Edmonds, J., Kainuma, M., Riahi, K., Thomson, A., Hibbard, K., Hurtt, G.C., Kram, T., Krey, V., Lamarque, J.-F., Masui, T., Meinshausen, M., Nakicenovic, N., Smith, S.J., Rose, S.K., 2011. The representative concentration pathways: an overview. Climatic Change 109, 5. https://doi.org/10.1007/s10584-011-0148-z

Venkatesh, S., 2016. Why this abandoned village is a threat to Uttarakhand. Down to Earth

Verma, L., 2019. Uttarakhand: Spike in dengue cases, officials cite climate. Indian Express

Vinke, K.; Hoffmann, R., 2020. Data for a difficult subject: Climate change and human migration. Migration Policy Practice X, 16–22

Viviroli, D., Dürr, H.H., Messerli, B., Meybeck, M., Weingartner, R., 2007. Mountains of the world, water towers for humanity: Typology, mapping, and global significance: MOUNTAINS AS WATER TOWERS FOR HUMANITY. Water Resour. Res. 43. https://doi.org/10.1029/2006WR005653

Viviroli, D., Weingartner, R., Messerli, B., 2003. Assessing the Hydrological Significance of the World's Mountains. Mountain Research and Development 23, 32–40. https://doi.org/10.1659/0276-4741(2003)023[0032:ATHSOT]2.0.CO;2

Wang, B., Ding, Q., Joseph, P.V., 2009. Objective Definition of the Indian Summer Monsoon Onset. J. Climate 22, 3303–3316. https://doi.org/10.1175/2008JCLI2675.1

Warner, K., Hamza, M., Oliver-Smith, A., Renaud, F., Julca, A., 2010. Climate change, environmental degradation and migration. Nat Hazards 55, 689–715. https://doi.org/10.1007/s11069-009-9419-7

Wester, P., Mishra, A., Mukherji, A., Shrestha, A.B., 2019. The Hindu Kush Himalaya assessment: mountains, climate change, sustainability and people

White, G., 2011. Climate-Induced Migration: An Essentially Contested Concept, in: Climate Change and Migration. Oxford University Press. https://doi.org/10.1093/acprof:oso/9780199794829.003.0001

Wise, W., Covarrubias, H.M., 2009. Understanding the Relationship between Migration and Development: Toward a New Theoretical Approach. Social Analysis 53, 530305. https://doi.org/10.3167/sa.2009.530305

Xiao, C.-D., Wang, S.-J., Qin, D.-H., 2015. A preliminary study of cryosphere service function and value evaluation. Advances in Climate Change Research 6, 181–187. https://doi.org/10.1016/j.accre.2015.11.004

Xu, C., Kohler, T.A., Lenton, T.M., Svenning, J.-C., Scheffer, M., 2020. Future of the human climate niche. Proc Natl Acad Sci USA 117, 11350–11355. https://doi.org/10.1073/pnas.1910114117

Yadav, R., Tripathi, S.K., Pranuthi, G., Dubey, S.K., 2014. Trend analysis by Mann-Kendall test for precipitation and temperature for thirteen districts of Uttarakhand 16, 9

Zickgraf, 2019. Keeping People in Place: Political Factors of (Im)mobility and Climate Change. Social Sciences 8, 228. https://doi.org/10.3390/socsci8080228

Zickgraf, C., 2018. Immobility, in: Gemenne, F., McLeman, R. (Eds.), Routledge Handbook on Environmental Displacement and Migration. Routledge

परिशिष्ट

सूर्यास्त के समय ऋषिकेश, भारत का योग शहर, गंगा नदी की घाटी, गंगा, उत्तराखंड।

© शटरस्टॉक/पेप्पी ग्राफिक्स

9 परिशिष्ट

बॉक्स 8: उत्तराखंड आंदोलन

उत्तराखंड आंदोलन: पृथक राज्य की माँग

औपचारिक रूप से, भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के तत्कालीन महासचिव पी.सी. जोशी द्वारा, पहाड़ों में रहने वाले लोगों के लिए एक पृथक राज्य की माँग के लगभग पचास वर्ष पश्चात Linkenbach, 2002), उत्तराखंड भारत का 27वां राज्य बना। नए राज्य के भूभाग को, इसके मातृ राज्य उत्तर प्रदेश के उत्तरी और पहाड़ी भागों को अलग करके गठित किया गया। 9 नवम्बर 2000 को राज्य का गठन, वर्तमान उत्तराखंड के लोगों की एक लंबे समय से चली आ रही निरंतर माँग का परिणाम था, जो ऐसा अनुभव करते थे कि पहाड़ों में रहने वालों के हितों और सरोकारों को उत्तर प्रदेश की राजनैतिक प्रक्रियाओं में पर्याप्त महत्त्व नहीं दिया गया था। वे आर्थिक पिछड़ेपन या स्पष्ट राजनीतिक पहचान का अभाव जैसी चुनौतियों का सामना करने के लिए संगठित रहे (Government of Uttarakhand, 2014; Rural Development and Migration Commission, 2018)। जहां पी.सी. जोशी ने 1952 में एक पृथक पहाड़ी राज्य का सुझाव दिया था, वहीं इस आंदोलन को 1994 में गति मिली और यह जन आन्दोलन (जनता के आंदोलन) में परिवर्तित हो गया। यह बिना किसी केन्द्रीय नेतृत्व के एक स्वतंत्र जन आन्दोलन था जो उत्तराखंड आंदोलन कहलाया (Kumar, 2011; Linkenbach, 2002; Pathak, 1999)।

उत्तराखंड महासभा के कार्यकर्ताओं ने रविवार को संसद भवन के समक्ष प्रदर्शन किया। प्रदर्शनकारी मसूरी और खटीमा गोलीकांड के लिए दोषी व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई तथा पृथक उत्तराखंड राज्य की मांग कर रहे थे। (नभाटा चित्र: के.के. तरकर)

परिशिष्ट 1: प्रयुक्त एनईएक्स-जीडीडीपी मॉडलों की सूची

ऐक्सेस1–0	सीएसआईआरओ–एमके3–6–0	एमआईआरओसी–ईएसएम
बीसीसी–सीएसएम1–1	जीएफडीएल–सीएम3	एमआईआरओसी–ईएसएम–सीएचईएम
बीएनयू–ईएसएम	जीएफडीएल–ईएसएम2जी	एमआईआरओसी5
कैनईएसएम2	जीएफडीएल–ईएसएम2एम	एमपीआई–ईएसएम–एलआर
सीसीएसएम4	आईएनएमसीएम4	एमपीआई–ईएसएम–एमआर
सीईएसएम1–बीजीसी	आईपीएसएल–सीएम5ए–एलआर	एमआरआई–सीजीसीएम3
सीएनआरएम–सीएम5	आईपीएसएल–सीएम5ए–एमआर	एनओआरईएसएम 1–एम

परिशिष्ट 2: बेसलाइन (1971–05) के संदर्भ में, आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 के लिए निकट-भविष्य (2021–50), मध्यम-भविष्य (2050–80) और सुदूर-भविष्य (2081–99) अवधियों में वार्षिक औसत वर्षा में पूर्वानुमानित परिवर्तन

जिले	2020–50				2050–80				2080–99			
	आरसीपी4.5		आरसीपी8.5		आरसीपी4.5		आरसीपी8.5		आरसीपी4.5		आरसीपी8.5	
	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य
अल्मोड़ा	6–7.6	6.8	8–9.6	9.15	10–13	11.52	16–22	21.54	14–18	16.35	29–35	33.66
बागेश्वर	5.6–7.2	6.35	7.6–10	9.65	11–15	12.4	17–24	22.57	17–20	17.87	31–36	35.22
चमोली	4.0–6	4.96	5.6–8	6.95	7.0–10.0	9.57	15–19	17.8	15–18	16.38	26–31	29.49
चम्पावत	7.2–8.4	7.71	9.2–13	12.63	12–16	14.82	20–27	26.82	17–22	19.7	36–41	40.37
देहरादून	6.8–8	7.02	5.2–6.8	6.46	7.0–10.0	9.7	15–18	17.81	13.5–15	14.38	27–30	29.95
हरिद्वार	6–7.6	6.35	5.2–6.8	6.4	7.0–9.0	8.49	15–18	16.92	13.5–15	14.04	28–30	29.68
नैनीताल	7.6–8.8	7.73	7.2–8.4	8.12	9–13	10.24	17–20	19.22	14–15.5	14.39	27–33	31.51
पौड़ी गढ़वाल	6.8–8	7.63	8.8–11.4	11.2	11–15	13.16	18–25	24.57	16–19	17.61	34–39	37.09
पिथौरागढ़	4.4–6.8	6.39	6.4–8	6.85	7.0–10.0	8.64	16–19	17.1	13–15.5	14.23	24–31	30.17
रूद्रप्रयाग	5.2–7.6	7.01	8.8–11.4	11.35	9–14	13.99	21–27	25.11	16.5–20.5	19.22	33–39	38.63
गढ़वाल	5.2–6	5.74	5.2–6.8	6.75	7.0–10.0	8.8	16–19	17.06	13.5–15	14.83	37–34	29.56
ऊधम सिंह नगर	8.4–9.6	8.82	9.6–13.2	13.18	11–16	14.99	22–28	27.38	16–20.5	19.19	36–41	40.23
उत्तरकाशी	4.0 – 6	4.99	4–5.6	4.64	7.0–9.0	7.16	12–16	15.42	13–15.5	13.91	25–28	27.67

परिशिष्ट 3: आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 के लिए बेसलाइन (1971–05) के संदर्भ में निकट-भविष्य (2021–50), मध्यम-भविष्य (2050–80) और सुदूर-भविष्य (2081–99) अवधियों में वार्षिक औसत अधिकतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन

जिले	2020–50				2050–80				2080–99			
	आरसीपी4.5		आरसीपी8.5		आरसीपी4.5		आरसीपी8.5		आरसीपी4.5		आरसीपी8.5	
	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य
अल्मोड़ा	1.4–1.5	1.46	1.6–1.75	1.71	2.15–2.35	2.33	3.4–3.6	3.57	2.4–2.7	2.63	4.9–5.25	5.26
बागेश्वर	1.45–1.6	1.52	1.7–1.8	1.76	2.3–2.5	2.43	3.5–3.75	3.66	2.5–2.7	2.74	5.1–5.5	5.37
चमोली	1.5–1.65	1.58	1.7–1.9	1.84	2.4–2.6	2.52	3.6–3.9	3.81	2.65–2.9	2.84	5.2–5.65	5.59
चम्पावत	1.4–1.65	1.46	1.6–1.75	1.69	2.2–2.4	2.35	3.4–3.6	3.51	2.4–2.7	2.64	5.1–5.4	5.16
देहरादून	1.4–1.55	1.47	1.7–1.8	1.72	2.3–2.5	2.34	3.4–3.65	3.58	2.4–2.7	2.64	5.2–5.6	5.3
हरिद्वार	1.4–1.5	1.48	1.7–1.8	1.74	2.25–2.4	2.33	3.55–3.7	3.6	2.5–2.7	2.63	5.2–5.5	5.33
नैनीताल	1.4–1.5	1.42	1.55–1.7	1.67	2.1–2.4	2.26	3.4–3.6	3.49	2.4–2.6	2.56	5–5.35	5.19
पौड़ी गढ़वाल	1.4–1.55	1.41	1.6–1.75	1.66	2.1–2.4	2.26	3.4–3.6	3.45	2.45–4–2.75	2.55	4.95–5.15	5.1
पिथौरागढ़	1.55–1.65	1.48	1.7–1.8	1.74	2.1–2.4	2.33	3.55–3.8	3.6	2.5–2.75	2.63	5.2–5.45	5.33
रूद्रप्रयाग	1.5–1.65	1.52	1.65–85	1.76	2.3–2.5	2.45	3.55–3.7	3.64	2.5–2.85	2.76	5.1–5.4	5.33
गढ़वाल	14–1.55	1.51	1.65–1.8	1.78	2.3–2.5	2.39	3.6–3.75	3.67	2.6–2.85	2.69	5.2–5.55	5.42
ऊधम सिंह नगर	1.35–1.45	1.38	1.5–1.7	1.61	2.1–2.4	2.24	3.2–3.45	3.37	2.4–2.65	2.52	4.9–5.1	4.98
उत्तरकाशी	1.5–1.6	1.55	1.75–1.8	1.82	2.2–2.5	2.44	3.5–3.8	3.73	2.65–2.9	2.73	5.35–5.65	5.52

परिशिष्ट 4: बेसलाइन (1971–05) के संदर्भ में, आरसीपी4.5 और आरसीपी8.5 के लिए निकट-भविष्य (2021–50), मध्यम-भविष्य (2050–80) और सुदूर-भविष्य (2081–99) अवधियों में वार्षिक औसत न्यूनतम तापमान में पूर्वानुमानित परिवर्तन

जिले	2020–2050				2050–2080				2080–2099			
	आरसीपी4.5		आरसीपी8.5		आरसीपी4.5		आरसीपी8.5		आरसीपी4.5		आरसीपी8.5	
	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य	रेंज	माध्य
अल्मोड़ा	1.5–1.65	1.59	1.6–1.85	1.79	2.1–2.4	2.39	3.6–3.8	3.7	2.5–2.7	2.69	5.2–5.45	5.37
बागेश्वर	1.6–1.75	1.66	1.7–1.9	1.84	2.3–2.55	2.47	3.6–3.8	3.78	2.6–2.85	2.78	5.35–5.65	5.47
चमोली	1.65–1.75	1.71	1.75–2	1.92	2.2–2.65	2.59	3.6–4	3.95	2.7–3	2.9	5.6–5.85	5.72
चम्पावत	1.5–1.65	1.58	1.7–1.9	1.76	2.2–2.45	2.35	3.4–3.8	3.61	2.4–2.75	2.64	5.1–5.3	5.22
देहरादून	1.5–1.65	1.57	1.7–1.85	1.81	2.3–2.5	2.4	3.6–3.8	3.72	2.6–2.75	2.7	5.35–5.55	5.41
हरिद्वार	1.55–1.7	1.61	1.6–1.9	1.83	2.35–2.5	2.42	3.5–3.8	3.75	2.6–2.8	2.73	5.4–5.6	5.47
नैनीताल	1.4–1.65	1.52	1.7–1.8	1.76	2.2–2.4	2.32	3.5–3.75	3.63	2.5–2.7	2.62	5.2–5.4	5.29
पौड़ी गढ़वाल	1.4–1.65	1.53	1.6–1.85	1.73	2.2–2.35	2.29	3.4–3.65	3.57	2.4–2.6	2.58	5.1–5.3	5.18
पिथौरागढ़	1.4–1.7	1.61	1.6–1.9	1.82	2.3–2.5	2.42	3.7–3.9	3.76	2.6–2.85	2.72	5.4–5.6	5.46
रूद्रप्रयाग	1.55–1.7	1.64	1.5–1.9	1.82	2.35–2.5	2.46	3.7–3.85	3.74	2.6–2.8	2.76	5.35–5.55	5.4
गढ़वाल	1.5–1.75	1.65	1.65–1.9	1.86	2.4–2.55	2.48	3.7–3.9	3.82	2.7–2.9	2.79	5.4–5.7	5.56
ऊधम सिंह नगर	1.4–1.65	1.48	1.6–1.85	1.69	2.1–2.3	2.23	3.4–3.6	3.49	2.4–2.65	2.51	4.9–5.25	5.06
उत्तरकाशी	1.4–1.8	1.7	1.5–2	1.92	2.2–2.6	2.55	3.65–4	3.91	2.7–2.9	2.86	5.4–5.8	5.69

Potsdam Institute for Climate Impact Research
PIK

International Climate Initiative (IKI)

Supported by:
Federal Ministry for the Environment, Nature Conservation and Nuclear Safety
based on a decision of the German Bundestag

teri
The Energy and Resources Institute
Creating Innovative Solutions for a Sustainable Future